भाषा अधिगम

मनोरमा गुप्त

H
400.07
G 959 B

केंद्रीय हिंदी संस्थान · आगरा

संदर्भग्रन्थ पुस्तकमाला–1

भाषा अधिगम

मनोरमा गुप्त

ज्योतित हो जन जन का जीवन
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

© केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
प्रथम संस्करण : 1984
द्वितीय संशोधित संस्करण : 1995

Library IIAS, Shimla
400.07 G 959 B
00095210

H
400.07
G 959 B

मूल्य : रु० 35·00

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 95210
Date 21/3/2000
SIMLA

केंद्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-5 द्वारा प्रकाशित और चन्दन प्रिंटिंग प्रेस, सराय बेगा, आगरा-7 से मुद्रित।

आमुख

अन्य भाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में हिन्दी के अर्जन, शिक्षण और प्रशिक्षण सम्बन्धी क्षेत्रों में केन्द्रीय हिन्दी संस्थान में जो कार्य सम्पन्न हुए हैं उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय विद्वत् जगत में अपनी पहचान बनाई है। संस्थान में इस दृष्टि से आधारभूत पाठ्य-सामग्री का निर्माण हुआ है, सिद्धान्तों की विवेचना हुई है, सिद्धान्तों के आलोक बहुआयामी शोध परियोजनाओं पर महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए हैं।

भारत में भाषा के मानसिक पक्ष के सम्बन्ध में अत्यन्त व्यापक, विशद एवं गहराई से विचार हुआ है। भारतीय परम्परा ने भाषा की मानसिक प्रक्रिया तथा वाचिक क्रिया दोनों को महत्व प्रदान किया है।

मनुष्य इस जगत में मनुष्येतर प्राणियों से अपनी भाषा सामर्थ्य के कारण भिन्न एवं विशिष्ट है। जीवधारियों के विकास में मानव का विकास भाषा के विकास के साथ अभिन्न रूप से सम्बद्ध रहा है। बालक के द्वारा भाषा अर्जन [भाषा उपार्जन] के सम्बन्ध में दो तथ्य दृष्टिगत होते हैं। बालक जिस भाषा समाज में पलता है उसी समाज की भाषा को सीखता एवं अर्जित करता है। दूसरी ओर मानव शिशु ही भाषा को अर्जित करता है। तीन-चार वर्षों की अवधि में मानव शिशु अपनी मातृभाषा अथवा भाषा की आधारभूत वाक्य संरचनाओं पर अधिकार प्राप्त कर लेता है। इतनी कम अवधि में बालक भाषा जैसे जटिल सम्प्रेषण माध्यम पर किस प्रकार अधिकार प्राप्त करता है—यह विद्वानों की जिज्ञासा एवं अनुसंधान का विषय रहा है।

बालक के भाषिक विकास के पहलुओं पर विचार करते समय मनोवैज्ञानिकों, भाषावैज्ञानिकों तथा शिक्षाशास्त्रियों ने अनेक दृष्टियों से विचार किया है। भाषा अर्जन का मूल आधार बहुभाषी संदर्भ में बच्चे का एकाधिक भाषाओं को सीखना एवं अर्जित करना, बालक में भाषा का विकास, भाषा अर्जन की मानसिक सामर्थ्य अथवा भाषा अर्जन की जन्मजात शक्ति पारिवारिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण की विविधताओं का मानव शिशु द्वारा भाषा अर्जन एवं विकास के साथ सम्बन्ध, विभिन्न भाषाओं के बालकों के द्वारा ध्वनि शब्द-रूप, वाक्य-रूप आदि के ग्रहण एवं विकास की प्रक्रिया में समानता एवं भिन्नता आदि विभिन्न पहलुओं पर सम्पन्न शोध कार्यों का अनेक दृष्टियों से महत्व है।

भाषा अर्जन तथा भाषा अधिगम की प्रकृति एवं स्थितियों में अन्तर है। भाषा अधिगम की प्रक्रिया में भाषा के अध्यापक का लक्ष्य छात्रों में भाषिक कौशलों को विकसित एवं परिमार्जित करना होता है। मातृभाषा एवं अन्य भाषा के अधिगम और शिक्षण-प्रशिक्षण में भी तात्विक भिन्नताएँ हैं। मातृभाषा पर समुचित अधिकार प्राप्त करने के बाद ही प्राय: अध्येता किसी अन्य भाषा को सीखना आरम्भ करता है। अन्य भाषा सीखते समय मातृभाषा का व्याघात होता है। इसी कारण अन्य भाषा शिक्षण के सन्दर्भ में व्यतिरेकी विश्लेषण के द्वारा अध्येता की मातृभाषा एवं लक्ष्य भाषा दोनों में वर्तमान संरचनागत एवं व्यवस्थागत समानताओं और विषमताओं का विश्लेषण एवं विवेचन किया जाता है।

प्रस्तुत ग्रंथ में डॉ० मनोरमा गुप्त ने भाषा का मनोविज्ञान, मानव शिशु के द्वारा भाषा अर्जन, भाषा अर्जन तथा भाषा अधिगम की प्रकृति एवं स्थितियों में अन्तर, बालक का भाषायी विकास, मातृभाषा एवं अन्य भाषा अधिगम का अन्तर अन्य भाषा अधिगम की प्रकृति तथा स्वरूप, अन्य भाषा अधिगम को प्रभावित करने वाले तत्व आदि की विवेचना की है।

डॉ० मनोरमा गुप्त ने लगभग 3 दशकों तक संस्थान में अध्यापन कार्य किया तथा एक लम्बी अवधि तक आप अहिन्दी भाषी राज्यों में सेवारत हिन्दी अध्यापकों को प्रशिक्षित करने वाले 'प्रशिक्षण एकक' की प्रभारी रहीं। प्रस्तुत पुस्तक उनके सुदीर्घ अध्यापन-अनुभव एवं चिन्तन-मनन का प्रतिफल है। प्रस्तुत पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् 1984 में प्रकाशित हुआ था। यह इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण है। अत्यन्त वैज्ञानिक एवं विशेषज्ञ प्रकृति की होते हुए भी इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है, जो इस पुस्तक की उपयोगिता का सहज प्रमाण है।

इस द्वितीय संस्करण को विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता है। डॉ० मनोरमा गुप्त ने इस संस्करण में परिमार्जन एवं संशोधन भी किए हैं जिसके कारण इस संस्करण का महत्व और अधिक बढ़ गया है। मुझे विश्वास है कि विद्वान अध्येता इस संस्करण का भी पूर्ववत् स्वागत करेंगे। मैं डॉ० मनोरमा गुप्त को इस कार्य के लिए साधुवाद देता हूँ।

(महावीर सरन जैन)
निदेशक

प्रथम संस्करण का आमुख

भाषा मानव मात्र का एक अनिवार्य अभिलक्षण है। जीव विज्ञान की दृष्टि से मानव के मानवत्व का एक परिचायक लक्षण उसका भाषा व्यवहार करने की क्षमता माना जाता है।

किसी भी मानव समाज के विभिन्न सांस्कृतिक उपादानों में भाषा एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक व्यवहार क्षेत्र है। समाजविज्ञानों में, एक समय था, जब संस्कृति और भाषा के पारस्परिक संबंध के विषय में पर्याप्त मतवैभिन्य रहा है परंतु सभी विद्वान इस बात पर सहमत रहे हैं कि इन दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध है।

किसी भी समाज में बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया में भाषा का एक महत्वपूर्ण और केंद्रीय रोल होता है। वस्तुत: बालक की ज्ञानात्मक क्षमताओं के विकास और तत्संबंधी संप्रत्ययों के निर्माण का भाषा अधिगम से गहरा संबंध है। भाषा समाजीकरण का एक अत्यंत महत्वपूर्ण माध्यम और साधन है।

भाषा अधिगम का अध्ययन मनोवैज्ञानिक, भाषावैज्ञानिक, समाजशास्त्री तथा शिक्षाशास्त्री सभी अपने-अपने अध्ययन क्षेत्रों के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्यों से करते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में भाषा अधिगम के अध्ययन क्षेत्र को विशेषतया शिक्षाशास्त्र और भाषाविज्ञान की दृष्टियों से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही मातृभाषा शिक्षण के संदर्भ में भाषा अधिगम के विभिन्न सिद्धांतों का युक्तियुक्त विवेचन भी किया गया है।

केंद्रीय हिंदी संस्थान भाषा अध्यापकों के प्रशिक्षण से संबद्ध कार्य पिछले दो दशकों से अधिक समय से कर रहा है। हिंदी अध्यापकों के प्रशिक्षण में ही नहीं वरन् भाषा अध्यापकों के प्रशिक्षण में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के विविध क्षेत्रों का आधार और पुट देते हुए भाषा अध्यापक प्रशिक्षण की नूतन प्रविधियों का विकास संस्थान में किया जा रहा है। इस प्रकार की प्रविधियों का विकास और प्रसार करने के लिए यह आवश्यक है कि इस दृष्टि से ऐसे ग्रंथों का प्रणयन किया

जाय जो अध्यापक प्रशिक्षण के विविध पाठ्य क्षेत्रों से संबद्ध हों। यह ग्रंथ इसी शृंखला का एक प्रकाशन है। इस ग्रंथ की प्रणेता डॉ० मनोरमा गुप्त पिछले दो दशकों से अधिक से इन क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं। उनके सुदीर्घ अनुभव एवं अध्ययन की छाप इस पुस्तक में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। मुझे विश्वास है कि डॉ० गुप्त इन विषयों पर उच्चस्तरीय ग्रंथों के प्रणयन का कार्य भविष्य में भी करती रहेंगी। भाषा अधिगम पर इस उच्चस्तरीय ग्रंथ के लिए वे हमारे साधुवाद की पात्र हैं।

बाल गोविन्द मिश्र
निदेशक

प्राक्कथन

व्यक्तित्व के विकास में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान है। ज्ञान क्षेत्र से संबंधित विधाओं ने इस तथ्य की स्वीकृति के साथ ही भाषा की विविध भूमिकाओं का उल्लेख किया है। तत्ववेत्ता दार्शनिक, वास्तविक संदर्भों का विवेचक समाजशास्त्री और मानव मन का विश्लेषक मनोवैज्ञानिक भाषा के माध्यम से ही अपने दायित्वों के निर्वाह में समर्थ हो सके हैं। सम्प्रेषण के समर्थ साधन के रूप में भाषा मानव समाज की अभूतपूर्व विशिष्टता के रूप में स्वीकृत है। अबोध मानव शिशु भी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन-रूप में भाषा का उपार्जन करता है। विविध अभिलक्षणों से युक्त भाषा की जटिल व्यवस्था पर मानव शिशु सहज ही अधिकार पा लेता है। यह न केवल भाषा और मानव की परस्पर संबद्धता का द्योतक है, बल्कि मानव मन की उस विलक्षणता का भी परिचायक है जिसके फलस्वरूप वह भाषा को अपने बहुमुखी व्यक्तित्व के विकास के आधार एवं विविध दायित्वों के निर्वाह के साधन रूप में स्वीकार करता है।

भाषा को मानवीय व्यवहार का "केंद्रीय तंतु" मानने के मूल में इसके विविध आधार स्वतः समाहित हैं। इसका संबंध एक ओर यदि मानव की जटिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से है, तो दूसरी ओर भाषा को यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की सम्प्रेषणात्मक व्यवस्था के रूप में मान्यता प्रदान करने वाली भाषावैज्ञानिक प्रक्रियाओं से भी है। भाषा का व्यवहार क्षेत्र मानव समाज है अतः भाषा का समाज वैज्ञानिक संदर्भ स्वतः समाहित हो जाता है। भाषा के मनोभाषावैज्ञानिक संदर्भ को इसी दृष्टि से सर्वप्रथम प्रतिपाद्य विषय के रूप में स्वीकार किया गया है।

जीवन के प्रारंभिक क्षणों से ही मानव शिशु सम्प्रेषण माध्यम के रूप में भाषा का सांकेतिक रूप से व्यवहार करता है। मातृभाषा के उपार्जन की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से सभी सामान्य शिशुओं में विकसित होती है। भाषायी विकास के क्रम में विविध पक्षों एवं स्तरों का समन्वित विकास विभिन्न मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के संदर्भ में ही गतिशील होता है। भाषा-उपार्जन में बालक की मनोवैज्ञानिक क्षमताएँ, उसकी अंतर्भावितता तथा प्रयुक्त युक्तियों के साथ ही परिवेश एवं भाषायी उद्भासन की प्रक्रियाओं का विशेष महत्व है। भाषा का उपार्जक बालक शिक्षा के

संदर्भ में भाषा अधिगम की विशिष्टताओं से परिचित होता है । भाषा उपार्जन और भाषा अधिगम की प्रकृति एवं स्थितियों में अंतर होने के कारण भाषायी उपलब्धियों में अंतर होना स्वाभाविक है । अन्य भाषा अधिगम के संदर्भ में यह अंतर अधिक हो जाता है । बालक तथा वयस्क अध्येता की भाषा अधिगम प्रक्रिया में कुछ विशिष्टताओं का स्वत: समावेश होता है । द्वितीय अध्याय में इन्हीं विषयों के विवेचन का प्रयास किया गया है ।

बालक का भाषायी विकास अनेक दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण समझा जाता है । भाषा के विविध पक्षों पर बालक किस प्रकार अधिकार पा लेता है, इस प्रक्रिया में उसकी मानसिक शक्तियाँ तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की क्या भूमिका है ? भाषायी विकास के विविध स्तरों पर यह कुशलता किस प्रकार प्रतिबिंबित होती है ? परिपक्वन और भाषायी विकास क्रम में क्या संगति है ? तथा भाषायी विकास के विविध पक्ष एवं स्तर किस प्रकार परस्पर संबद्ध रूप में विकसित होते हैं आदि महत्वपूर्ण विषय हैं । तृतीय अध्याय में इन सभी मुद्दों पर सम्यक चर्चा की गई है । बालक के भाषायी विकास में विविध भाषायी पक्षों के विकास-क्रम में समानता परंतु विकास गति में भिन्नता के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए भाषायी विकास में व्यक्तिगत भिन्नता के कारकों पर समुचित प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है जिससे भाषा शिक्षण में इन निहितार्थों का अनुप्रयोग संभव हो सके ।

द्वितीय भाषा शिक्षण के संदर्भ में अध्येता की अधिगम प्रक्रिया से परिचित होना आवश्यक हो जाता है । अध्येता के दोहरे व्यक्तित्व, जिसमें वह मातृभाषा पर सहज अधिकार पाने के साथ-साथ अन्य भाषा में भाषायी कुशलताओं के विकास के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील होता है, की विशिष्टताओं का विवेचन मातृभाषा एवं अन्य भाषा अधिगम के संदर्भ में किया गया है ।

चूंकि अन्य भाषा अधिगम को विशिष्ट उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया जाता है अत: अध्येता की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं भाषायी पृष्ठभूमि के आधार पर व्यक्तिगत अंतर होना स्वाभाविक है । इसी परिपेक्ष्य में भाषा अधिगम संबंधी विचारधाराओं, भाषा अधिगम के सिद्धांतों एवं भाषा अधिगम तथा द्विभाषिकता पर समुचित प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है । चौथा अध्याय इसी दिशा में किया गया प्रयास है ।

अन्य भाषा अधिगम एवं शिक्षण को प्रभावित करने वाले तत्वों का उल्लेख प्रतिपाद्य विषय का अभिन्न अंग है । मातृभाषा की व्यवस्था पर समुचित अधिकार प्राप्त करने के बाद ही सामान्यत: अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया प्रारंभ होती है । अध्येता के मनोविज्ञान, उसके मानसिक, बौद्धिक तथा संवेगात्मक पक्ष का अधिगम

प्रक्रिया पर विशेष प्रभाव पड़ता है । दूसरी ओर मातृभाषा और अध्येय भाषा का प्रकृतिगत साम्य एवं वैषम्य तथा अन्य भाषा पर मातृभाषा की आदतों का सहज एवं स्वचालित प्रक्षेपण भाषायी व्याघात के रूप में विविध भाषायी स्तरों पर दृष्टिगत होता है । अत: भाषा अधिगम की प्रक्रिया भाषावैज्ञानिक तत्व से प्रभावित होती है । अध्येता सामाजिक परिवेश एवं संदर्भों में अन्य भाषा को सीखता है । स्पष्ट है कि अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया पर विविध सामाजिक संपर्क-स्थलों तथा उनको नियंत्रित करने वाले तत्वों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है । भाषा अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले इन घटकों के परिपेक्ष्य में ही शिक्षण प्रक्रिया का नियोजन एवं विकास संभव है । पाँचवें अध्याय में इनका सम्यक विवेचन किया गया है ।

भाषा शिक्षण तथा मातृभाषा शिक्षण, के संदर्भ में शिक्षण युक्तियों एवं सिद्धांतों की चर्चा का ऐतिहासिक महत्व स्वीकृत है । शिक्षा व्यवस्था में अध्येता के महत्व को भी सिद्धांतत: स्वीकार किया गया है परंतु भाषा शिक्षण का केंद्रीय तत्व अध्येता की अधिगम प्रक्रिया, उसको सक्रिय एवं गतिशील रखने वाले घटकों, मनोभाषावैज्ञानिक सिद्धांतों, अध्येता द्वारा प्रयुक्त संयुक्तियों तथा अन्य भाषा अधिगम के विविध सामाजिक संदर्भों का विवेचन सीमित हो रहा है । हिंदी में इस प्रकार की अध्ययन सामग्री का अभाव है । केंद्रीय हिंदी संस्थान इस दिशा में अपने उत्तरदायित्वों के प्रति पूर्णरूपेण सजग एवं सक्रिय है । प्रस्तुत प्रयास संस्थान के शैक्षिक दायित्व की 'मोनोग्राफ' शृंखला की एक कड़ी है ।

अत: सर्वप्रथम इस प्रेरणा के स्रोत, संस्थान के निदेशक डॉ० बाल गोविन्द मिश्र के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा कर्तव्य हो जाता है । उन्होंने न केवल इस कार्य को संपन्न करने का अवसर प्रदान किया है बल्कि वे निरंतर अपने अमूल्य सुझावों एवं उत्साहवर्धक दृष्टिकोण से प्रोत्साहित भी करते रहे हैं । अपनी व्यस्तता के बीच भी उन्हें इसकी प्रगति का ध्यान रहा है । उनकी सतत जागरूकता के फलस्वरूप ही यह शैक्षिक दायित्व संपन्न हो सका है । दिशा निर्देशक के रूप में उनके प्रति सादर आभार प्रकट करना सुखद अनुभूति है ।

प्रशिक्षण विभाग के अध्यक्ष, प्रोफेसर डॉ० अय्यंगार के प्रति भी आभार प्रकट करना मेरा कर्तव्य है । समय-समय पर उन्होंने जिज्ञासाओं का समाधान कर जो सहयोग प्रदान किया है उसके लिए वे श्रद्धा के पात्र हैं ।

संस्थान के भूतपूर्व प्रोफेसर डॉ० रमानाथ सहाय तथा पत्राचार एकक के प्रभारी प्रो० डॉ० न. वी. राजगोपालन का मैं कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करती हूँ जिनके प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग से यह कार्य संपन्न हो सका है ।

अपने सहयोगी डॉ० टी. के. नारायण पिल्लै को भी स्नेह स्मरण करना मेरा कर्तव्य हो जाता है। सहयोगी और छात्र दोनों रूपों में ही इन्होंने इसे पढ़कर जो छात्रोपयोगी सुझाव दिया है उसके लिए मैं उनको साधुवाद देती हूँ।

उन सभी विद्वानों के प्रति मैं श्रद्धानत हूँ जिनकी रचनाओं से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से चिंतन की सामग्री उपलब्ध हो सकी है और यह कार्य संपादित हो सका है।

अंत में प्रशासन एवं पुस्तकालय के अधिकारियों एवं सहयोगियों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा सुखद कर्तव्य हो जाता है। जिनकी सहायता के बिना इस कार्य को पूरा करना संभव न था।

मनोरमा गुप्त

विषय-सूची

1. **भाषा का मनोविज्ञान** 1—15

1.0. संकल्पना
1.1. मनोभाषाविज्ञान का स्वरूप
1.2. मनोभाषाविज्ञान का क्षेत्र
1.2.1. भाषा उपार्जन
1.2.1.1. बोधन
1.2.1.2. भाषायी अभिव्यक्ति
1.3. मनोभाषाविज्ञान तथा भाषा शिक्षण

2. **भाषा उपार्जन तथा भाषा अधिगम** 16—42

2.0. संकल्पना
2.1. मातृभाषा का उपार्जन
2.1.1. भाषा का उपार्जक
2.1.2. भाषायी उपार्जन का स्वरूप
2.1.2.1. एकरूपता का सिद्धांत
2.1.2.2. विविधता का सिद्धांत
2.1.2.2.1. भाषा विकास में विविधता के कारक
(1) सामान्य संज्ञानात्मक शक्तियाँ
(2) पर्यावरणगत विविधता
(3) व्यक्तिगत भिन्नताएँ
2.1.3. भाषा-उपार्जन-प्रक्रिया
2.1.3.1. बालक की क्षमताएँ तथा प्रयुक्त युक्तियाँ
2.1.3.1.1. उत्प्रेरण
2.1.3.1.2. प्रत्यक्षात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास
2.1.3.1.3. उपार्जन युक्तियाँ

(1) संदर्भगत अधिगम
(2) अनुकरण
(3) उपार्जन प्रक्रिया में सरलता एवं जटिलता
(4) संज्ञानात्मक बाध्यताएँ
(5) अभ्यास
(6) बारंबारता एवं संक्षिप्तता

2.1.3.1.4. अध्येता की प्रतिक्रिया एवं अंतर्भावितता
2.1.3.2. उपार्जन प्रक्रिया की आंतरिक प्रकृति
2.1.3.2.1. प्रत्यक्षात्मक प्रमुखता
2.1.3.2.2. रूपात्मक जटिलता
2.1.3.2.3. आर्थी जटिलता
2.1.3.2.4. भाषायी प्रारूप
2.1.3.2.5. भाषायी प्रयोगों का विस्तार
2.1 3.2.6. पुनर्बलन
2.1.3.3. पर्यावरण का योगदान
2.1.3.3.1. भाषायी उद्भासन

(1) भाषायी मात्रा का आधिक्य
(क) शिशु के साथ प्रत्यक्ष रूप से भाषायी प्रयोग
(ख) शिशु की उपस्थिति में परोक्ष भाषायी प्रयोग
(ग) बालक द्वारा व्यवहृत प्रयोग

(2) उच्चरित भाषा का परिवेश
(3) स्वाभाविक एवं अनियंत्रित परिवेश

2.1.3.3.2. भाषायी पुनर्निवेशन
2.2. भाषा अधिगम
2.2.1. भाषा उपार्जन तथा भाषा अधिगम में अंतर
2.2 1.1. उद्भासनगत अंतर
2.2.1.2. संदर्भगत अंतर
2.2.1.3. आवश्यकताजन्य अंतर
2.2.1.4. पुनर्बलनगत अंतर
2.2.1.5. उत्प्रेरणगत अंतर
2.2.1.6. प्रकृतिगत अंतर
2.2.2. बालक तथा वयस्क अध्येता

3. **बालक का भाषायी विकास** 43—74
3.0. संकल्पना
3.1. भाषायी विकास के विविध पक्ष
3.1.1. ध्वनि-विकास
3.1.1.1. रोना
3.1.1.2. बबलाना
3.1.1.3. ध्वनि अनुरणन
3.1.1.4. बोलना
3.1.2. शब्द विकास
3.1.2.1. संक्षिप्तता का नियम
3.1.2.2. बारंबारता का नियम
3.1.3. अर्थ-विकास
3.1.4. व्याकरणिक विकास
3.1.5. अमूर्तता की योग्यता का विकास
3.1.6. भाषायी व्यवहार एवं परिवेश
3.1.7. बोधन और वाक् व्यापार
3.2. भाषायी विकास के स्तर
3.2.1. वाक्-क्रियापूर्व स्तर
3.2.1.1. संवेदनागतिपरक स्तर
3.2.1.2. भाषायी बोधन स्तर
3.2.2. प्रारंभिक वाक् क्रियाएँ एवं भाषायी व्यवहार
3.2.2.1. एक पदीय प्रयोग
3.2.2.2. द्विपदीय प्रयोग
(1) शब्द संयोजन
(2) थीम संकेत
3.2.3. विभेदक वाक् सम्प्रेषण
3.2.4. परवर्ती स्तर
3.2.4.1. भाषायी जटिलता
(1) संज्ञानात्मक जटिलता
(2) रूपात्मक जटिलता
3.2.4.2. भाषायी सृजनात्मकता
3.3. भाषायी विकास के विविध पक्षों एवं स्तरों में पारस्परिक संबंध
3.4. भाषायी विकास में व्यक्तिगत भिन्नताएँ

4. द्वितीय भाषा अधिगम 75—115

4.0. द्वितीय भाषा अधिगम-संकल्पना

4.1. मातृभाषा तथा द्वितीय भाषा अधिगम और अध्यापन में भिन्नताएँ

4.1.1. उद्भासनगत अंतर

4.1.2. संज्ञानात्मक परिपक्वन

4.1.3. मनोवैज्ञानिक अधिगम युक्तियाँ

4.1.4. सांस्कृतिक संदर्भ

4.1.5. भाषायी प्रभाव

4.1.6. भावात्मक तथा मनोवैज्ञानिक स्थिति

4.2. अन्य भाषा अधिगम में व्यक्तिगत भिन्नताएँ

4.2.1. सामान्य अधिगम योग्यता

4.2.2. ध्वनियों के कोडीकरण की योग्यता

4.2.3. व्याकरणिक संवेदनशीलता

4.2.4. आगमनात्मक अधिगम योग्यता

4.2.5. साहचर्यात्मक स्मृति

4.2.6. उत्प्रेरण

4.3. भाषा अधिगम से संबंधित विचारधाराएँ

4.3.1. व्यवहारवादी विचारधारा

4.3.2. बुद्धिवादी विचारधारा

4.3.3. अन्य भाषा अधिगम तथा शिक्षण में इनका योगदान

4.4. द्वितीय भाषा अधिगम के सिद्धांत

4.4.1. सुगमता का सिद्धांत

4.4.2. व्याघात का सिद्धांत

4.4.3. द्वितीय भाषा व्यतिरेकी अधिगम

4.5. द्वितीय भाषा-अधिगम तथा द्विभाषिकता

4.5.1. द्विभाषिकता एवं उसकी प्रकृति

4.5.2. द्विभाषिकता से संबंधित भ्रम

4.5.3. द्विभाषिकता का भारतीय संदर्भ

5. अन्य भाषा अधिगम को प्रभावित करने वाले तत्व 116—139

5.0. संकल्पना

5.1. मनोवैज्ञानिक तत्व

5.1.1. मानसिक अथवा बौद्धिक पक्ष

5.1.1.1. आयु

5.1.1.2. उद्देश्यों की चेतना

5.1.1.3. बुद्धि तथा व्यक्तित्व

5.1.1.4. मानसिक शक्तियाँ

(1) स्मृति

(2) अवधान

(3) चिंतन शक्ति

(4) अन्य मानसिक शक्तियाँ

5.1.2. संवेगात्मक पक्ष

5.1.2.1. भाषायी अभिवृत्ति

5.1.2.2. उत्प्रेरण

(1) उपकरणात्मक

(2) समन्वयात्मक

5.2. भाषावैज्ञानिक तत्व

5.2.1. मातृभाषा तथा अन्य भाषा—समानता एवं भिन्नता

5.2.2. मातृभाषा का व्याघात

5.3. समाज वैज्ञानिक तत्व

5.3.1. विविध सामाजिक संपर्क

5.3.1.1. परिवार

5.3.1.2. निकटवर्ती समुदाय

5.3.1.3. विद्यालय

5.3.1.4. व्यवसाय

5.3.1.5. सांस्कृतिक एवं धार्मिक संगठन

5.3.1.6. क्रीड़ा समुदाय

5.3.1.7. श्रव्य दृश्य उपकरण

5.3.1.8. वाचन सामग्री
5.3.2. सामाजिक संपर्कों को नियंत्रित करने वाले तत्व
5.3.2.1. समय
5.3.2.2. जनसंख्या
5.3.2.3. भाषा प्रयोग
5.3.2.4. भाषायी स्तर
5.3.2.5. सांस्कृतिक स्तर
5.3.2.6. अभिवृत्ति
5.3.2.7. सामाजिक बाध्यता

1
भाषा का मनोविज्ञान

1.0. भाषा मानवीय व्यवहार का केंद्र तंतु है। गहन चिंतन, मनन तथा सामान्य दैनिक व्यवहार में भाषा का ही निरंतर प्रयोग होता है। औपचारिक, अनौपचारिक चर्चा, व्यवसाय, दैनिक क्रिया कलाप तथा धार्मिक, आध्यात्मिक चिंतन में भाषा का ही आधिपत्य है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताएँ भाषा के माध्यम से ही संक्रमित होती हैं। यही कारण है कि भाषा को समाज और संस्कृति का अभिन्न अंग माना गया है।

विविध कार्य क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाली भाषा का मुख्य कार्य सम्प्रेषण है। सम्प्रेषण के अन्य माध्यमों की तुलना में इसे सर्वाधिक शक्तिशाली माध्यम माना गया है। अतः मानवीय सम्प्रेषण-माध्यम के रूप में भाषा मानव समाज के लिए न केवल आवश्यक है बल्कि उसके अस्तित्व के लिए नितांत अनिवार्य भी है। स्पष्ट है कि भाषा, मानव और समाज सहन्यस्त संकल्पनाएँ हैं।

सम्प्रेषण के माध्यम के रूप में भाषा का व्यवहार केवल मानव ही कर सकता है, अन्य जीवधारी नहीं। यद्यपि भाषा संबंधी कुछ प्रयोगों में मानवेतर प्राणियों द्वारा भी भाषा अधिगम का संकेत मिलता है; परंतु भाषा की विशिष्ट प्रकृति सृजनात्मकता पर मानव का ही एकांतिक अधिकार है। अतः इसे सार्वभौमिक मानवीय उत्तराधिकार कहा जा सकता है। भाषा के महत्व का अनुमान इसके प्रकार्यों से लगाया जा सकता है। ये प्रकार्य बहुमुखी हैं। भाषा के माध्यम से मानव अपने दृष्टिकोणों, आस्थाओं, विश्वासों, विचारों तथा अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने में समर्थ होता है। सामाजिक परंपरा के गठन का यह प्रमुख आधार है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति का समस्त चिंतन तथा उसका कार्य व्यापार पूर्वजों के चिंतन तथा कार्य व्यापार से प्रभावित होता है। इसके माध्यम से ही मानव आत्माभिव्यक्ति में समर्थ होता है, जिसका चरम रूप साहित्य में साकार होता है। भाषा के द्वारा ही मानव विविध प्रकार के कार्यों, यथा—सूचना, आदेश, चुनौती, अनुरोध आदि को निष्पन्न करता है। स्पष्ट है कि भाषा सम्प्रेषण के सशक्त माध्यम के रूप में अभिव्यंजनात्मक तथा

सूचनात्मक कुशलता से युक्त विशिष्ट क्रिया व्यापार है। इसका बाह्य पक्ष जितना ही स्पष्ट एवं सुबोध है, उसका आंतरिक पक्ष उतना ही जटिल एवं अस्पष्ट है। वस्तुतः भाषा का प्रयोग करते समय मनुष्य का ध्यान इसकी प्रकृतिगत गंभीरता की ओर नहीं जाता।

भाषा का क्षेत्र बहुआयामीय है, इसके संबंध में अनेक दृष्टिकोणों से चर्चा की जा सकती है, यथा—ऐतिहासिक, भाषावैज्ञानिक, समाज वैज्ञानिक आदि। परंतु शिक्षण के संदर्भ में भाषा के मनोभाषावैज्ञानिक उपागम का विकल्प ही अधिक समीचीन माना जाता है।

भाषा वाक् अवयवों से उच्चरित केवल शारीरिक क्रिया नहीं वरन् जटिल मानसिक प्रक्रियाओं से संबद्ध मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया भी है। भाषा के विशिष्ट अभिलक्षण तथा शब्द अर्थ की अन्योन्य प्रकृति भाषा से संबंधित मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के द्योतक हैं। अत. भाषा को व्यक्ति, उसके परिवेश तथा मानव मनोविज्ञान से संबद्ध एक विशिष्ट प्रकार का जटिल व्यवहार माना गया है जिसका मुख्य कार्य सम्प्रेषण है। सम्प्रेषण आंतरिक शक्तियों एवं जटिल मानसिक प्रक्रियाओं पर आधारित है।

बोधन तथा मौखिक अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में इस जटिलता का संकेत मिलता है। वस्तुतः भाषायी व्यवहार का संबंध मानसिक प्रक्रियाओं से है जिनके द्वारा भाषायी अभिव्यक्ति का रूप गठित होता है। ये मानसिक शक्तियाँ एवं प्रक्रियाएँ अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक भाषायी व्यवहार में अंतर्भूत रहती हैं। इनका केवल अनुमान लगाया जा सकता है। भाषा व्यवहार की इस विशिष्टता के कारण ही इसकी तुलना हिम शिला खंड से की जाती है जिसका अधिकतम भाग (जल में) तिरोहित रहता है, केवल अंश मात्र ही वाक्-व्यापार के माध्यम से प्रकट होता है। यह प्रत्यक्ष तथा परोक्ष भाषायी व्यवहार मानसिक प्रक्रियाओं से इस प्रकार अंतर्ग्रथित एवं नियंत्रित है कि भाषायी विवेचन में भाषा के मनोविज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका अपरिहार्य हो जाती है।

भाषा के प्रयोग में मानव के अंतर्जगत तथा बाह्य परिवेश इन दोनों का सामंजस्य किस प्रकार स्थापित होता है? परिवेश से संबद्ध प्राणी एवं पदार्थ जगत तथा विविध कार्य व्यापार की संकल्पनाएँ मानव मन में किस प्रकार गठित होती हैं? वह कौन सी प्रक्रिया है जो मानसिक स्तर पर इनका चयन, इनकी व्यवस्था तथा इनमें अंतः संबंध स्थापित करती है? आदि अनेक प्रश्नों का उत्तर भाषा के मनोविज्ञान की सहायता से ही संभव है। वस्तुतः भाषायी क्रिया इतनी सूक्ष्म और जटिल है कि भाषा का वैज्ञानिक विवेचन करने वाले विद्वान भी अपने मापदंडों को अपर्याप्त

मानते हैं। परंतु शिक्षण-परक अंतर्दृष्टि के विकास के लिए यह नितांत आवश्यक है कि भाषा से संबद्ध विविध मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का, भाषा के मनोविज्ञान का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया जाये।

1.1. मनोभाषा विज्ञान का स्वरूप

भाषा के मनोविज्ञान की संकल्पना कोई नवीन उद्भावना नहीं है। भारतीय साहित्य में इसकी पर्याप्त चर्चा की गयी है। पाणिनी ने शिक्षा में उच्चारण की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा है—

"आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान
मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्नि माहन्ति
सः प्रेरयति मारुतम।"

आत्मा बुद्धि से विषयों का संकलन करके मन को प्रेषित करती है। यह मन शरीरस्थ अग्नि को सक्रिय बनाता है और उससे प्रेरणा लेकर वायु ऊपर की ओर चलती है। वही वायु उच्चारण स्थानों में प्रतिहत होकर ध्वनियों का उच्चारण करने में समर्थ होती है। इन सबमें मन का व्यापार स्पष्ट रूप से परिलक्षित है।

नैयायिकों के अनुसार अर्थ ज्ञान श्रोता को उसी दशा में हो सकता है जब पहले से उसको शक्ति ज्ञान हो जाता है। शक्ति ज्ञान वक्ता तथा श्रोता के बीच सम्प्रेषण के लिए सेतु का काम करता है। यह एक मानसिक व्यापार है।

मीमांसा शास्त्र में भाषा को, शब्द को नित्य माना गया है। हमारी ध्वनियाँ इस नित्य भाषा का स्मरण कराती हैं। अतः भाषा एक मानसिक प्रक्रिया के रूप में काम करती है।

पाश्चात्य विचारकों ने भाषा तथा मानसिक प्रक्रियाओं के संबंध को स्वीकार किया है। वुर्फ के निबंध "अभ्यास मूलक विचार और व्यवहार का भाषा से संबंध" में प्रयुक्त 'विचार' और 'व्यवहार' शब्द भाषा के मनोवैज्ञानिक पक्ष की ओर संकेत करते हैं। चामस्की ने भाषाविज्ञान को संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की एक शाखा माना है अतः भाषा एवं मानसिक क्रियाओं की संबद्धता सुस्पष्ट है। अन्य भाषाविदों ने भी भाषा के मनोवैज्ञानिक संदर्भ को विशेष महत्व दिया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है भाषा के मनोविज्ञान के लिए नवनिर्मित शब्द 'मनोभाषा-

विज्ञान' का विशेष प्रचलन। यद्यपि मनोभाषा वैज्ञानिक अनुसंधानों का संबंध भाषाविज्ञान की नवीन उदभावनाओं से कम है, परंतु इससे भाषा और मनोविज्ञान का संबंध 'नवीनतम' अथवा न्यूनतम नहीं कहा जा सकता। भाषा और मनोविज्ञान का संबंध उतना ही शाश्वत है जितना स्वयं भाषा का अस्तित्व।

मनोभाषाविज्ञान, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है ज्ञान क्षेत्र की दो विधाओं का संगम है—मनोविज्ञान तथा भाषाविज्ञान। मनोभाषाविज्ञान के स्वरूप से परिचत होने के लिए इन दोनों ही विधाओं की प्रमुख मान्यताओं को स्पष्ट करना उचित होगा।

मनोविज्ञान मानव व्यवहार का सूक्ष्मतम अध्ययन प्रस्तुत करता है। मानव के समग्र व्यवहार की विशिष्टताओं का, उनमें अंतर्भूत नियमों एवं प्रक्रियाओं का यथासंभव विश्लेषण करने में मनोविज्ञान सक्षम है। मानव की विविध मानसिक शक्तियाँ, यथा—संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, चिंतन, अवधान, स्मृति तथा कल्पना आदि—किस प्रकार गठित एवं क्रियाशील होती हैं इसका अध्ययन मनोविज्ञान का क्षेत्र है। ये मानसिक शक्तियाँ भाषा के माध्यम से ही विकसित एवं गतिशील होती हैं; दूसरी और भाषायी प्रतीकों के गठन एवं भाषा के अस्तित्व में इनका विशेष योगदान है। स्पष्ट है कि मनोविज्ञान भाषा को बोधात्मक ज्ञान का एक अंग मानता है और इसका अध्ययन सामान्य तथा मानवीय व्यवहार-क्षेत्र में करता है। इसका क्षेत्र उन भाषेतर परिवर्तों तक व्याप्त है जो भाषिक व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

दूसरी ओर भाषाविज्ञान भाषायी व्यवस्था का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करता है। भाषा को वह अतिसुनियोजित व्यवस्था मानता है। संरचनावादी भाषा-वैज्ञानिकों का मुख्य उद्देश्य भाषा का, उसकी संरचना का ही वर्णन करना रहा है। इसके आधार पर वे भाषा की प्रकृति तथा उसकी कार्यकारिता को सफलतापूर्वक समझने का दावा करते हैं। आधुनिक भाषाविज्ञान का लक्ष्य केवल वाक्यों की गणना और विवरण न होकर, उन नियमों का निर्धारण करना है जो भाषिक क्षमता से संबद्ध हैं। चामस्की के अनुसार भाषाविज्ञान का उद्देश्य मानव-मस्तिष्क में घटित होने वाली उन प्रक्रियाओं को चित्रित करना है जो भाषिक व्यवहार के आधार हैं।

आधुनिक भाषाविज्ञान, की भाँति आधुनिक मनोभाषाविज्ञान में भी चामस्की के भाषायी संरचना के सिद्धांतों और भाषा के सिद्धांत की प्रकृति की चर्चा को विशेष महत्व दिया गया है। भाषा उपार्जन, अर्थ तत्व तथा भाषायी सार्वभौम तत्वों से संबंधित चर्चा मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। उनके प्रजनन रूपांतरण व्याकरण

सिद्धांतों ने मनोभाषाविज्ञान को भाषा विवेचन का सुदृढ़ एवं सुसंबद्ध आधार प्रदान किया है।

कुछ भाषावैज्ञानिकों ने जिनमें लेकाव, मैकाले, चैफे का नाम प्रमुख है, भाषा की आर्थी संरचना को ही प्रमुख माना है। इनके अनुसार भाषा आर्थी नियमों का एक कुलक है। इसके द्वारा स्वीकार्य आर्थी संरचनाओं एवं वाक्यीय नियमों का निर्धारण होता है। भाषा का मुख्य कार्य अर्थ की अभिव्यक्ति है अतः आर्थी व्यवस्था ही भाषा की आधारभूत व्यवस्था है। स्पष्ट है कि भाषायी विवेचन में भाषाविज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका है। भाषा के स्वरूप-निरूपण की विविध संभावनाओं तथा उपागमों का संकेत देने में यह समर्थ सिद्ध हुआ है। फलस्वरूप भाषा की प्रकृति एवं कार्यकारिता के साथ-साथ भाषा संप्राप्ति के संबंध में भी गंभीर चिंतन एवं मनन संभव हो सका है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भाषाविज्ञान यदि भाषा का, भाषायी व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक सिद्धांत है तो मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं का भाषायी ज्ञान का सिद्धांत है। मनोभाषाविज्ञान इन दोनों का समन्वित उपागम है। वस्तुतः मनोभाषाविज्ञान का उद्देश्य इस तथ्य को स्पष्ट करना है कि भाषायी ज्ञान संज्ञानात्मक व्यवस्था में किस प्रकार द्योतित होता है? इसके साथ ही साथ वह उन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की ओर भी संकेत करता है जो इस ज्ञान का उपयोग करती हैं। संज्ञानात्मक व्यवस्था का संबंध मुख्यतः जानने और विचारने की प्रक्रिया से है। ज्ञानात्मक प्रक्रिया में, संकल्पना निर्माण में, स्मृति, अवधारणा तथा चिंतन प्रक्रिया में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। वस्तुतः समस्त मानसिक प्रक्रियाएँ भाषा के माध्यम से क्रियान्वित एवं विकसित होती हैं। मनोभाषाविज्ञान इन सबका सम्यक विवेचन करता है। इतना ही नहीं इसका संबंध उन विधाओं से भी है जो मानव मस्तिष्क की संरचना तथा कार्य प्रणाली का अध्ययन करती हैं। मानवीय सम्प्रेषण का अध्ययन तो इसका निकटवर्ती क्षेत्र है ही, परंतु इसका केंद्रवर्ती बिंदु सम्प्रेषण की संकल्पना न होकर भाषायी योग्यताएँ हैं जिनके द्वारा सम्प्रेषण की प्रक्रिया संपन्न होती है।

भाषाविज्ञान तथा मनोविज्ञान की समन्वित निष्पत्ति मनोभाषाविज्ञान द्वारा सम्प्रेषण का स्वरूप अगले पृष्ठ पर दिए गए आरेख से स्पष्ट हो जाता है।

सामान्य भाषाविज्ञान भाषा के सिद्धांतों का निर्धारण करता है जिससे भाषा वर्णन की दिशाएँ प्रशस्त होती हैं। भाषा वर्णन के आधार पर भाषायी प्रारूपों का गठन संभव है। दूसरी ओर सामान्य मनोविज्ञान अधिगम के सिद्धांतों का विवेचन करता

है साथ ही संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का भी विवरण प्रस्तुत करता है। भाषा सिद्धांत तथा अधिगम सिद्धांत परस्पर संबद्ध होकर भाषा अधिगम के सिद्धांतों का गठन करते हैं। इस प्रकार मनोभाषाविज्ञान मनोविज्ञान तथा भाषाविज्ञान की समन्वित निष्पत्ति है। एक ओर वह भाषा अधिगम के सिद्धांतों से संबद्ध है तो दूसरी ओर भाषा निष्पादन से। भाषायी निष्पादन एक समन्वित प्रक्रिया है जो भाषा अधिगम के सिद्धांतों, भाषायी प्रारूपों तथा भाषा प्रयोग के सिद्धांतों से प्रभावित है। अन्य भाषा शिक्षण विज्ञान उनकी समान्वित निष्पत्ति है।

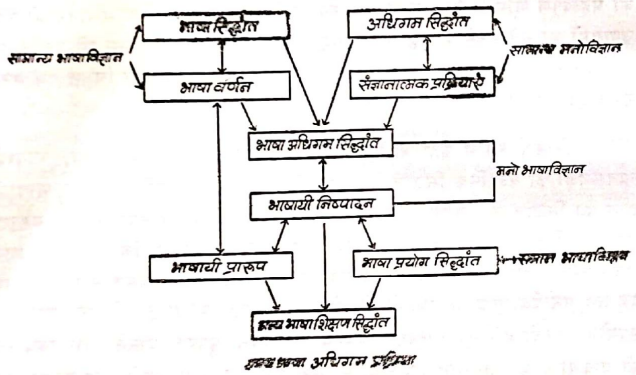

आरेख—1

मनोभाषाविज्ञान शब्द का प्रयोग व्यापक तथा संकुचित दोनों ही अर्थों में किया जाता रहा है। व्यापक अर्थ में मनोभाषाविज्ञान संदेशों तथा उनके चयनकर्ता एवं व्याख्याता मानव के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन माना गया है। संकुचित अर्थ में मनोभाषाविज्ञान को कोडीकरण और विकोडीकरण की प्रक्रियाओं से संबद्ध किया गया है। इस अर्थ में मनोभाषाविज्ञान उन प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है जिसके द्वारा वक्ता का अभिप्रेत सांस्कृतिक दृष्टि से ग्रहीत कोड संकेतों में परिणत होता है और ये संकेत श्रोता द्वारा संदेशों के रूप में व्याख्यायित होते हैं। वस्तुतः पदार्थ तथा प्राणी जगत की वस्तुओं, घटनाओं, तथा क्रियाओं आदि से संबंधित संकल्पनाओं का निर्माण, भाषायी प्रतीकों की रचना, उनके माध्यम से विचारों तथा भावों की अभिव्यक्ति तथा श्रोता द्वारा ध्वनि-लिपि प्रतीकों में निहित विचारों एवं भावों को ग्रहण करने की प्रक्रिया में विविध मानसिक शक्तियाँ कार्यरत रहती हैं।

मनोभाषाविज्ञान का दायित्व केवल भाषायी प्रदत्तों का ही विश्लेषण करना नहीं है बल्कि भाषा अर्जन और उसके अनुरक्षण से संबंधित वास्तविक भाषायी व्यवहार का भी अध्ययन करना है। भाषा के मनोविज्ञान का मुख्य कार्य उन मानसिक प्रक्रियाओं का विवेचन करना है जो भाषायी निष्पादन एवं बोधन से संबंधित हैं। यही कारण है कि इसे संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का एक उपक्षेत्र माना गया है। वस्तुतः भाषा के प्रयोक्ता मानव का भाषायी व्यवहार सूक्ष्म एवं जटिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं पर आधारित है। अस्तु मनोभाषाविज्ञान को मानवीय क्रिया के रूप में भाषा के अध्ययन, उपार्जन एवं व्यवहार से संबद्ध मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का समुच्चय कहा जा सकता है। इस विधा की प्रकृति से अवगत होने के लिए इसके क्षेत्र से परिचित होना भी आवश्यक है।

1.2. मनोभाषाविज्ञान का क्षेत्र

भाषा व्यवहार की विशिष्टता के रूप में भाषा का अध्ययन मुख्यतः मनोभाषाविज्ञान का क्षेत्र माना गया है। मनोभाषाविज्ञान का संबंध सामान्यतः निम्नलिखित प्रश्नों से है—

(1) मनुष्य भाषा जानता है इसका क्या अभिप्राय है? अर्थात् भाषा प्रयोक्ता के भाषा-ज्ञान का वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है?

(2) भाषा के बोधन तथा उत्पादन में व्यक्ति भाषा-ज्ञान का उपयोग किस प्रकार करता है अर्थात् श्रवण, भाषण, वाचन लेखन और चिंतन में मानव मस्तिष्क किस प्रकार कार्य करता है?

(3) व्यक्ति भाषा का ज्ञान तथा भाषा प्रयोग की योग्यता कैसे अर्जित करता है?

मनोभाषाविज्ञान के क्षेत्र का निर्धारण इन संदर्भों के आधार पर किया जा सकता है। स्पष्ट है कि मनोभाषाविज्ञान का मुख्य कार्य उन समस्त मानसिक प्रक्रियाओं का विवेचन करना है जो भाषा ज्ञान से, भाषा संप्राप्ति और भाषा प्रयोग अथवा व्यवहार से संबद्ध हैं। भाषा उपार्जन में बालक क्या अर्जित करता है, किस प्रकार अर्जित करता है, तथा संदेशों के बोधन एवं अभिव्यक्ति में इनका किस प्रकार उपयोग करता है आदि इसके प्रमुख अध्ययन क्षेत्र हैं। भाषायी सम्प्रेषण में किन कुशलताओं का विशिष्ट योगदान है, कौन-सी मानसिक शक्तियाँ कार्यरत रहती हैं इनका विस्तृत विवेचन मनोभाषाविज्ञान के आधार पर ही संभव है। अतः मनोभाषाविज्ञान क्षेत्र को भाषा उपार्जन, बोधन तथा अभिव्यक्ति से संबंधित मनोवैज्ञानिक तथा भाषायी प्रक्रियाओं के अध्ययन तक सीमित किया जा सकता है।

भाषायी व्यवहार में अंतर्भूत मानसिक शक्तियों की प्रकृति तथा उनकी कार्यकारिता का अध्ययन इसका विशिष्ट लक्ष्य है। अस्तु भाषा उपार्जन, बोधन तथा अभिव्यक्ति की संकल्पनाओं एवं संबद्ध प्रक्रियाओं की संक्षेप में चर्चा करना आवश्यक है।

1.2.1. भाषा उपार्जन

कहा जा चुका है कि भाषा के मनोविज्ञान का मुख्य कार्य बोधन एवं अभिव्यक्ति में निहित मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का विवेचन करना है। इसका प्रमुख उपागम यह है कि उन प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाय जिससे बालक इस प्रकार की भाषायी कुशलताएँ अर्जित करता है।

अधिगम तथा शिक्षण के संदर्भ में सामान्यतः दो शब्दों का प्रचलन है 'उपार्जन' तथा 'अधिगम'। इन प्रयोगों से संबंधित किसी भी प्रकार के भ्रम की संभावना से बचने के लिए यह आवश्यक है कि 'भाषा उपार्जन' एवं 'भाषा अधिगम' की संकल्पनाओं को प्रारंभ में ही स्पष्ट कर दिया जाय।

भाषा उपार्जन का संबंध उस प्रक्रिया से है जिसमें बालक बिना किसी औपचारिक शिक्षण के प्रारंभिक रूप से स्वतः भाषा सीखना प्रारंभ करता है। इसके विपरीत भाषा अधिगम औपचारिक परिवेश में सुनियोजित शिक्षण के फलस्वरूप भाषा सीखने की नियंत्रित प्रक्रिया है।

भाषा उपार्जन की प्रक्रिया सहज, स्वाभाविक एवं अनौपचारिक प्रक्रिया है। प्रत्येक सामान्य मानव शिशु में मातृभाषा के उपार्जन की प्रक्रिया शैशवावस्था से ही प्रारंभ हो जाती है। शिशु बाह्य परिवेश एवं पदार्थ जगत का प्रत्यक्षीकरण करने के साथ ही विविध प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करना भी सीखता है। इन क्रियाओं के साथ ही भाषा अर्जन की प्रक्रिया भी क्रमशः विकसित होती है। भाषा उपार्जन का परिपक्वन—शारीरिक एवं मानसिक—से घनिष्ट संबंध है। परिपक्वन में किसी भी प्रकार का पिछड़ापन बालक के भाषायी विकास में पिछड़ेपन का कारण बन सकता है।

भाषा उपार्जन अथवा संप्राप्ति की प्रक्रिया में कौन-कौन सी मानसिक शक्तियाँ क्रियाशील रहती हैं, उनका कितना योगदान है इनका वैज्ञानिक विवेचन संभव नहीं है। केवल शिशु के भाषायी उच्चारों के आधार पर ही कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भाषा संप्राप्ति का संबंध उन समस्त मानसिक शक्तियों एवं प्रक्रियाओं से है जिनके माध्यम से बालक भाषा अर्जित करता है। भाषा उपार्जन से संबंधित सिद्धांतों तथा नियमों का विस्तृत विवेचन अगले

अध्याय में किया गया है, अतः यहाँ केवल इस बात का संकेत देना ही पर्याप्त होगा कि भाषा उपार्जन का संबंध एक ओर भाषाई घटकों तथा व्यवस्थाओं से है तो दूसरी ओर इस व्यवस्था को सहज रूप से आत्मसात करने में सहायक मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों, नियमों तथा प्रक्रियाओं से है। भाषावैज्ञानिकों ने इस संबंध में अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। चामस्की का 'भाषाई क्षमता और निष्पादन' का सिद्धांत तथा स्किनर का 'भाषायी व्यवहार' का सिद्धांत विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

'क्षमता' का सिद्धांत यह प्रतिपादित करता है कि भाषा उपार्जन की क्षमता प्रत्येक सामान्य मानव शिशु में स्वाभाविक रूप में जन्म से ही वर्तमान होती है। समुचित भाषायी उद्भासन के फलस्वरूप शिशु में विद्यमान यह भाषायी क्षमता क्रियाशील होती है। फलस्वरूप वह संबद्ध भाषा को सहज एवं स्वाभाविक रूप से उपार्जित करने लगता है। भाषा के प्रयोक्ता में निहित भाषायी क्षमता का गठन वस्तुतः उन नियमों के द्वारा होता है जो उसमें (प्रयोक्ता) अचेतन रूप से स्वतः वर्तमान होते हैं। भाषायी क्षमता के सिद्धांत को भाषा का व्याकरण भी कहा जा सकता है। इसका संबंध वक्ता द्वारा ग्रहीत भाषायी नियमों से है—नियम निर्देशन अथवा भाषा प्रयोग को नियमित करने वाले नियमों से नहीं है। इनके आधार पर ही भाषा का प्रयोक्ता वाक्यों की व्याकरण सम्मतता का निर्णय लेता है। ये भाषायी नियम अचेतन धरातल पर वर्तमान रहते हैं। अतः बालक के भाषायी व्यवहार के आधार पर ही इनका अनुमान लगाया जा सकता है। यह क्षमता भाषायी निष्पादन के रूप में प्रतिफलित होती है। भाषायी निष्पादन का सिद्धांत वस्तुतः भाषायी क्षमता के वास्तविक उपयोग से संबंधित मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से संबद्ध है यथा उच्चारों के बोधन, उत्पादन, भाषायी निर्णय तथा उनकी संप्राप्ति का क्रम आदि। मनोभाषाविज्ञान का मुख्य दायित्व निष्पादन के सिद्धांत एवं संबंधित मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का विवेचन करना है। यह एक जटिल कार्य है। भाषावैज्ञानिक जिस प्रकार भाषायी क्षमता के सिद्धांत के प्रतिपादन में कठिनाई का अनुभव करता है लगभग वही स्थिति मनोभाषावैज्ञानिक की भी होती है। भाषावैज्ञानिक की भाँति मनोभाषावैज्ञानिक को भी अवलोकित निष्पादित भाषायी व्यवहार के आधार पर सन्निहित प्रक्रियाओं का अनुमान लगाना पड़ता है। भाषायी निष्पादन का सिद्धांत, भाषायी क्षमता के सिद्धांत से प्रगाढ़ रूप से संबद्ध होते हुए भी मूलतः भिन्न है। एक को भाषा का, भाषायी व्यवस्थाओं का सिद्धांत कहा जा सकता है दूसरा भाषायी ज्ञान प्रक्रिया का समन्वित सिद्धांत है।

भाषा निष्पादन का क्षेत्र विस्तृत है। बोधन तथा अभिव्यक्ति इसकी दो प्रमुख दिशाएँ हैं। अतः भाषा उपार्जन के विवेचन साथ-साथ बोधन, अभिव्यक्ति एवं तत्संबंधी मानसिक प्रक्रियाओं का विवेचन आवश्यक हो जाता है।

1.2.1.1. बोधन

भाषायी व्यवहार वक्ता तथा श्रोता के बीच घटित एक मनोसामाजिक प्रक्रिया है। सहज ही जिज्ञासा होती है कि वक्ता जब अपने अभिप्रेत को, विचारों को सम्प्रेषित करता है तब श्रोता के मस्तिष्क में कौन-कौन सी प्रक्रियाएँ घटित होती हैं? सामान्यत: बोधन को सरल, त्वरित एवं प्रयत्नविहीन स्थिति मानने का भ्रम होता है। परंतु बोधन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसमें भाषा को सुनकर समझने की कुशलता समाहित है। श्रोता वक्ता के उच्चारों को अविच्छिन्न ध्वनि लहर के रूप में सुनता है, भाषायी इकाइयों के रूप में उनका प्रत्यक्षीकरण करता है तथा वक्ता द्वारा प्रयुक्त बलाघात और अनुतान के आधार पर अर्थ ग्रहण करता है। इस प्रकार बोधन की प्रक्रिया में अनेक क्रियात्मक स्तर निहित हैं। इनका मुख्य प्रकार्य वक्ता के उच्चारित ध्वनि प्रतीकों को अंतर्निहित अर्थ प्रतीकों में रूपांतरित करना है।

बोधन की प्रक्रिया में विविध जटिल मानसिक प्रक्रियाएँ समाहित रहती हैं। श्रवण-प्रक्रिया इसका प्रथम सोपान है। श्रोता बाह्य जगत में भाषायी ध्वनियों को अन्य प्रकार की ध्वनियों से पृथक कर ध्यान सहित सुनता है। इस प्रक्रिया पर उसका नियंत्रण होता है। इसका दूसरा स्तर ध्वनियों की पहचान अथवा प्रत्यभिज्ञान है। ध्वनिप्रत्यभिज्ञान का संबंध प्रत्यक्षीकरण की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से है। प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया त्वरित, अर्थपूर्ण एवं जटिल प्रक्रिया है। सामान्यत: श्रोता का ध्यान वक्ता के अभिप्रेत पर, संदेशों के अर्थ पर केंद्रित होता है, ध्वनि प्रतीकों पर नहीं। वाक्प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया ध्वनि प्रतीकों के श्रवण से प्रारंभ हो कर अर्थ प्रतीकों में किस प्रकार रूपांतरित होती है, इसमें मानसिक शक्तियों की जटिल शृंखला कार्यरत रहती है। प्रत्यक्षीकरण में अनुमान की प्रक्रिया समाहित है। इस प्रक्रिया में श्रोता संवेदनात्मक प्रदत्तों से पदार्थगत सत्य तक पहुँचता है। स्पष्ट है कि प्रत्यक्षीकरण संवेदनात्मक उद्दीपनों से आक्रांत निष्क्रिय प्रक्रिया न होकर सोद्देश्य एवं सक्रिय प्रक्रिया है। समस्या समाधान की बौद्धिक प्रक्रिया का भी इसमें स्वत: समावेश रहता है। अत: "पहचान" सक्रिय संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। पदार्थगत प्राक्कल्पनाएँ अगमनात्मक रूप से सीखी जाती हैं। भाषायी ध्वनियों की पहचान में संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ गतिशील रहती हैं। छात्र अन्य भाषा की केवल उन ध्वनियों को ही सुनकर पहचान पाता है जो मातृभाषा की परिचित ध्वनियों से साम्य रखती हैं। अन्य भाषा का अध्येता मातृभाषा की संकल्पनाओं के माध्यम से ही अन्य भाषा को ग्रहण करता है। अन्य भाषा की ध्वनियों के उच्चारण में यह विशिष्टता स्पष्टतया परिलक्षित होती है। अभिज्ञान अथवा पहचान की प्रक्रिया का क्षेत्र ध्वनियों, अनुतान सांचों तथा भाषा के लयात्मक तत्वों को समाहित करता हुआ ध्वनि संयोगों तथा कोशीय शब्दों तक व्याप्त हो जाता है।

पहचान का परवर्ती स्तर तादात्मीकरण है। श्रोता द्वारा सुने हुए वाक्यों का मानसिक स्तर पर विश्लेषण होता है। भाषा संबंधी अर्जित ज्ञान यथा ध्वनियों तथा ध्वनि संयोगों की पहचान श्रोता के मस्तिष्क में सुरक्षित रहते हैं। वक्ता के भाषायी प्रयोगों के तादात्मीकरण में इनका स्वत: उपयोग होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के ध्वन्यात्मक प्रतीकों को उनसे द्योतित आर्थी प्रतीकों से संबद्ध किया जाता है। शब्दों के ध्वन्यात्मक प्रतीकों के आधार पर उनकी आर्थी एवं वाक्यीय विशेषताओं को समझा जाता है। श्रोता वही सुनता है जिसकी उसको प्रत्याशा होती है। प्रत्याशा की योग्यता वस्तुत: भाषा अधिगम एवं भाषा व्यवहार में आधारभूत कुशलता मानी जाती है, 'भाषायी क्षमता' का यह केंद्रीय तत्व है। प्रत्याशा की योग्यता का संबंध भाषायी नियमों की जानकारी से है। बोधन प्रक्रिया के विविध स्तरों पर यह योग्यता निरंतर गतिशील रहती है। स्पष्ट है कि तादात्मीकरण में निहित मानसिक प्रक्रियाओं का संबंध व्याकरणिक आर्थीदक्षता, गठनात्मक नियमों एवं उनकी ग्राह्यता से होता है। उच्चारों का अभिज्ञान केवल व्याकरणिक रूप से ही करना पर्याप्त नहीं है। श्रोता से यह अपेक्षा की जाती है कि व्याकरणिक नियमों के साथ ही वह कोशीय नियमों की जानकारी रखता हो। इन कोशीय नियमों का संबंध भाषा की आर्थी संरचना से होता है। संक्षेप में उच्चारों को व्याकरणिक एवं आर्थी दृष्टि से सुगठित रूप में पहचानने की प्रक्रिया ही तादात्मीकरण है।

भाषायी प्रयोगों में निहित संदेशों को, भावों तथा विचारों को समझने की कुशलता बोधन प्रक्रिया का चरमतम एवं महत्वपूर्ण स्तर है। इस स्तर पर विविध भाषायी प्रतीकों को आर्थी दृष्टि से अनूदित एवं व्याख्यायित किया जाता है। वाक्यों से अभिप्रेत अर्थ कई प्रकार के हो सकते हैं। वक्ता का अभिप्रेत क्या है? श्रोता किस अर्थ को ग्रहण करे? यह एक जटिल समस्या है। ऐसी स्थिति में श्रोता वक्ता की मन:स्थिति तथा उच्चार-संदर्भ के आधार पर अर्थ ग्रहण करता है। इसमें स्मृति तथा उसके उपांगों का विशेष योगदान है। स्पष्ट है कि श्रोता जब वक्ता के अभिप्रेत को यथावत ग्रहण करने में समर्थ होता है तभी भाषायी बोधन की कुशलता को पूर्ण विकसित माना जा सकता है।

भाषा को समझने का अभिप्राय है भाषायी प्रतीकों का संदर्भ में अर्थग्रहण करना, अत: प्रकारांतर से इसको समस्त जगत को जानने का माध्यम माना जा सकता है। वस्तुत: भाषायी बोध में अंतर्निहित मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का संबंध सम्प्रेषणात्मक दक्षता, भाषा व्यवहार के नियमों, उपयुक्तता एवं संदर्भ सापेक्षता से है। श्रवण एवं बोधन प्रक्रिया के विविध स्तर कार्यकारिता की दृष्टि से परस्पर संबद्ध हैं। इनमें सुनिश्चित पूर्वापर क्रम है।

स्पष्ट है कि बोधन प्रक्रिया भाषायी व्यवहार का प्रमुख आधार है। इसके अभाव में भाषा-व्यवहार की स्थिति संदिग्ध हो जाती है। इसके महत्व का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि अभिव्यक्ति की तुलना में बोधन की मात्रा हमेशा अधिक होती है। परंतु बोधन को भाषायी अभिव्यक्ति का विकल्प नहीं माना जा सकता। भाषायी व्यवहार में बोधन और अभिव्यक्ति भिन्न परंतु परस्पर संबद्ध प्रक्रियाएँ हैं।

1.2.1.2. भाषायी अभिव्यक्ति

भाषायी उत्पादन एवं भाषायी प्रयोग को मनोभाषाविज्ञान का प्रमुख क्षेत्र माना गया है। भाषायी अभिव्यक्ति का संबंध उन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से है जो वक्ता के भाषायी प्रयोग के समय गतिशील रहती हैं। भावों तथा विचारों की भाषिक अभिव्यक्ति के समय वक्ता के मानसिक जगत में कौन-कौन सी प्रक्रियाएँ घटित होती हैं इनका अध्ययन अभिव्यक्ति अथवा उत्पादक कुशलता का प्रमुख दायित्व है। वक्ता अपने विचारों तथा भावों को दूसरों तक सम्प्रेषित करना चाहता है। अभिव्यक्ति के पूर्व ये विचार पूर्ण रूप से गठित हों, यह आवश्यक नहीं है; इतना ही पर्याप्त है कि विचार-गठन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई हो। ये विचार एवं भाव भाषायी उच्चार तथा वाक्यों के रूप में अनूदित होते हैं तथा वाणी के माध्यम से इनकी अभिव्यक्ति होती है। परंतु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वक्ता के सभी विचार पूर्ण रूपेण अभिव्यक्ति पा लेते हैं। वस्तुतः विचारों का अधिकांश भाग अभिव्यक्त नहीं हो पाता। बहुधा विचारों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त शब्द नहीं मिलते। जहाँ उपयुक्त शब्द मिल जाते हैं वहाँ इस आंतरिक कोड को आर्थी संरचना के रूप में स्वीकार किया जाता है। जहाँ बाह्य कोड में इनका रूपांतरण संभव नहीं होता वहाँ इनको सामान्य संज्ञानात्मक कोड के नाम से अभिहित किया जाता है। आर्थी और संज्ञानात्मक कोड परस्पर संबद्ध और समरूपी होते हैं। चिंतन तथा विचार की प्रक्रिया में यह आंतरिक संज्ञानात्मक कोड ही क्रियाशील रहता है। भाषा और विचार का यह मध्यवर्ती केंद्र बिंदु है। इस प्रकार भाषा और विचार का संबंध एक ओर आंतरिक संज्ञानात्मक कोड में प्रतीकों के गठन और व्यवस्था से है तो दूसरी ओर बाह्य ध्वन्यात्मक कोड में उनके प्रकटीकरण से है। भाषायी अभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष संबंध इस बाह्य कोड से है जो अप्रत्यक्ष रूप से आंतरिक कोड से संबद्ध रहता है।

बोधन-कुशलता की भाँति भाषा की अभिव्यक्तिपरक कुशलता में भी अनेक मानसिक प्रक्रियाएँ सन्निहित होती हैं। भाषायी अभिव्यक्ति का स्वरूप वस्तुतः इन प्रक्रियाओं के द्वारा ही गठित होता है। अतः इनका संक्षिप्त विवेचन अपेक्षित है।

उत्पादक व्यवहार से संबद्ध प्रथम मानसिक प्रक्रिया प्रत्ययन (ideational) प्रक्रिया है। वक्ता के किसी भी संदेश एवं अभिप्रेत का स्वरूप जिसे वह भाषायी प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है, इस प्रक्रिया के द्वारा गठित होता है। वक्ता जो कुछ संप्रेषित करना चाहता है वह उसके मस्तिष्क में विचारों के रूप में गठित होते हैं। इन विचारों का प्रत्ययात्मक पक्ष वक्ता के मस्तिष्क में निहित भाषायी सूचनाओं के स्थायी भंडार से संबद्ध होता है।

योजना प्रक्रिया द्वितीय परवर्ती स्तर है। विचारों की अभिव्यक्ति के लिए समुचित भाषायी प्रतीकों का चयन, उनकी व्यवस्था आदि की योजनाएँ मस्तिष्क में गठित होती हैं। इन भाषायी योजनाओं का क्रियान्वयन, वाणी के माध्यम से उनकी समुचित अभिव्यक्ति भाषायी व्यवहार के रूप में परिलक्षित होती है। इसी से संबद्ध 'मानीटरिंग' की प्रक्रिया है जहाँ भाषा का उच्चारण करते समय वक्ता को अपने वाक् अवयवों को इस प्रकार नियंत्रित करना पड़ता है जिससे उच्चरित ध्वनि प्रतीक वांछित विशिष्टताओं से युक्त सही रूप में उच्चरित हो सकें।

भाषायी अभिव्यक्ति के विविध स्तर एवं उनमें अंतर्निहित प्रक्रियाएँ विवेचन की दृष्टि से पृथक प्रतीत होती हैं, परंतु ये इस सीमा तक परस्पर संबद्ध हैं कि उनके बीच विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। उत्पादक प्रक्रियाओं में न केवल परस्पर संबद्धता है बल्कि वे ग्राहक प्रक्रियाओं के साथ भी इस सीमा तक संपृक्त हैं कि ग्राहक और उत्पादक कुशलता का नितांत एकांतिक विवेचन संभव नहीं है। बोधन की प्रक्रिया एक ओर यदि प्रत्ययन प्रक्रिया से संबद्ध है तो दूसरी ओर भाषायी ध्वनियों तथा ध्वनि गुणों के उच्चारण में वाक् अवयवों पर समुचित नियंत्रण की प्रक्रिया ध्वनियों की पहचान में सहायक होती है। इससे श्रवण-पुनर्निवेशन में सहायता मिलती है। ग्राहक तथा उत्पादक भाषायी प्रक्रियाओं से संबधित मानसिक शक्तियों की परस्पर संबद्धता निम्नलिखित आरेख से स्पष्ट हो जाती है—

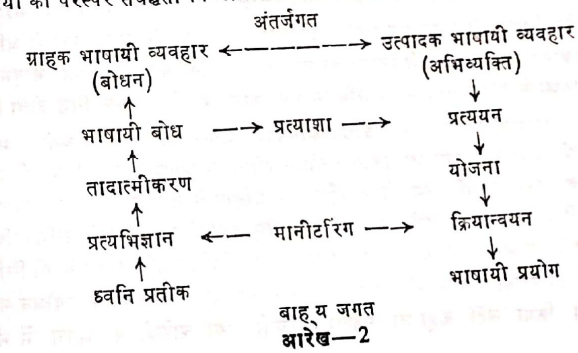

आरेख—2

बोधन तथा अभिव्यक्ति की परस्पर संबद्धता इन प्रक्रियाओं के विश्लेषण से और अधिक स्पष्ट होती है। भाषायी ध्वनियाँ जैसे ही श्रोता के कानों तक पहुँचती हैं, उसकी मानसिक शक्तियाँ सक्रिय हो जाती हैं और विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा वह ध्वनि प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त विचारों तथा भावों को आत्मसात करने में समर्थ होता है। फलस्वरूप इनसे संबंधित कुछ विचार मस्तिष्क में गठित होते हैं। उनकी अभिव्यक्ति की योजना भाषायी प्रतीकों के माध्यम से निर्मित होती है और वक्ता ध्वनि प्रतीकों के माध्यम से विचारों को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार भाषायी व्यवहार मनोवैज्ञानिक एवं भाषायी प्रक्रियाओं के समन्वित आधार पर विकसित होता है।

स्पष्ट है कि मनोभाषाविज्ञान का मुख्य कार्य अध्येता के भाषायी व्यवहार से संबंधित प्रक्रियाओं की कार्यकारिता का समुचित विवेचन प्रस्तुत करना है। इस दृष्टि से भाषा शिक्षण में इसकी संभावनाएँ बहुमुखी हैं।

1.3. मनोभाषाविज्ञान तथा भाषा शिक्षण

भाषा शिक्षण से संबद्ध अनेक व्यावहारिक क्षेत्रों में मनोभाषाविज्ञान की भूमिका असंदिग्ध है। मनोभाषाविज्ञान के क्षेत्र की चर्चा करते समय भाषा संप्राप्ति एवं भाषायी निष्पादन की प्रक्रियाओं का विवेचन किया जा चुका है।

मनोभाषाविज्ञान भाषा संप्राप्ति के संदर्भ में भाषायी क्षमता एवं आंतरिक शक्तियों के सिद्धांत को स्वीकृति प्रदान करता है। इसके अनुसार भाषा सीखने की क्षमता सामान्य मानव शिशु में जन्म से ही वर्तमान होती है। समुचित भाषायी उद्भावन के फलस्वरूप वह किसी भी भाषा को सीखने की क्षमता रखता है। अध्येता के लिए कोई भी भाषा न तो जटिल है और न दुर्बोध अथवा क्लिष्ट। अतः भाषा शिक्षण में, विशेषकर अन्य भाषा शिक्षण में छात्रों को अध्येय भाषा का समुचित उद्भावन दिया जा सकता है, सीखने के लिए उत्प्रेरित किया जा सकता है। भाषायी परिवेश जितना ही समृद्ध एवं सुगठित होगा छात्र का भाषायी ज्ञान उतना ही अधिक सुविकसित होगा। भाषायी क्षमता का यथोचित मार्गांतरीकरण न केवल मातृभाषा की शिक्षा में बल्कि अन्य भाषा अधिगम एवं शिक्षण में भी सहायक सिद्ध होता है।

भाषायी निष्पादन से संबंधित अधिकांश प्रक्रियाओं को सही अर्थों में मात्र भाषायी क्रिया नहीं कहा जा सकता। बोधन प्रक्रिया में श्रवण तथा ध्वनियों की पहचान का संबंध प्रत्यक्षीकरण की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से है। इसी प्रकार उत्पादक भाषायी व्यवहार में विचारों का गठन तथा वाक् अवयवों द्वारा उनकी अभिव्यक्ति को भी केवल भाषायी क्रिया नहीं माना जा सकता। लिखित अभिव्यक्ति में भी लिपि प्रतीकों की रचना में माँस पेशियों का नियंत्रित व्यवहार तथा वर्णों के संयोजन को भाषायी क्रिया नहीं कहा जा सकता। चित्रों तथा आरेखों के अंकन में भी

लगभग इसी प्रकार की कुशलता अपेक्षित होती है। मौखिक अभिव्यक्ति को लिखित अभिव्यक्ति की तुलना में जटिलतर प्रक्रिया माना गया है। अतः भाषा शिक्षण में, विशेष कर अन्य भाषा शिक्षण में, छात्रों में इनके नियंत्रित प्रयोग की कुशलता विकसित करना आवश्यक हो जाता है। छात्रों में बोधक एवं उत्पादक व्यवहार की समुचित कुशलता का विकास करना भाषा शिक्षण का प्रमुख लक्ष्य है। इसके लिए प्रभावी अधिगम से संबंधित परिस्थितियों एवं प्रक्रियाओं का पूर्वज्ञान अपेक्षित है। मनोभाषाविज्ञान इस दिशा में भाषा शिक्षक का मार्ग दर्शक एवं सहायक बन सकता है।

भाषा-शिक्षण में भाषायी कौशलों के विकास के साथ ही साथ इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक हो जाता है कि वक्ता जो कुछ कहना चाहता है उसे प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करे। अतः भाषायी व्यवस्था पर छात्र का इस सीमा तक अधिकार कराना जिससे सम्प्रेषण-कुशलता विकसित हो सके भाषा शिक्षक का विशिष्ट कार्य-क्षेत्र है। मौखिक तथा लिखित भाषायी व्यवहार में इस कुशलता के विकास पर पर्याप्त बल देना अपेक्षित है। वस्तुतः भाषायी व्यवहार की शिक्षा ही भाषाशिक्षण का मुख्य क्षेत्र है। इसी संदर्भ में शिक्षण से संबंधित विविध संकल्पनाएँ, युक्तियाँ तथा विधियाँ अपना अस्तित्व प्रमाणित करती हैं। मनोभाषाविज्ञान का सहयोग इन सभी दृष्टियों से वांछनीय है।

भाषा शिक्षण और अधिगम के क्षेत्र में यद्यपि मनोभाषाविज्ञान ठोस सुझाव नहीं प्रस्तुत कर सका है परंतु भाषा संप्राप्ति, बोधन तथा निष्पादन से संबंधित प्रक्रियाओं के विवेचन एवं शिक्षण विषयक अंतर्दृष्टि के विकास में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकृत है। इस दृष्टि से मनोभाषाविज्ञान के क्षेत्र में किये जाने वाले नवीन अनुसंधानों की उपलब्धियों का भाषा शिक्षण में अनुप्रयोग निश्चय ही लाभप्रद होगा।

2

भाषा उपार्जन तथा भाषा अधिगम

2.0. सामान्य मानव शिशु परिवार में सहज एवं स्वाभाविक रूप से भाषा अर्जित करता है। सामान्य मानव शिशु से अभिप्राय शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ शिशु से है जिसे समाज में भाषायी विकास का समुचित पर्यावरण उपलब्ध है। भाषा उपार्जन की प्रवृत्ति मानव जीवन के साथ प्रगाढ़ रूप से संबद्ध है। इसके अभाव में सामान्य मानव की संकल्पना ही नहीं गठित होती। भाषा उपार्जन अथवा संप्राप्ति की जन्मजात प्रवृत्ति (क्षमता) के फलस्वरूप वह बिना किसी औपचारिक शिक्षण के भाषा की जटिलतम व्यवस्थाओं पर समुचित अधिकार पा लेता है। जीवन के प्रारंभिक क्षणों से ही उसे मातृभाषा (मातृ बोली) का सहज परिवेश उपलब्ध रहता है। अतः शिशु परिवार में मातृभाषा के व्यवहार की कुशलता स्वाभाविक रूप से अर्जित कर लेता है। यद्यपि भाषा के अध्येता अबोध मानव शिशु और भाषायी प्रकृति की जटिलता इन दोनों में वैचारिक दृष्टि से कोई संगति नहीं है, परंतु यह निर्विवाद है कि विकास के स्वाभाविक क्रम में शिशु सम्प्रेषण-माध्यम के रूप में मातृभाषा की तथाकथित जटिल व्यवस्था पर समुचित अधिकार पा लेता है। विविध सामाजिक संदर्भों में भाषायी व्यवहार की कुशलता उत्तरोत्तर विकसित होती रहती है।

मातृभाषा का यही अध्येता औपचारिक शिक्षा के क्रम में जब दूसरी भाषा सीखता है तब पूर्वपरिचित सुगमता, सहजता एवं स्वाभाविकता का सामान्यतः अनुभव नहीं कर पाता। सहज ही जिज्ञासा होती है कि कौन से ऐसे तत्व हैं जिनके कारण मातृभाषा को सीखना सरल और अन्य भाषा को सीखना जटिल बन जाता है। इसके लिए सर्वप्रथम भाषा उपार्जन और भाषा अधिगम की संकल्पनाओं से परिचित होना समीचीन होगा।

भाषा उपार्जन का संबंध उस प्रक्रिया से है जिसमें भाषा को स्वाभाविक तथा अधिकांशतः स्वतः भाषायी उद्भासन की प्रक्रिया द्वारा उपार्जित किया जाता है; भाषा अधिगम में भाषा शिक्षण की औपचारिक प्रक्रिया द्वारा इस उद्भासन को गठित एवं उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया जाता है। भाषा उपार्जन एवं भाषा अधिगम की प्रक्रिया के संबंध में यद्यपि नितांत प्रामाणिक एवं अंतिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता परंतु शिशु के भाषा उपार्जन और बालक तथा वयस्क के भाषा-अधिगम-क्रम के आधार पर कुछ शिक्षणोपयोगी निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। भाषा अधिगम की प्रक्रिया को भाषा-उपार्जन की प्रक्रिया का अनुकरण मात्र समझना भ्रामक होगा। इससे केवल इतना ही संकेतार्थ ग्रहण किया जा सकता है कि जिन संदर्भों एवं स्थितियों में भाषा उपार्जन की प्रक्रिया गतिशील होती है, उनके संदर्भ में भाषा अधिगम की प्रक्रिया पर भी विचार किया जा सकता है। भाषा उपार्जन तथा भाषा अधिगम-प्रक्रिया के विस्तृत विवेचन से इन तथ्यों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

2.1. मातृभाषा का उपार्जन

बालक के भाषायी उपार्जन का अध्ययन स्वतः एक जटिल कार्य है। परंतु भाषा उपार्जन की प्रक्रिया का विवेचन भाषा शिक्षण की दृष्टि से एक अनिवार्य आवश्यकता है। इस पर अनेक दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है। प्रस्तुत संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण दृष्टिकोणों से विचार करना ही समीचीन होगा, यथा—भाषा का उपार्जक अथवा अध्येता, भाषायी उपार्जन का स्वरूप एवं भाषा-उपार्जन-प्रक्रिया। इन बिंदुओं पर निम्नलिखित उपागमों के संदर्भ में चर्चा की जा सकती है—

(1) अंतर्जात ज्ञान संबंधी उपागम

(2) पर्यावरणात्मक उपागम

(3) अन्योन्य क्रियावादी उपागम

अंतर्जात ज्ञान विषयक उपागम मानव शिशु में जन्म से ही विशिष्ट निसर्ग प्रदाय की स्थिति को स्वीकार करता है। शिशु केवल सामान्य प्रवृत्तियों एवं विशिष्टताओं से युक्त नहीं होता, बल्कि वह जगत-ज्ञान एवं विशेष रूप से भाषायी प्रकृति के ज्ञान से संपन्न होता है। इस विचारधारा के अनुसार शिशु में जन्म से ही भाषा की व्याकरणिक कोटियों एवं संबंधों का ज्ञान वर्तमान रहता है। यह सार्वभौम ज्ञान सभी भाषाओं और सभी सामान्य मानव शिशुओं से संबद्ध है। मानव शिशु इस योग्यता के साथ-साथ प्राक्कल्पना एवं परीक्षण युक्तियों से समृद्ध प्राणी है। अंतर्जात ज्ञान के दृष्टिकोण का खंडन अनेक भाषावैज्ञानिकों एवं मनोभाषा-वैज्ञानिकों द्वारा होता रहा है। वस्तुतः भाषा के संबंध में किसी ऐसी क्रियाविधि का

संसूचन एवं प्रमाण संभव नहीं है जिसके द्वारा भाषा को वंश परंपरागत जननिक विशेषता के रूप में स्वीकार किया जा सके।

पर्यावरणात्मक उपागम के अनुसार शिशु इस जगत में मूल पदार्थ के रूप में जन्म लेता है। उसमें जन्मजात शक्तियाँ नहीं होतीं। पर्यावरण जन्य अनुभवों के आधार पर उसमें भाषायी कौशल एवं व्यक्तित्व गठित होता है। व्यवहारवादी विचार धारा के विकास क्रम के प्रारंभिक स्तर पर कुछ लोगों द्वारा इस उपागम को मान्यता प्राप्त हुई थी परंतु परवर्ती विचारकों द्वारा यह अतिवादी दृष्टिकोण उपेक्षित ही रहा।

अन्योन्य क्रियावादी उपागम अन्योन्य क्रियात्मक प्राक्कल्पना को मान्यता प्रदान करता है। इसके अनुसार शिशु जन्म से ही भाषा की ध्वन्यात्मक व्याकरणिक अथवा अर्थपरक कोटियों एवं नियमों के विशिष्ट ज्ञान से संयुक्त नहीं होता। वस्तुत उसमें अनुभवों के पुनर्गठन, पारस्परिक संबंधों की पहचान एवं प्रतीकों तथा उनकी संरचना के बोधन एवं उत्पादन की क्षमता होती है। इनके आधार पर वह भाषा का उपार्जन करता है। भाषा उपार्जन की चर्चा में इन विकल्पों का यथोचित प्रासंगिक उल्लेख समीचीन होगा।

2.1.1. भाषा का उपार्जक

भाषा का उपार्जक सामान्य मानव शिशु है। इस संबंध में सभी उपागमों की सामान्य सहमति दृष्टिगत होती है। फिर भी जन्मजात ज्ञान वादियों की मान्यता है कि सभी सामान्य मानव शिशु जन्मजात सार्वभौमिक तत्वों के कारण भाषा को उपार्जित करते हैं। मानवेतर प्राणी में यह शक्ति नहीं होती, अतः वह भाषा उपार्जन में असमर्थ है। भाषायी उपार्जन अथवा संप्राप्ति में दो स्थितियाँ अनिवार्यतः अंतर्भूत हैं—शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य और भाषायी उद्भासन।

अन्योन्य क्रियावादी यह मानता है कि सभी सामान्य मानव प्राणी जो गंभीर शारीरिक दोष से मुक्त हैं और जिन्हें भाषायी संप्रेषण का प्रर्याप्त अनुभव एवं ऐसे अवसर उपलब्ध हैं जिनमें वे संवेगात्मक सुरक्षा का अनुभव करते हैं, भाषा सीखते हैं।

स्पष्ट है कि भाषा का उपार्जक मानव शिशु है जो निकटवर्ती परिवेश में भाषायी उद्भासन के फलस्वरूप भाषा को सहज एवं स्वाभाविक रूप से उपार्जित करता है। भाषा उपार्जन की प्रक्रिया मानव जीवन के साथ संबद्ध है। इसे मानव का एकाधिकार माना जा सकता है।

2.1.2. भाषायी उपार्जन का स्वरूप

शिशु के भाषायी उपार्जन-क्रम में उपार्जन का स्वरूप क्या है? उपार्जन प्रक्रिया में एकरूपता दृष्टिगत होती है अथवा विविधता इस संबंध में अनेक दृष्टिकोणों से विचार किया जाता है।

2.1.2.1. एकरूपता का सिद्धांत

भाषायी विकास के क्रम-निर्धारण में जन्मजात ज्ञान के समर्थकों की मान्यता है कि प्रत्येक शिशु भाषा की सार्वभौमिक कोटियों एवं संबंधों के अंतर्जात ज्ञान के आधार पर अपनी मातृभाषा के व्याकरणिक नियमों के गठन की क्षमता रखता है। एकरूपता के सिद्धांत के अनुसार भाषायी उपार्जन में जन्मजात तत्वों के आधिक्य के फलस्वरूप बालक की सामान्य संज्ञानात्मक शक्तियों और पर्यावरण का महत्व अपेक्षाकृत कम रह जाता है। अतः भाषा उपार्जन के क्रम में तथा उद्दिष्ट सामान्य उपलब्धि के स्तर में पर्याप्त एकरूपता होनी चाहिए। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त मान्यता भाषा ज्ञान से संबद्ध है, भाषायी निष्पादन एवं अभिव्यक्ति से नहीं।

2.1.2.2. विविधता का सिद्धांत

भाषा में विविधता के सिद्धांत का भी प्रतिपादन किया जाता है। भाषा उपार्जन में विविधता के कई कारण हो सकते हैं। बालक की सामान्य अधिगम-योग्यता तथा पर्यावरण जन्य भिन्नता के आधार पर भाषायी विकास के संबंध में पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। भाषा विकास में विविधता को निर्धारित करने वाले घटक अनेक हैं इनका क्रम से विवेचन अपेक्षित है।

2.1.2.2.1. भाषा-विकास में विविधता के कारक

बालक के उपार्जित भाषायी स्तर में विविधता के कई कारक हो सकते हैं। इनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—

(1) सामान्य संज्ञानात्मक शक्तियाँ

भाषा उपार्जन में भाषा के प्रयोग एवं व्यवहार की कुशलता का संबंध सामान्यतः संज्ञानात्मक शक्तियों यथा बुद्धि, स्मृति, चिंतन, अवधान आदि से जोड़ा जाता है। भाषा अधिगम संबंधी विविध अनुसंधानों के द्वारा भाषायी विकास की त्वरित गति एवं भाषा अधिगम की योग्यता में संबंध प्रमाणित किया गया है। बालक के भाषायी विकास की गति में पर्याप्त विविधता पाई जाती है। इस

विविधता एवं भिन्नता का कारण संज्ञानात्मक शक्तियों के विकास के संबंधित भिन्नता हैं। संक्षेप में बालक के भाषायी विकास एवं संज्ञानात्मक विकास में निकटवर्ती संबंध है।

(2) पर्यावरणगत विविधता

भाषा उपार्जन में निकटवर्ती पर्यावरण की विशेष भूमिका है। पर्यावरण की उत्कृष्टता भाषायी विकास की उत्कृष्टता का द्योतक माना जा सकता है। भाषा उपार्जन की गति का अध्ययन सामान्यतः सामाजिक स्तर के संदर्भ में किया जाता रहा है। यह माना जाता रहा है कि भाषा विकास सामाजिक स्तर का समानुपातिक परिणाम है। परंतु कुछ समाजभाषाविज्ञानियों का मत है कि निम्न स्तर और मध्यम स्तर के बालकों के भाषा विकास में गुणात्मक भिन्नता नहीं होती तथा उनमें भाषायी मात्रा की भी कमी नहीं होती। यदि भिन्नता है तो वह भाषायी प्रयोगों की भिन्नता है; भाषा-व्यवहार-संदर्भों के संबंध में भी उनकी विशेष गति नहीं होती। निष्कर्ष यह है कि बालक जिस प्रकार भाषा का प्रयोग करना सीखता है, उस पर पर्यावरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। परंतु इसका यह संकेतार्थ नहीं है कि वंचित पृष्ठभूमि का बालक भाषा सीखने से वंचित रहता है। वंचित पृष्ठभूमि भी भाषा के आधार भूत तत्वों के उपार्जन में बाधक नहीं होती।

(3) व्यक्तिगत भिन्नताएँ

भाषायी उपार्जन के क्रम में व्यक्तिगत भिन्नताएँ दृष्टिगत होती हैं। भाषा का उपार्जक मानव शिशु विशिष्ट व्यक्तित्व से संयुक्त प्राणी है; अतः भाषा विकास में व्यक्तिगत भिन्नता का होना स्वाभाविक है। भाषायी विकासगत भिन्नता का अध्ययन मुख्यतः ध्वनि तथा व्याकरणिक व्यवस्था से संबंधित विकास के संदर्भ में किया गया है। अध्ययन के आधार पर ध्वनि-विकास की गति और समय में पर्याप्त भिन्नता पाई गई है, परंतु ध्वनि कोटियों के अनुक्रम और विकास-काल-क्रम में पर्याप्त समानता दृष्टिगत हुई। व्याकरण के क्षेत्र में भी रूपिमों की अपेक्षा वाक्य संरचना के उपार्जन का क्रम देखा गया। कुछ विद्वानों ने इन दोनों ही संरचनाओं के उपार्जन क्रम में समय की दृष्टि से समरूपता का संकेत दिया है।

निष्कर्ष यह है कि भाषा उपार्जन में बालक के भाषायी नियंत्रण तथा भाषा पर अधिकार में भिन्नताएँ दृष्टिगत होती हैं। वयस्क-भाषायी प्रारूप के उपार्जन में भाषा उपार्जन के विविध रूप दृष्टिगत होते हैं। केवल कुछ पिछड़े हुए लोग ही भाषा की आधार भूत व्याकरणिक व्यवस्था पर अधिकार प्राप्त

करने में सक्षम नहीं हो पाते परंतु इसका संबंध बुद्धि और सामाजिक स्तर से जोड़ना उचित नहीं है। भाषा के समुचित उपयोग की योग्यता में भी अंतर पाया जाता है। यह अंतर आयुगत और बुद्धिगत एवं व्यक्तिगत हो सकता है। संक्षेप में बालक का भाषायी विकास सामान्यतः उसके अन्य प्रकार के विकासों का सहगामी होता है।

2.1.3. भाषा-उपार्जन-प्रक्रिया

बालक के भाषायी उपार्जन के विवेचन में उपार्जन प्रक्रिया एवं उनकी प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके आधार पर ही अध्येता बालक, उसकी प्रतिक्रियाओं तथा भाषा उपार्जन में सहायक विविध कारकों की प्रकृति से अवगत होना संभव हो सका है। यद्यपि बालक के भाषायी विकास में एकरूपता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया जाता है, परंतु भाषायी विकास में विविधता के भी समुचित प्रमाण मिलते हैं। वस्तुतः इस विविधता के संदर्भ में ही भाषा उपार्जन से संबंधित अन्य कारकों के विवेचन का औचित्य है अन्यथा शिशु में जन्म से ही वर्तमान भाषा उपार्जन संयुक्ति की स्वीकृति ही पर्याप्त होती। भाषा-उपार्जन-प्रक्रिया से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्यों का विवेचन इन उपशीर्षकों में करना उचित होगा।

(1) बालक की क्षमताएँ तथा प्रयुक्त युक्तियाँ

(2) उपार्जन प्रक्रिया की प्रकृति

(3) पर्यावरण की भूमिका

बालक का भाषायी विकास उसके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण निर्धारक है परंत इसे बालक के समग्र विकास से भिन्न एकांगी तथा एकाकी विकास नहीं माना जा सकता। भाषा विकास अन्य विकासों से संबद्ध प्रक्रिया है। भाषा उपार्जन से संबद्ध विविध चर्चाओं में यह मान्यता अंतर्भूत है।

2.1.3.1. बालक की क्षमताएँ तथा प्रयुक्त युक्तियाँ

भाषा उपार्जन मानव शिशु की अभूतपूर्व विशेषता है। इसमें उसकी अपनी क्षमताएँ तथा उसके द्वारा प्रयुक्त युक्तियों का विशेष महत्व है। बालक के भाषायी विकास में भाषावैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों ने अनेक मानसिक शक्तियों तथा योग्यताओं के अस्तित्व को स्वीकार किया है। भाषा उपार्जन के क्रम में बालक द्वारा प्रयुक्त युक्तियों के विवेचन में इन शक्तियों तथा योग्यताओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

INSTITUT BF ARYABHAS
Acc. No. 95210

2.1.3.1.1. उत्प्रेरण

भाषायी प्रयोग मूलतः उत्प्रेरण का परिणाम है। शिशु द्वारा कुछ ध्वनियों का सहज उच्चारण तथा क्रमशः भाषायी प्रयोगों पर अधिकार वस्तुतः सम्प्रेषण की आवश्यकता से उद्भूत हैं। भाषायी विकास के प्रारंभिक स्तर पर वह रोने की क्रिया के द्वारा अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को प्रकट करता है। मानव शिशु भाषायी विकास की प्रारंभिक स्थिति में यद्यपि भाषा के दो प्रमुख सम्प्रेषणात्मक प्रकार्यों—अभिव्यंजनात्मक कार्य तथा संज्ञानात्मक कार्य—से अवगत नहीं होता, परंतु अभिव्यक्ति के अन्य साधनों के साथ-साथ वह सम्प्रेषण माध्यम के रूप में भाषा का प्रयोग करना सीखता है। भाषा उपार्जन में उत्प्रेरण का एक स्रोत बौद्धिक क्रीड़ा जन्य आनंद अथवा संतोष है। जेस्पर्सन ने भी भाषायी विकास के प्रारंभिक स्तरों पर वस्तुओं के अभिज्ञान एवं उनके लिए प्रयुक्त नामों को याद करने से उत्पन्न प्रसन्नता का उल्लेख किया है। सीखे गये नवीन शब्द अथवा प्रयोग की प्रसन्नता मिश्रित आवृत्ति संभवतः इस प्रवृत्ति का ही परिचायक है।

भाषायी विकास में उत्प्रेरण का एक दूसरा स्रोत बालक में चतुर्दिक परिवेश के प्रत्यक्षीकरण एवं उसके संज्ञानात्मक परिचय की विकासशील प्रवृत्ति है। शिशु अपने निकटवर्ती परिवेश से परिचित होने तथा उनको समझने की तीव्र आकांक्षा के फलस्वरूप व्यवहृत भाषायी प्रतीकों के माध्यम को अपनाता है।

उत्प्रेरणा का एक महत्वपूर्ण स्रोत परस्पर संबंध स्थापित करने की सामाजिक प्रवृत्ति भी है। मानव शिशु दूसरों के साथ संवेगात्मक रूप से संबद्ध होना चाहता है। जीवन के प्रारंभिक वर्ष में शिशु को निकटवर्ती लोग प्रिय होते हैं, यह उसकी प्रवृत्ति है (बुलोवा 1970)। दूसरों से संबद्ध होने की आवश्यकता भाषा उपार्जन का केंद्रीय तत्व है। यह आवश्यकता जीवन पर्यंत बनी रहती है। भाषा के जटिलतम प्रयोगों को सीखने के मूल में भी यही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। बालक भाषायी समुदाय, जिसका प्रारंभिक रूप परिवार है—के सदस्य के रूप में अपनी अस्मिता को निर्धारित करता है।

स्पष्ट है कि भाषा उपार्जन विविध प्रकार के उत्प्रेरण का स्वाभाविक परिणाम है।

2.1.3.1.2. प्रत्यक्षात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास

भाषा उपार्जन प्रत्यक्षात्मक योग्यता एवं संज्ञानात्मक शक्तियों के विकास से संबद्ध है। वस्तुओं, प्राणियों, पदार्थों तथा कार्य व्यापार के प्रत्यक्षीकरण की कुशलता विकसित होने तथा चिंतन एवं स्मृति आदि संज्ञानात्मक शक्तियों के विकास क्रम के साथ बोधन एवं अभिव्यक्ति की कुशलता विकसित होती है। शिशु की संज्ञा-

नात्मक संरचनाएँ उसकी भाषायी संरचनाओं की अपेक्षा अधिक विकसित होती हैं इन्हें इनकी पूर्वगामी भी कहा जा सकता है, परंतु इसके अपवाद भी संभव हैं। अनेक अध्ययनों के द्वारा प्रत्यक्षात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास की महत्ता प्रतिपादित की गयी है। भाषा की आर्थी व्यवस्था के विकास में इनसे संबंधित नियमितता दृष्टिगत होती है। बालक के भाषायी विकास में समरूपता का विवेचन वस्तुतः इन्हीं के संदर्भ में किया जाता है। कारण स्पष्ट है बालक की आवश्यकताएँ, उसके अनुभव और कुछ सीमा तक उसकी प्रत्यक्षात्मक एवं संज्ञानात्मक शक्तियाँ लगभग समान होती हैं।

2.1.3.1.3. उपार्जन युक्तियाँ

भाषा के वयस्क प्रारूप के उपार्जन में बालक अनेक युक्तियों का स्वतः प्रयोग करता है। यद्यपि वह इन युक्तियों का सचेतन रूप में प्रयोग नहीं करता, परंतु ये स्वतः अंतर्भूत युक्तियाँ भाषायी विकास में सहायक हैं। कुछ प्रमुख युक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) संदर्भगत अधिगम

भाषा का प्रयोग विशिष्ट स्थितियों एवं संदर्भों में होता है। बालक इन संदर्भों में ही भाषायी प्रयोगों को सुनता है। उसकी भाषायी प्रतिक्रियाएँ इन्हीं संदर्भों से जुड़ी होती हैं। ये स्थितियाँ एवं संदर्भ उद्दीपन के रूप में काम करते हैं। बालक की प्रारंभिक प्रतिक्रियाएँ इनसे संबद्ध होती हैं। वह इनके प्रत्यक्षीकरण में, संबद्ध सार्थक पक्षों को समझने एवं उनके प्रति भाषायी प्रतिक्रिया करने में समर्थ होता है। फलस्वरूप बालक निरंतर किसी संदर्भ में ही भाषा का प्रयोग करना सीखता है। यह उसके तथा भाषायी विकास का केंद्रीय तत्व है। विकास के प्रारंभिक चरणों में अभिव्यक्ति-कुशलता सीमित होने के कारण उसके भाषायी प्रयोग संदर्भों की पूर्णरूपेण अभिव्यक्ति नहीं कर पाते, परंतु यह निर्विवाद है कि भाषायी उपार्जन प्रक्रिया संदर्भ में ही विकसित होती है।

(2) अनुकरण

भाषा उपार्जन में सामान्यतः अनुकरण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। यह धारणा प्रचलित है कि अनुकरण की जन्मजात प्रवृत्ति के फलस्वरूप बालक निकटवर्ती परिवेश में प्रयुक्त भाषा को सीखता है। इस सिद्धांत के अनुसार भाषा उपार्जन में दो प्रमुख संकल्पनाएँ काम करती हैं—

(क) बालक जब नवीन व्याकरणिक रूपों से उद्भासित होता है तो उनका अनायास अनुकरण करता है।

(ख) इन नवीन रूपों के सहज अभ्यास द्वारा वह उनको अपने व्यवहार में प्रतिष्ठित कर लेता है।

परंतु यह उल्लेखनीय है कि बालक का भाषायी विकास वयस्कों के भाषायी प्रयोग का अनुकरण मात्र न हो कर सृजनात्मक प्रयोग है। अनुकरण की युक्ति निःसंदेह ध्वनियों के उच्चारण तथा कुछ प्रयोगों में सहायक होती है। अनुकरण वस्तुतः सामाजिक संपर्क सापेक्ष प्रक्रिया है। बालक वयस्कों द्वारा किये गये भाषायी नमूनों का अनुकरण करता है परंतु उसका भाषायी प्रयोग स्वगठित व्याकरणिक नियमों से नियंत्रित रहता है। अतः अनुकरण को भाषा विकास में सहायक सामान्य जन्मजात प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

(3) उपार्जन प्रक्रिया में सरलता एवं जटिलता

भाषा उपार्जन में बालक को सरलता एवं जटिलता दोनों का ही अनुभव होता है। भाषा उपार्जन वस्तुतः शब्दों को संदर्भों से जोड़ने की प्रक्रिया मात्र नहीं है, इसमें अमूर्तीकरण एवं सामान्यीकरण की प्रक्रियाएँ भी समाहित रहती हैं। शब्दों को संदर्भों से जोड़ने की प्रक्रिया के साथ ही भाषा प्रयोग के नियमों की जानकारी, उसके अन्वेषण एवं नियम निर्धारण की प्रक्रिया स्वतः गतिशील रहती है। एक ओर वस्तुओं तथा पदार्थों के नामों को वह रट कर सरलता से याद कर लेता है तो दूसरी ओर उनके प्रयोगगत विशिष्टताओं की जटिलता से भी उसे अवगत होना पड़ता है। भाषा के द्वारा व्यक्त आर्थी संकल्पनाएँ एवं वाक्यीय संरचनाओं की जटिलता तथा उनके पारस्परिक संबंध भाषा-विकास के महत्वपूर्ण निर्धारक हैं। वाक्यीय संरचना के द्वारा अभिव्यक्त आर्थी जटिलता इस तथ्य का निर्णायक है कि बालक कितनी सरलता और त्वरित गति से भाषा की संरचना का प्रयोग करना सीखता है। इसी प्रकार संरचना की जटिलता भी संरचना-प्रयोग को प्रभावित करती है।

(4) संज्ञानात्मक बाध्यताएँ

भाषा उपार्जन में बालक सहज रूप से इस प्रकार की युक्तियों का प्रयोग करता है जिसके फलस्वरूप उपार्जन प्रक्रिया में संज्ञानात्मक एवं स्मृत्यात्मक तनाव अपेक्षाकृत कम हो जाता है। नवीन भाषायी प्रयोगों को सीखते समय वे सामान्यतः सीखे हुए प्रयोगों की निरंतर आवृत्ति करते हैं। इन प्रयोगों की आवृत्ति अथवा अनुतान आदि में आंशिक परिवर्तन के द्वारा वे नवीनता का द्योतन करते हैं। एक ही प्रयोग विभिन्न अर्थों का सूचक हो सकता है। अनौपचारिक परिवेश में अन्य भाषा का अध्येता भी सामान्यतः इसी प्रकार की तनाव रहित, अल्प श्रम साध्य संज्ञानात्मक युक्तियों की सहायता लेता है। भाषा उपार्जन में बालक की सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि वह भाषा के प्रयोग में स्थैर्यता एवं जड़ता को प्रश्रय नहीं

देता। भाषायी अभ्यास एवं योग्यताओं के विकास के साथ वह भाषा के जटिलतम रूपों के व्यवहार की कुशलता भी अर्जित कर लेता है और क्रमशः भाषा के वयस्क प्रारूपों से मिलते-जुलते भाषायी प्रयोगों के व्यवहार का प्रयत्न करता है। उसका मुख्य उद्देश्य सम्प्रेषण है। अतः भाषा-व्यवहार में प्रारंभिक त्रुटियाँ भाषायी विकास तथा सम्प्रेषण में बाधक नहीं बनतीं।

(5) अभ्यास

भाषा उपार्जन में अभ्यास की महत्वपूर्ण भूमिका है। यद्यपि भाषा के संदर्भ में अभ्यास की यांत्रिकता को विशेष महत्व नहीं दिया जाता परंतु निरंतर सहज अभ्यास की बाल सुलभ प्रवृत्ति के अस्तित्व को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। परिवार में माता-पिता तथा अन्य सदस्यों के बीच शिशु भाषायी प्रयोगों को सहज रूप से दोहराने की प्रक्रिया में संलग्न रहता है। इससे भाषायी रूपों के अभ्यास में, विशेष कर ध्वन्यात्मक कुशलता के विकास में, सहायता मिलती है। भाषायी प्रयोगों को दोहराने का क्रम एक ओर यदि बाल क्रीड़ा एवं एकालाप का रूप ले लेता है तो दूसरी ओर यह भाषायी व्यवहार का इतना अभिन्न अंग बन जाता है कि भाषा के अनुकरणात्मक प्रयोग एवं स्वतंत्र प्रयोग में अंतर स्थापित करना कठिन हो जाता है। स्पष्ट है कि भाषा उपार्जन में बालक अभ्यास की युक्ति का सहज रूप से प्रयोग करता है।

(6) बारंबारता एवं संक्षिप्तता

भाषा उपार्जन में भाषायी प्रयोगों की बारंबारता बालक की भाषायी प्रतिक्रिया के विकास में सहायक है। जिन प्रयोगों की आवृत्ति निरंतर होती रहती है उन प्रयोगों से बालक इस सीमा तक परिचित हो जाता है कि वे सहज रूप से भाषायी व्यवहार में प्रयुक्त होते हैं। उसके भाषायी नियमों के आत्मीकरण, शब्दों के संदर्भगत अर्थ आदि के उपार्जन में प्रयोगों की बारंबारता मूल रूप से वर्तमान रहती है। सरलता वस्तुतः बारंबारता की सहज निष्पत्ति है। भाषा के उपार्जन में यह एक सहायक स्थिति है।

भाषायी प्रयोगों में छोटे एवं सरल प्रयोग जल्दी सीखे जाते हैं। लंबे प्रयोगों को सीखने में कुछ समय लगता है। भाषा उपार्जन के क्रम में शिशु छोटे एवं प्रचलित प्रयोगों को पहले सीखता है। वस्तुओं एवं पदार्थों के नामों को सीखने में इसी क्रम का संकेत मिलता है (ब्राउन 1965)। परंतु यह भी देखा गया है कि छोटे नामों की अपेक्षा बहुप्रचलित लंबे नाम सीखे जाते हैं। ऐसी स्थिति में बारंबारता और संक्षिप्तता में आंतरिक संबंध है। कहा जा सकता है कि भाषा उपार्जन में बारंबारता एवं संक्षिप्तता के नियमों का विशेष महत्व है। अध्येता इनसे निश्चित रूप से लाभान्वित होता हैं।

2.1.3.1.4 अध्येता की प्रतिक्रिया एवं अंतर्भावितता

भाषा उपार्जन में उपार्जक बालक की प्रमुख भूमिका है। भाषा संप्राप्ति की प्रक्रिया में वस्तुतः सभी सहायक स्थितियों, युक्तियों का संबंध अध्येता बालक से ही होता है, अतः उसकी भाषायी प्रतिक्रियाएँ विशेष महत्व रखती हैं। वही विभिन्न प्रकार की प्राक्कल्पनाओं का गठन, संशोधन एवं परिवर्धन करता हुआ भाषा का व्यवहार करना सीखता है। वस्तुतः भाषा के उपार्जन में अध्येता बालक की प्रतिक्रियाएँ ही अधिगम की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। कहा जा चुका है कि बालक में भाषा सीखने की क्षमता जन्म से ही वर्तमान होती है। भाषायी उद्भासन प्राप्त होने पर यह क्षमता क्रियाशील होती है। यद्यपि भाषा उपार्जन में भाषायी उद्भासन अनिवार्य घटक है परंतु इस उद्भासन के प्रति बालक की प्रतिक्रिया अधिक महत्व रखती है। यह न केवल उसकी अंतर्भावितता का द्योतक है, बल्कि सक्रिय अध्येता के रूप में उसकी भूमिका को भी स्पष्ट करती है।

भाषा उपार्जन की प्रक्रिया में बालक के अधिकांश प्रयोग अनुकरणात्मक व्यवहार न होकर नवीन एवं सृजनात्मक प्रयोग ही होते हैं। शब्दों तथा वाक्यांशों के नवीन संयोजन के साथ ही वह भाषा में इस प्रकार के नवीन प्रयोग भी करता है जिससे वह पूर्व परिचित नहीं होता। नवीन प्रयोगों की यह प्रवृत्ति बहुधा उसकी भाषायी त्रुटियों के लिए उत्तरदायी है। बालक के भाषायी प्रयोगों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि बालक में भाषायी ज्ञान के सामान्यीकरण की योग्यता वर्तमान रहती है। भाषा के उच्चरित रूप से निरंतर उद्भासित होने के साथ ही साथ वह भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था को भी आत्मसात करता है। उसमें यह परिकल्पना विकसित हो जाती है कि भाषायी खंडों का प्रयोग जिस प्रकार एक संदर्भ में होता है उसी प्रकार अन्य संदर्भों में भी संभव है। अतः स्वनिर्मित व्याकरणिक नियमों के आधार पर उसका भाषायी प्रयोग गठित होता है। ये नियम वयस्कों की भाषा में अंतर्भूत नियमों से भिन्न होते हैं। भाषायी अनुभव क्षेत्र के विस्तार, संशोधन एवं परिमार्जन के फलस्वरूप बालक की भाषा वयस्क प्रारूप के अनुरूप गठित होती है तथा वह स्वरचित नियमों में संशोधन करता है। इन सबके मूल में बालक की भाषायी प्रतिक्रिया ही महत्वपूर्ण बिंदु है।

स्पष्ट है कि सतत एवं सजग भाषायी प्रतिक्रिया तथा अंतर्भावितता के फलस्वरूप बालक भाषा का उपार्जन करता है और उसका भाषायी प्रयोग वयस्कों द्वारा किये गए प्रयोगों के समकक्ष होता जाता है। कुछ विद्वानों ने बालक की इन प्रक्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं को "लघु भाषावैज्ञानिक" सिद्धांत की संज्ञा दी है। इससे भाषा विकास से संबद्ध अनेक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है परंतु इसके आधार पर भाषा-विकास प्रक्रिया का समग्र विवेचन संभव नहीं है।

2.1.3.2. उपार्जन प्रक्रिया की आंतरिक प्रकृति

भाषा उपार्जन की प्रक्रिया स्वतः एक जटिल प्रक्रिया है। जटिलता का प्रमुख कारण एक ओर भाषायी प्रक्रिया की जटिलता है तो दूसरी ओर उपार्जन प्रक्रिया की जटिलता। फिर भी भाषा उपार्जन में सहायक कुछ विशिष्टताओं की ओर संकेत करना उचित होगा।

2.1.3.2.1. प्रत्यक्षात्मक प्रमुखता

भाषा-उपार्जन क्रम में बालक उन ध्वनियों तथा ध्वनि समूहों को सबसे पहले सीखता है जिनका प्रत्यक्षीकरण अधिक स्पष्ट एवं सरल होता है। जिन ध्वनियों एवं प्रयोगों को सुनकर पहचानने एवं समझने में जितनी स्पष्टता जनित सरलता होगी उनको जल्दी सीखा जा सकता है। सरलता प्रत्यक्षात्मक प्रमुखता से आंतरिक रूप से संबद्ध है। भाषायी विकास की प्रारंभिक स्थिति में बालक बड़ों द्वारा किये गये भाषायी प्रयोगों का सहज अनुकरण करता है। अध्ययनों द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है कि बालक प्रयोगों के उन्हीं अंशों का अनुकरण करता है जो प्रत्यक्षात्मक प्रमुखता रखते हैं। यह प्रमुखता बलाघात अथवा अनुतान परिवर्तन के रूप में परिलक्षित होती है। अतः भाषायी उपार्जन-प्रक्रिया में भाषायी प्रयोगों की प्रत्यक्षात्मक प्रमुखता विशेष रूप से सहायक है।

2.1.3.2.2. रूपात्मक जटिलता

भाषा उपार्जन-प्रक्रिया में रूपात्मक जटिलता उपार्जन की गति को नियंत्रित करती है। रूपात्मक जटिलता भाषा की ध्वनि तथा व्याकरणिक व्यवस्था से संबद्ध हो सकती है। वस्तुतः जटिलता को भाषायी नियमों के अपवादों से संबद्ध किया जा सकता है। अध्ययनों के क्रम में यह देखा गया है कि बालक को इन अपवादों के अधिगम में विशेष कठिनाई होती है। बालक भाषायी नियमों के सामान्यीकरण में जितना अधिक समर्थ होता है भाषायी संरचनाएँ उतनी ही जल्दी सीखी जाती हैं। सामान्यीकरण ठीक न होने पर अधिगम में विलंब होता है। भाषा की ध्वनि तथा व्याकरणिक व्यवस्था से संबद्ध अपवादों की संख्या यदि सीमित है तो इनके उपार्जन में अपेक्षाकृत कम समय लगता है।

2.1.3.2.3. आर्थी जटिलता

भाषा उपार्जन के क्रम में बालक सार्थक प्रयोगों को सीखने का प्रयत्न करता है। भाषा में आर्थी जटिलता की न्यूनता होने पर वह विविध भाषायी प्रयोगों को सरलता से आत्मसात कर लेता है। यह देखा गया है कि आर्थी संबंधों की सरलता एवं स्पष्टता भाषा-उपार्जन में सहायक है। बालक इनको शीघ्रता एवं सरलता से

सीख लेता है। बालक के प्रत्यक्ष ज्ञान एवं अनुभूति से संबद्ध दृश्य, श्रव्य अथवा स्पर्श्य वस्तुएँ तथा क्रियाएँ अपेक्षाकृत जल्दी सीखी जाती हैं। इसके विपरीत अतीत एवं भविष्य से संबद्ध प्रयोगों को सीखने में बिलंब होता है। वस्तुतः भाषा में अर्थ और रूप का संबंध महत्वपूर्ण है। जहाँ अर्थ और रूप का संबंध प्रत्यक्ष एवं सुबोध है वहाँ अधिगम में सरलता होती है, जहाँ यह संबंध जटिल हो जाता है वहीं सीखने में अधिक समय एवं श्रम की अपेक्षा होती है।

2.1.3.2.4. भाषायी प्रारूप

बालक के भाषायी विकास में माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा प्रस्तुत आदर्श भाषायी प्रारूपों का विशेष योगदान है। ये नमूने किस प्रकार के हों तथा उनके प्रति किस सीमा तक उद्भासन अपेक्षित है जिससे बालक का समुचित भाषायी विकास हो सके ये महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। छोटे बालकों के साथ किये गए भाषायी प्रयोगों में सरलीकरण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। वयस्कों द्वारा प्रस्तुत भाषायी नमूनों एवं प्रारूपों में परिवर्तन होता रहता है। इसमें सरलता, व्याकरणिकता तथा पुनरावृत्यात्मकता का समावेश होता है। बालक के भाषायी विकास में इनका विशेष महत्व है। क्रमशः बालक के भाषायी विकास के साथ-साथ वयस्कों के भाषायी प्रयोग भी वाक्यीय, शाब्दी तथा आर्थी दृष्टि से जटिलतर होते जाते हैं। परंतु भाषा विकास में अपेक्षाकृत सरल प्रयोगों का ही विशेष योगदान स्वीकार किया गया है।

2.1.3.2.5. भाषायी प्रयोगों का विस्तार

भाषा उपार्जन-प्रक्रिया में बालक वयस्कों अथवा बड़ों के भाषायी प्रयोगों का अनुकरण करता है। परंतु यह भी सत्य है कि भाषा सिखाते समय बड़े लोग भी बालक द्वारा प्रयुक्त भाषायी प्रयोगों का अनुकरण करते हैं। इस अनुकरण की प्रकृति में अंतर है—बालकों के द्वारा अनुकरण में संक्षिप्तीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है और बड़ों द्वारा अनुकरण में विस्तार की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। वे बालक के अधूरे उच्चारों को पूरे वाक्य में विकसित एवं रूपांतरित करते हैं। विस्तृतीकरण की यह प्रक्रिया न केवल बालक की अभिव्यक्ति को बोधगम्य बनाती है बल्कि अभिव्यक्ति विशेष के सही प्रारूपों का नमूना भी प्रस्तुत करती है, उन्हें सीखने की प्रेरणा देती है। इसके आधार पर बालक कथ्य तथा अभिव्यक्ति-रूप दोनों को ही सीखने में समर्थ होता है। अनेक प्रयोगों (नेल्सन, कार्सफाडन तथा बोनविलियन 1973) के आधार पर कहा जा सकता है कि बालक के भाषायी उपार्जन में विस्तृतीकरण सहायक एवं महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

2.1.3.2.6. पुनर्बलन

भाषा-उपार्जन में पुनर्बलन की महत्वपूर्ण भूमिका है। उपार्जन प्रक्रिया में स्वतः समाहित यह तत्व अनेक दृष्टियों से सहायक है। भाषा संप्राप्ति के क्रम में भाषा का वयस्क प्रयोक्ता बालक के कुछ उच्चारों के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया करता है। बालक के उच्चारों को स्वीकृति प्रदान करते हुए, उनसे सहमति प्रकट करते हुए वह बालक को इन प्रयोगों की आवृत्ति की प्रेरणा देता है। पुनर्बलन की चयनात्मक प्रक्रिया में वयस्कों के भाषायी प्रयोगों से मिलते जुलते प्रयोगों को ही पुनर्बलित किया जाता है। चूंकि इससे भिन्न प्रयोग पुनर्बलित नहीं होते अतः वे अपेक्षाकृत कम प्रयुक्त होते हैं। कालांतर में बालक के भाषायी उच्चार वयस्क-प्रयोगों के समान होते जाते हैं।

यद्यपि कुछ विद्वान भाषायी विकास में पुनर्बलन के प्रत्यक्ष योगदान को स्वीकार नहीं करते परंतु यह उल्लेखनीय है कि उनकी आपत्ति पुनर्बलन के अस्तित्व से संबंधित न होकर उसकी कार्यकारिता से संबंधित है। पुनर्बलन सिद्धांत उच्चारों के पुनर्बलन पर बल देता है। परंतु बालक वस्तुतः उच्चारों के गठन के नियमों को सीखता है। वयस्कों द्वारा बालक के उच्चारों के गठन को पुनर्बलित नहीं किया जाता बल्कि कथ्य एवं अभिव्यक्ति की सत्यता को पुनर्बलित किया जाता है। जो भी हो भाषा उपार्जन की प्रक्रिया में पुनर्बलन का, चाहे वह प्रत्यक्ष हो अथवा परोक्ष, महत्व स्वीकृत है।

2.1.3.3. पर्यावरण का योगदान

बालक के भाषायी उपार्जन में पर्यावरण प्रमुख प्रभावी घटक है। वस्तुतः भाषा उपार्जन और भाषा-अधिगम का प्रमुख अंतर पर्यावरण तथा उसकी प्रकृति से संबद्ध है। पर्यावरण जन्य उद्भासन को भाषा-विकास का केंद्रीय तत्व माना जा सकता है। इस संबंध में निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय है।

2.1.3.3.1. भाषायी उद्भासन

भाषा उपार्जन के लिए भाषायी उद्भासन अत्यंत आवश्यक है। भाषायी उद्भासन से तात्पर्य है भाषा विशेष का सहज परिवेश और उस परिवेश के प्रति बालक की संचेतना। सामाजिक प्राणी के रूप में मानव शिशु समाज में जन्म लेता है, चतुर्दिक उपलब्ध भाषायी परिवेश के बीच वह विकसित होता है। बालक और भाषायी परिवेश के बीच घटित अंतःक्रिया के फलस्वरूप वह भाषा संप्राप्ति में समर्थ होता है। इस परिवेश की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं।

(1) भाषायी मात्रा का आधिक्य

बालक के चारों ओर व्याप्त भाषायी परिवेश की सबसे बड़ी विशेषता है प्रयुक्त भाषायी मात्रा का आधिक्य। बालक जिस परिवेश में विकसित होता है उसमें निरंतर भाषा का, मातृभाषा का प्रयोग होता रहता है। अत उसे उस भाषा का सतत संपर्क प्राप्त होता है, वह उससे उद्भासित होता रहता है। यह संपर्क एवं तज्जनित उद्भासन विविध रूपों में उपलब्ध होता है।

(क) शिशु के साथ प्रत्यक्ष रूप से किया गया भाषायी प्रयोग

माता पिता शिशु को संबोधित करते हुए कुछ शब्दों अथवा छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं। भाषायी विकास की प्रारंभिक स्थिति में शिशु इन प्रयोगों को नहीं समझता परंतु उसके साथ किये गये ये प्रत्यक्ष भाषायी प्रयोग क्रमशः भाषा उपार्जन में सहायक बनते हैं। यह भाषायी प्रयोग अधिकांशतः सार्थक एवं सोद्देश्य होते हैं। इनका लक्ष्य मुख्यतः इस प्रकार का भाषायी परिवेश गठित करना है जिससे शिशु विकास-क्रम में भाषा का सार्थक प्रयोग कर सके। ये भाषायी प्रयोग संकेत मूलक होते हैं। शिशु के निकटवर्ती परिवेश में सामान्यतः प्राणियों, वस्तुओं तथा क्रियाओं की ओर संकेत करते हुए भाषा का व्यवहार किया जाता है। फलस्वरूप शिशु नामों, क्रियाओं तथा अन्य शब्दों से परिचित हो जाता है। वयस्क प्रयोक्ता इन प्रयोगों में सरलतम भाषा का प्रयोग करता है। आवश्यकतानुसार अभिव्यक्ति के पुनः स्पष्टीकरण एवं पुनरावृत्ति का भी प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार प्रारंभिक स्तर पर भाषायी प्रयोगों को न समझने वाले शिशु के साथ भाषा का सार्थक संदर्भों में सरलतम एवं सुबोध प्रयोग भाषा उपार्जन के लिए पर्याप्त भाषायी उद्भासन प्रदान करता है।

(ख) शिशु की उपस्थिति में परोक्ष रूप से किया गया भाषायी प्रयोग

भाषायी उद्भासन का एक दूसरा रूप वह है जहाँ शिशु की उपस्थिति में दूसरों के साथ भाषायी व्यवहार संपन्न होता है। ये भाषायी प्रयोग यद्यपि शिशु के साथ प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध नहीं होते और न ही पूर्णरूपेण सार्थक एवं बोध गम्य होते हैं फिर भी इन्हें भाषायी उपार्जन में भाषायी उद्भासन का प्रमुख स्रोत माना जाता है। बालक भाषा की ध्वनियों, शब्दों तथा वाक्यों से सहज रूप से उद्भासित होता है। परोक्ष रूप से गठित इस भाषायी परिवेश का उद्भासन-प्रक्रिया में विशेष महत्व है।

(ग) बालक द्वारा व्यवहृत भाषायी प्रयोग

भाषायी उद्भासन की चरम परिणति बालक द्वारा किये गये भाषायी प्रयोगों में परिलक्षित होती है। बोधन की कुशलता विकसित होने के साथ ही बालक

भाषा का प्रयोग करना भी सीखता है। उसके अधिकांश प्रयोग एकालाप रूप में होते हैं। इस स्तर पर बालक बिना किसी बाह्य उद्दीपन के भाषा का एकांतिक प्रयोग करता है। कभी-कभी यह प्रयोग काल्पनिक संभाषण का रूप भी ले लेता है। इस प्रकार के भाषायी प्रयोग स्वतः पुनर्निवेशन की प्रक्रिया के द्वारा बालक के भाषायी विकास में विशेष रूप से सहायक होते हैं। बालक का यह भाषायी प्रयोग वस्तुतः उसकी भाषिक कुशलता का आंशिक द्योतक मात्र है। इससे उसकी वास्तविक कुशलता का परिचय नहीं मिलता।

स्पष्ट है कि बालक के भाषायी विकास में विविध रूप में उपलब्ध भाषायी मात्रा का आधिक्य भाषा उपार्जन में विशेष रूप से सहायक है।

(2) उच्चरित भाषा का परिवेश

बालक जिस परिवेश से निरंतर उद्भासित होता है उसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह परिवेश मुख्यतः उच्चरित भाषा का ही परिवेश होता है, लिखित भाषा का नहीं। भाषा की प्रकृति का वास्तविक द्योतन उच्चरित रूप के द्वारा ही संभव है। भाषा संप्राप्ति के क्रम में बालक को भाषा के उच्चरित प्रयोगों को ही सुनने का अधिक से अधिक अवसर प्राप्त होता है। फलस्वरूप भाषा को सुनने और समझने तथा उसके माध्यम से विचारों एवं भावों की मौखिक अभिव्यक्ति की कुशलता सहज रूप से विकसित होती है। भाषा के सैद्धांतिक पक्ष से अपरिचित बालक विविध भाषायी व्यवस्थाओं पर पर्याप्त अधिकार कर लेता है। यही कारण है कि मातृभाषा में सभी सामान्य बालक श्रवण एवं भाषण की कुशलता स्वाभाविक रूप से अर्जित कर लेते हैं।

(3) स्वाभाविक एवं अनियंत्रित परिवेश

बालक के चतुर्दिक व्याप्त भाषायी परिवेश की एक विलक्षणता यह है कि यह स्वाभाविक, अकृत्रिम एवं अनियंत्रित भाषायी प्रयोगों का परिवेश होता है। बालक भाषा के सहज, स्वाभाविक एवं संदर्भानुकूल प्रयोगों को सुनता है, भाषायी प्रयोगों को कृत्रिम संदर्भों में गठित करने की आवश्यकता नहीं होती। अन्य भाषा शिक्षण की भाँति अनुस्तरित भाषायी साँचों के अनुकरण अभ्यास की भी अपेक्षा नहीं की जाती है। भाषा संप्राप्ति में बालक को विविध भाषायी प्रयोगों को सुनने का सहज अवसर मिलता है। विविध संदर्भों में भाषायी प्रयोगों की विविधता न केवल भाषायी उद्भासन में सहायक है बल्कि भाषायी व्यवहार की संपन्नता एवं सुदृढ़ता का भी द्योतक है।

बालक के भाषायी परिवेश को अनियंत्रित परिवेश इसलिए भी माना जाता है कि इसे पूर्णतया व्याकरण सम्मत भाषा का परिवेश नहीं कहा जा सकता। इन

प्रयोगों में अनेक प्रकार की अनियमितताएँ भी होती हैं, फिर भी बालक में यह क्षमता होती है कि वह इन्हीं प्रयोगों के आधार पर भाषायी नियमों एवं व्यवस्थाओं पर पर्याप्त अधिकार पा लेता है।

संक्षेप में भाषा उपार्जन की मनोसामाजिक प्रवृत्ति प्रत्येक बालक में सहज रूप से वर्तमान होती है एवं उसके विकास के लिए समुचित भाषायी परिवेश उपलब्ध रहता है। समुचित भाषायी परिवेश से निरंतर उद्भासित होने पर वह किसी भी भाषा को सीखने में समर्थ होता है। उसके लिए न तो कोई भाषा जटिल है और न भाषा उपार्जन की प्रक्रिया दुरुह ही है। एक भाषा का उद्भासन मिलने पर वह एकभाषी बनता है और दो भाषाओं का उद्भासन प्राप्त होने पर द्विभाषी। स्पष्ट है कि प्रत्येक सामान्य मानव शिशु में भाषायी उद्भासन के फलस्वरूप भाषा-उपार्जन की प्रक्रिया सहज और स्वाभाविक रूप से गतिशील होती है।

2.1.3.3.2. भाषायी पुर्ननिवेशन

बालक के भाषा उपार्जन में भाषायी पर्यावरण का महत्व इस रूप में भी स्वीकृत है कि यह पुर्ननिवेशन की प्रक्रिया में सहायक है। भाषायी उद्भासन के प्रति बालक की प्रतिक्रिया के सही मार्गांतरीकरण के लिए पुर्ननिवेशन आवश्यक है। भाषायी परिवेश में भाषा के प्रयोक्ताओं के द्वारा पुर्ननिवेशन प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से किया जाता है। भाषायी विकास के प्रारंभिक स्तर पर माता पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य बालक के भाषायी प्रयोगों को संशोधित करते हैं। यह संशोधन कार्य इतने सहज रूप से होता है कि संशोधन कर्ता स्वयं पुर्ननिवेशन कार्य से अनिभिज्ञ होता है। उसका प्रमुख उद्देश्य बालक को भाषा के प्रचलित प्रयोगों के व्यवहार की कुशलता प्रदान करता है। इस प्रकार पुर्ननिवेशन को प्रत्यक्ष पुर्ननिवेशन की संज्ञा दी जाती है।

पुर्ननिवेशन के परोक्ष रूप में बालक भाषायी प्रयोगों की सफलता तथा असफलता से परोक्षतः नियंत्रित होता है। भाषा उपार्जन के प्रारंभिक स्तर पर बालक जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भाषा का साधन के रूप में प्रयोग करना सीखता है। यदि इन प्रयोगों के माध्यम से उसकी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं, तो वह यह समझ लेता है कि उसके प्रयोग ठीक हैं। ऐसी स्थिति में स्वयं उसकी भाषायी प्रतिक्रियायें एवं तज्जनित भाषायी प्रयोग पुर्ननिवेशन में सहायक होते हैं। क्रमशः वह उपलब्ध भाषायी परिवेश यथा वयस्क प्रयोक्ताओं द्वारा प्रस्तुत भाषायी प्रारूपों एवं नमूनों के आधार पर स्वयं अपने भाषायी प्रयोगों को संशोधित एवं पुनर्गठित करता है।

भाषायी संप्राप्ति की प्रक्रिया में पुर्ननिवेशन का विशेष योगदान स्वीकृत है। इससे बालक को केवल सही और गलत प्रयोगों की सूचना ही नहीं मिलती बल्कि वह इस तथ्य से भी अवगत होता है कि उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा श्रोता के व्यवहार को भी प्रभावित करती है। क्रमशः वह भाषा के माध्यम से निकटवर्ती परिवेश को नियंत्रित करना सीखता है। इस प्रकार वह भाषा के नियामक कार्य से परिचित होता है। यह धारणा उसमें मुख्य रूप से विकसित हो जाती है कि भाषा उसकी विविध आवश्यकताओं—भौतिक आवश्यकताओं, सम्प्रेषण, सहयोग एवं सामाजिक स्वीकृति आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है, उसकी एक प्रमुख शक्ति एवं संबल है।

स्पष्ट कि है बालक के भाषायी विकास में पर्यावरण का महत्वपूर्ण योगदान है। इस पर्यावरण में वयस्क प्रयोक्ताओं की भूमिका विविध रूपों में स्वीकृत हैं—वे बालकों से बोलते हैं, बातचीत करते हैं। इस प्रकार वे न केवल बालक को उत्प्रेरित करते हैं बल्कि भाषा-प्रयोग के नमूने भी प्रस्तुत करते हैं। इन नमूनों के आधार पर वह भाषा का स्वतः प्रयोग करना सीखता है। भाषा का वयस्क प्रयोक्ता बालक के सामने भाषा प्रयोग के विविध अवसर एवं संदर्भ भी नियोजित करता है। बालक जब इन संदर्भों में भाषा का प्रयोग करता है तो वयस्क श्रोता उनमें समुचित रुचि प्रदर्शित करता है उन्हें ध्यान से भी सुनता है। फलस्वरूप बालक की भाषायी प्रतिक्रियाओं में मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही दृष्टियों से वृद्धि होती है। इस प्रकार के आत्मीय एवं शैक्षिक वातावरण का अभाव होने पर भाषा विकास में रुकावट अथवा पिछड़ेपन का होना स्वाभाविक है। प्रत्यक्ष-शिक्षण-योजना के द्वारा बालक के भाषायी विकास में अपेक्षित सहायता की जा सकती है।

2.2. भाषा अधिगम

अनुभव तथा प्रशिक्षण के फलस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन तथा परिवर्धन अधिगम है। वस्तुतः अधिगम में किसी नवीन तथ्य, क्रिया-व्यापार एवं व्यवहार की जानकारी प्राप्त की जाती है जिससे अध्येता पूर्व परिचित नहीं होता। अधिगम की प्रक्रिया अनौपचारिक अथवा औपचारिक परिवेश में घटित हो सकती है। अनौपचारिक अधिगम-प्रक्रिया सहज एवं स्वाभाविक रूप से गतिशील रहती है। अधिगम प्रक्रिया पूर्व निर्धारित उद्देश्यों, योजनाओं तथा विधिवत शिक्षण द्वारा नियंत्रित नहीं होती। परंतु औपचारिक अधिगम में इनकी अपेक्षा की जाती है तथा अध्येता के साथ अध्यापक की संकल्पना भी समाविष्ट होती है। अध्यापक निर्धारित उद्देश्यों का स्पष्टीकरण, शिक्षण सामग्री का चयन एवं प्रस्तुतीकरण इतनी कुशलता से करता है जिससे छात्रों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन हो सके। प्रस्तुत संदर्भ में अधिगम

को औपचारिक शिक्षण से नियंत्रित प्रक्रिया माना गया है। अतः इसे शिक्षण की निष्पत्ति कहा जा सकता है।

भाषा अधिगम से तात्पर्य अध्येता के भाषायी व्यवहार में अनुभव एवं प्रशिक्षण जन्य परिवर्तन एवं परिवर्धन है। भाषा अधिगम मुख्यतः कौशल केंद्रित प्रक्रिया है। भाषा सिखाते समय अध्यापक का लक्ष्य छात्रों में भाषायी कौशलों को विकसित एवं परिमार्जित करना रहता है। औपचारिक शिक्षण के क्रम में वह छात्र में भाषायी व्यवहार की दक्षता उत्पन्न करता है तथा सम्प्रेषणात्मक कुशलता को विकसित करता है। भाषायी घटकों पर अधिकार कराने के साथ ही साथ वह इनके प्रयोग की कुशलता का भी विकास करता है। अतः भाषा अधिगम, विशेषकर अन्य भाषा अधिगम एक विशिष्ट प्रक्रिया है। इसे अन्य ज्ञानात्मक विषयों के अधिगम से भिन्न प्रक्रिया माना गया है। भाषा अधिगम तथा अन्य विषयों के अधिगम में निम्नलिखित दृष्टिकोणों से अंतर स्थापित किया जा सकता है—

ज्ञानात्मक विषयों का अधिगम विषय वस्तु एवं तथ्य केंद्रित है। विषय वस्तु पर अधिकार करना तथा संबंधित ज्ञान को आत्मसात करना ही अध्येता का लक्ष्य होता है। परंतु भाषा अधिगम एवं शिक्षण का लक्ष्य भाषायी व्यवहार की कुशलता उत्पन्न करना है, जिससे भाषा के उच्चरित तथा लिखित रूप के माध्यम से सम्प्रेषण दक्षता विकसित हो सके। भाषा अधिगम में किसी एक कौशल को सीखने का तात्पर्य यह नहीं है कि अन्य भाषायी कौशलों पर भी अधिकार कर लिया गया है। भाषा अधिगम में प्रत्येक भाषायी कौशल पर पर्याप्त अधिकार प्राप्त करना आवश्यक होता है।

भाषा अधिगम की दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि इसके द्वारा छात्र में भाषा के वास्तविक प्रयोग की कुशलता विकसित होती है। भाषा के विषय में केवल सैद्धांतिक ज्ञान की ही आवश्यकता नहीं होती। भाषा का इतिहास, उसका सैद्धांतिक विवेचन भाषा अधिगम से संबंधित प्रासंगिक विषय हो सकते हैं; भाषा अधिगम की प्रक्रिया से उनका सीधा संबंध नहीं होता। भाषा अधिगम का संबंध वस्तुतः भाषायी समझ के विकास से है। छात्र भाषा को रट कर नहीं सीखता, भाषायी नियमों को आत्मसात करता है। अतः शिक्षण का उद्देश्य भाषायी अंतर्दृष्टि को विकसित करना है, सैद्धांतिक जानकारी मात्र देना नहीं है।

भाषा अधिगम की तीसरी प्रमुख विशेषता भाषा के मानक रूप का अधिगम है, मानकेतर रूप का नहीं। अन्य भाषा के अधिगम तथा शिक्षण में शिक्षण सामग्री का नियोजन इस आधार पर ही किया जाता है। शिक्षक का मुख्य उद्देश्य भाषा के मानक रूप से ही छात्र को परिचित कराना तथा उसके प्रयोग की कुशलता

विकसित करना होता है। अन्य विषयों के संदर्भ में मानक एवं मानकेतर की संकल्पना ही नहीं गठित होती।

भाषा अधिगम की एक प्रमुख विशेषता भाषायी आदतों का गठन है। भाषायी आदतों के गठन तथा उनके विकास के लिए समुचित परिवेश की योजना, शिक्षण बिंदुओं के चयन, अनुस्तरीकरण तथा प्रस्तुतीकरण की विशिष्ट तकनीकों का अनुप्रयोग आवश्यक हो जाता है। अतः शिक्षण सामग्री की उपयुक्तता तथा शिक्षण प्रक्रिया की प्रभावितता अनिवार्य तत्व है। इनके माध्यम से ही छात्र भाषायी कौशलों पर समुचित अधिकार पा लेता है। अन्य विषयों के संदर्भ में संबंधित ज्ञान ही पर्याप्त माना जाता है।

भाषा अधिगम की एक प्रमुख विशिष्टता संस्कृति सापेक्षता है। भाषा और संस्कृति में गहन संबंध है। संस्कृति को भाषा का केंद्रीय तंतु कहा गया है [राबर्ट लैडो]। बालक मातृभाषा के अधिगम में भाषायी संस्कृति को सहज एवं स्वाभाविक रूप से आत्मसात करता है, संस्कृति के शिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। परंतु अन्य भाषा अधिगम में उसे भाषायी संस्कृति को सप्रयास सीखना पड़ता है। शिक्षक प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष उपागम के द्वारा छात्रों में सांस्कृतिक चेतना का विकास करता है। संस्कृति की समझ विकसित होने पर भाषा अधिगम की प्रक्रिया समुचित रूप से गतिशील होती है एवं भाषा-व्यवहार की कुशलता में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। स्पष्ट है कि भाषा अधिगम की प्रक्रिया सचेतन रूप से गतिशील, सोद्देश्य, निर्दिष्ट एवं कौशल केंद्रित सुनियोजित प्रक्रिया है। इस दृष्टि से इसे भाषा संप्राप्ति अथवा उपार्जन से भिन्न माना जा सकता है। अतः इन दोनों पर सम्यक विचार करना समीचीन होगा।

2.2.1. भाषा उपार्जन तथा भाषा अधिगम में अंतर

भाषा उपार्जन और भाषा अधिगम की प्रक्रियाओं का तुलनात्मक विवेचन करने के पूर्व इस तथ्य पर विचार करना आवश्यक है कि भाषा अधिगम में क्या वे ही मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ सन्निहित हैं जो भाषा उपार्जन की प्रक्रिया में वर्तमान रहती हैं अथवा ये दोनों भिन्न प्रक्रियाएँ हैं? इस प्रश्न पर यदि गंभीरता से विचार किया जाये तो निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं।

भाषा उपार्जन तथा भाषा अधिगम की प्रक्रियाओं में आधारभूत भिन्नता नहीं पाई जाती। बालक के द्वितीय भाषा अधिगम की प्रक्रिया कुछ प्रमुख दृष्टिकोणों से मातृभाषा अधिगम की सामान्य प्रक्रिया से मिलती जुलती प्रक्रिया है [ब्राउन, काजडन, स्लोबिन आदि] इरविन ट्रिप [1974] तथा विविन कुक [1969] के अध्ययनों से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। परंतु इन प्रक्रियाओं को समरूपी भी नहीं कहा जा

सकता। भाषा उपार्जन तथा अधिगम की प्रक्रियाओं में भिन्नता का कारण परिस्थिति एवं परिवेश जन्य भिन्नता है। फलस्वरूप अध्येता की उपलब्धियों में भिन्नता दृष्टिगत होती है। मातृभाषा के उपार्जन तथा अधिगम में परिलक्षित होने वाली विशिष्टताओं का विवेचन निम्नलिखित दृष्टिकोणों से किया जा सकता है।

2.2.1.1. उद्भासनगत अंतर

भाषा उपार्जन तथा भाषा अधिगम में मुख्य अंतर उद्भासन के आधार पर किया जा सकता है। कहा जा चुका है कि मातृभाषा का उद्भासन शिशु को जन्म देने से ही उपलब्ध होता है। वह चतुर्दिक भाषायी परिवेश के बीच विकसित होता है अतः मातृभाषा को सहज रूप से आत्मसात करता है। परंतु अन्य भाषा के अधिगम में भाषायी उद्भासन कक्षा के कुछ घंटों तक ही सीमित है। फलस्वरूप उद्भासनगत अंतर का होना स्वाभाविक है। कुछ विद्वानों का तो यह मत है कि कक्षा में औपचारिक रूप से एक वर्ष तक सीखी गई अन्य भाषा, मातृभाषा के उपार्जन परिवेश में सहज रूप से उपार्जित एक से तीन सप्ताह की उपलब्धि के समकक्ष है [विलकिन्स 1974]। इससे अनुमान लगाया जा सकता है। कि मातृभाषा के उपार्जन के स्तरों तक—जो सामान्यतः तीन से चार वर्षों में पर्याप्त विकसित हो जाते हैं—पहुँचने में अन्य भाषा अधिगम प्रक्रिया में कितना समय अपेक्षित होगा। स्पष्ट है कि भाषा अधिगम और भाषा उपार्जन का प्रमुख अंतर उद्भासनगत अंतर है।

2.2.1.2. संदर्भगत अंतर

बालक मातृभाषा को प्रत्यक्ष एवं निकटवर्ती परिस्थितियों तथा संदर्भों में सीखता है। प्रत्येक भाषायी प्रयोग संदर्भ विशेष से जुड़ा होता है। उसकी भाषायी अनुभूतियाँ संदर्भ में ही गठित होती हैं। भाषा प्रयोग तथा उसके संदर्भ के बीच अंतराल की स्थिति नहीं पायी जाती। परंतु अन्य भाषा के अधिगम में यह परिवेश सहज एवं स्वाभाविक रूप से गठित नहीं हो पाता। यद्यपि औपचारिक शिक्षण के क्रम में परिवेश निर्मित करने का यथासंभव प्रयत्न किया जाता है, परंतु प्रत्येक उच्चार के लिए समुचित संदर्भ गठित करना दुष्कर कार्य है। इतना ही नहीं औपचारिक शिक्षण योजना में सिखाये जाने वाले सभी भाषायी प्रयोगों को वास्तविक सम्प्रेषणात्मक आवश्यकताओं से भी संबद्ध नहीं किया जा सकता। अध्येता भाषायी प्रयोगों को सीखने की प्रत्यक्ष एवं प्रयोजनमूलक अनिवार्यता का अनुभव नहीं कर पाता। फलस्वरूप भाषायी कुशलता के विकास एवं तज्जनित उपलब्धियों में अंतर होना स्वाभाविक है।

2. 2. 1. 3. आवश्यकताजन्य अंतर

मातृभाषा बालक की आत्मीय भाषा है। उसके साथ उसका रागात्मक लगाव होता है। एक ओर वह उसमें सामाजिक सुरक्षा की चेतना को विकसित करती है, तो दूसरी ओर वह उसकी सामाजिक अस्मिता का निर्धारण भी है। बालक की प्रबल आकांक्षा समाज से जुड़ने की, सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करने की तथा दूसरों द्वारा समझे जाने की होती है। अतः भाषा उपार्जन के मूल में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से ये सभी आवश्यकताएँ अंतर्भूत होती हैं। बालक जब अन्य भाषा को सीखने का प्रयत्न करता है तो इस प्रकार की बाध्यता का सामान्यतः अनुभव नहीं कर पाता। अध्येता को यदि किसी कारणवश इस प्रकार की स्थितियों का सामना करना पड़ता है जहाँ सम्प्रेषण-माध्यम के रूप में अन्य भाषा का प्रयोग करना अनिवार्य हो तो भाषा अधिगम की गति में तीव्रता का सहज रूप से समावेश हो जाता है। भाषा उपार्जन तथा भाषा अधिगम का यह अंतर निश्चय ही महत्वपूर्ण है।

2.2.1.4. पुनर्बलनगत अंतर

बालक के मातृभाषा उपार्जन तथा अन्य भाषा अधिगम में अंतर का एक प्रमुख कारण पुनर्बलन की मात्रात्मक और गुणात्मक भिन्नता है। बालक के परिवार में भाषा उपार्जन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध होती हैं। उसे भाषायी पुनर्निवेशन सतत रूप में प्राप्त होता रहता है। संभव है इसका प्रत्यक्ष संबंध भाषायी प्रयोगों को बोधगम्यता से न हो परंतु भाषायी प्रयोगों के बोधगम्य न होने पर भी पुनर्निवेशन की प्रक्रिया सतत गतिशील रहती है। फलस्वरूप बालक को भाषायी अभिव्यक्ति के कथ्य और रूप से संबंधित जानकारी प्राप्त होती रहती है। बालक के भाषायी विकास में भाषायी प्रयोगों के रूपों से संबंधित जानकारी का विशेष महत्व है। कहा जा चुका है कि भाषायी विकास के क्रम में भाषा का वयस्क प्रयोक्ता ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से बालक के सम्मुख भाषायी प्रारूपों को प्रस्तुत करता है। भाषा का उपार्जक बालक इन प्रारूपों के आधार पर भाषायी प्रयोगों की कुशलता विकसित कर लेता है। सामान्यतः यह देखा गया है कि बालक जिस भाषायी संरचना को सीखने के लिए प्रयत्नशील है उस समय वयस्क प्रयोक्ता उसी संरचना का प्रयोग अधिकाधिक करता है। इससे भाषायी संरचना के उपार्जन में सहायता मिलती है। बालक द्वारा प्रयुक्त भाषायी रूपों का संशोधन वयस्कों द्वारा सामान्यतः प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष होता है। ऐसी स्थिति में बालक द्वारा प्रयुक्त अशुद्ध रूपों का संशोधित एवं सही रूप ही वयस्कों द्वारा प्रयोग किया जाता है। इसके आधार पर बालक न केवल अपने प्रयोगों में संशोधन कर लेता है बल्कि वह सही प्रारूपों को आत्मसात करने का भी प्रयत्न करता है।

अन्य भाषा के अधिगम में इस प्रकार का त्वरित पुनर्बलन एवं पुनर्निवेशन संभव नहीं हो पाता। अध्येता की त्रुटियों के संशोधन में भी सामान्यतः प्रत्यक्ष उपागम की सहायता लेनी पड़ती है। इसका प्रभाव बहुधा नकारी अभ्यनुकूलन के रूप में दृष्टिगत होता है। अन्य भाषा का वयस्क छात्र कुछ मनोवैज्ञानिक कारणों से भाषा को सहज एवं स्वाभाविक रूप से सीखने में असमर्थता का अनुभव करता है। पुनर्बलन की मात्रात्मक एवं गुणात्मक भिन्नता का एक कारण यह भी है कि अन्य भाषा उसकी आधारभूत आवश्यकताओं से उस रूप में संबद्ध नहीं होती जिस रूप में मातृभाषा संयुक्त होती है।

2. 2. 1. 5. **उत्प्रेरणगत अंतर**

भाषा उपार्जन और भाषा अधिगम प्रक्रिया में अंतर का एक प्रमुख कारण उत्प्रेरणगत भिन्नता है। भाषा उपार्जन में बालक भाषा को सीखने के लिए स्वयं उत्प्रेरित होता है। उसके लिए भाषा निकटवर्ती परिवेश से संपर्क स्थापित करने का साधन है। जिन भाषायी प्रयोगों से उसकी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं, जिनके माध्यम से वह सम्प्रेषण स्थापित करने में समर्थ होता है, उन्हें वह जल्दी सीख लेता है। इस क्रम में उसका भाषायी प्रयोग परिष्कृत एवं परिमार्जित होता रहता है। परंतु अन्य भाषा अधिगम में उत्प्रेरण सामान्यतः आरोपित होता है। इस स्थिति में वह उस सहज अनिवार्यता का अनुभव नहीं कर पाता। यदि किन्हीं बाध्यताओं के फलस्वरूप अध्येता भाषा के नियामक कार्य से परिचित हो जाता है तब अन्य भाषा अधिगम में उत्प्रेरण की समस्या अपेक्षाकृत सरल बन जाती है और भाषा अधिगम-प्रक्रिया अपेक्षाकृत प्रभावी होती है। अधिगम के क्षेत्र में किए गए अनुसंधानों से उत्प्रेरण के दो रूपों पर प्रकाश पड़ता है—साध्य अथवा समन्वयात्मक रूप और साधन अथवा उपकरणात्मक रूप। अध्येता जब अन्य भाषा और उसकी संस्कृति से तादात्म्य स्थापित करना चाहता है, उसका गहन अध्ययन करना चाहता है तो वहाँ उत्प्रेरण का साध्य एवं समन्वयात्मक रूप दृष्टिगत होता है। परंतु जहाँ भाषा अधिगम किसी अन्य लक्ष्य की पूर्ति का साधन बनता है वहाँ उत्प्रेरण का उपकरणात्मक रूप परिलक्षित होता है। भाषा अधिगम में सफलता की अनुभूति उत्प्रेरण को विकसित करने में उपकरणात्मक भूमिका का काम करती है।

भाषा उपार्जन में विविध भावात्मक घटकों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। उत्प्रेरण, तदनुभूति, अहं संतुष्टि एवं सांस्कृतिक समुदाय से संपर्क स्थापित करने एवं अस्मिता निर्धारण की प्रबल इच्छा आदि के फलस्वरूप बालक मातृभाषा के उपार्जन में एकरूपात्मक सफलता का अनुभव करता है। इतना ही नहीं उसका भाषायी उपार्जन सामाजीकरण के चरम लक्ष्य की प्राप्ति का भी साधन बनता है। अन्य भाषा के अधिगम में इन भावात्मक घटकों से संबंधित गुणात्मक एवं मात्रात्मक भिन्नता होती है अतः भाषा अधिगम में विविधता पाई जाती है।

2.2.1.6. **प्रकृतिगत अंतर**

भाषा उपार्जन तथा भाषा अधिगम में एक महत्वपूर्ण अंतर यह है कि भाषा उपार्जन में भाषा अर्जन तथा भाषा व्यवहार समन्वित क्रियाएँ हैं। ये दोनों परस्पर पूरक हैं। परंतु भाषा अधिगम में, अधिगम तथा भाषायी व्यवहार दो भिन्न स्थितियाँ हैं। भाषा अधिगम का अवसर मिलने पर भी भाषायी व्यवहार का अवसर सामान्यतः उपलब्ध नहीं होता। भाषा अधिगम की प्रक्रिया वस्तुतः भाषा व्यवहार से ही संपुष्ट होती है। भाषा उपार्जन में भाषा व्यवहार के अवसर यथा—सम्प्रेषण माध्यम के रूप में भाषा का सतत प्रयोग, भाषायी क्रीड़ा, स्वतः संभाषण आदि—सहज रूप से उपलब्ध होते हैं। भाषा अधिगम में औपचारिक रूप से भाषायी प्रयोग के अवसरों को गठित किया जाता है। अतः दोनों में अंतर होना स्वाभाविक है। कक्षा की औपचारिकता एवं भाषा के सम्प्रेषणात्मक प्रयोग की अनौपचारिकता के बीच का अंतराल कम करना वस्तुतः शिक्षण का दायित्व है।

भाषा अधिगम की प्रक्रिया के संबंध में सहज जिज्ञासा होती है कि अन्य भाषा का अध्येता बालक भी हो सकता है और वयस्क भी। ऐसी स्थिति में क्या इन दोनों की अधिगम प्रक्रिया में समानता है? अथवा आयुगत तथा अन्य संबद्ध घटकों के फलस्वरूप अधिगम की प्रकृति में भिन्नता पाई जाती है? इन प्रश्नों का शिक्षण एवं अधिगम की प्रक्रिया से सीधा संबंध है। अतः इन पर विस्तार से चर्चा करना उचित होगा।

2.2.2. **बालक तथा वयस्क अध्येता**

अन्य भाषा अधिगम बाल्यावस्था में किया जा रहा है अथवा उत्तर किशोरावस्था में यह तथ्य भाषा-अधिगम-प्रक्रिया में अनेक दृष्टियों से निर्णायक तत्व माना जाता है। इस संबंध में कुछ बातें उल्लेखनीय हैं।

बाल्यावस्था को सामान्यतः भाषायी रूपों का काल माना जाता है और प्रौढ़ावस्था को भाषायी कथ्य से संबद्ध किया गया है (मैकी)। इसका एक कारण यह है कि भाषा का अध्येता बाल्यावस्था में भाषा की ध्वनि व्यवस्था पर अपेक्षाकृत सरलता एवं स्वाभाविकता से अधिकार कर लेता है। वयस्क की तुलना में बालक अनुकरण की जन्मजात सामान्य प्रवृत्ति का उपयोग निःसंकोच करता है। बाल्यावस्था में खेल की प्रवृत्ति प्रमुख होने के कारण उसके लिए ध्वनियों का अनुकरण एक प्रकार का खेल बन जाता है। अतः भाषा की ध्वनि व्यवस्था पर वयस्क की अपेक्षा उसका अधिक संपुष्ट अधिकार होता है। बाल्यावस्था में नवीन ध्वनियों का अभ्यास तथा उन्हें आदत के रूप में परिणत करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से विकसित होती

है। जहाँ तक भाषा की संरचना का प्रश्न है, अन्य भाषा का बालक-अध्येता भाषा का सहज रूप से प्रयोग करने की कुशलता विकसित कर लेता है। मातृ-भाषायी आदतों की अपेक्षाकृत कम सुदृढ़ता, संकोच की मात्रा का अभाव, न्यूनतम व्याघात तथा भाषायी अभ्यास एवं प्रयोग की आनंद मिश्रित तत्परता भाषा के अधिगम में सहायक हैं।

बालक की तुलना में भाषा के वयस्क अध्येता का ज्ञान क्षेत्र विकसित एवं अनुभव क्षेत्र समृद्ध होता है, उसकी संज्ञानात्मक शक्तियाँ अधिक परिपक्व होती हैं, वह क्या और क्यों का उत्तर देने में अधिक सक्षम रहता है तथा उसका भाषा विषयक सैद्धांतिक ज्ञान अधिक परिपुष्ट होता है। ये विशेषताएँ एक ओर यदि भाषा अधिगम में सहायक हैं तो दूसरी ओर कुछ अन्य तत्व भाषायी प्रयोग में बाधक सिद्ध होते हैं। कहा जा चुका है कि भाषायी कुशलता ज्ञान जनित कुशलता न होकर मूलतः व्यवहार जनित कुलशता है। वयस्क अध्येता मातृभाषायी व्याघात तथा अन्य मनोवैज्ञानिक कारणों से अन्य भाषा अधिगम में बालक अध्येता की भाँति सरलता और सहजता का सामान्यतः अनुभव नहीं कर पाता। परंतु अन्य विशिष्टताओं के फलस्वरूप वह भाषा अधिगम में सक्षम होता है।

अन्य भाषा का वयस्क अध्येता भाषा अधिगम के उद्देश्यों से भली-भाँति परिचित होता है। अधिगम तथा शिक्षण प्रक्रिया के सहसंबंधों की भी उसे जानकारी होती है। अधिगम प्रक्रिया में वह आगमनात्मक एवं निगमनात्मक दोनों ही प्रकार के उपागमों तथा अन्य संबंद्ध संयुक्तियों का उपयोग करने की क्षमता रखता है। मानसिक शक्तियों के समुचित विकास के कारण प्रत्यक्षीकरण तथा अन्य संज्ञानात्मक क्षमताएँ पर्याप्त रूप से विकसित होती हैं। उद्देश्यों के प्रति सजगता के फलस्वरूप उत्प्रेरण की मात्रा तथा उसकी अवधारणा—कालावधि में विकास होता है। इन सभी कारणों से वयस्क अध्येता भाषा अधिगम में सहायक विविध योग्यताओं, स्थितियों, संदर्भों, उपागमों एवं तकनीकों का प्रयोग करने में समर्थ होता है। परंतु बालक अध्येता इनमें से अधिकांश सहायक स्थितियों एवं योग्यताओं से वंचित रहता है अतः भाषा अधिगम में उसकी अपनी सीमाएँ हैं। यदि किन्हीं कारणों से वह भाषा की कुछ व्यवस्थाओं के अधिगम में अधिक सक्षम है तो अन्य सीमाओं के कारण उसकी गति नियंत्रित भी है।

बालक तथा वयस्क के अन्य भाषा अधिगमगत अंतर की स्वीकृति के साथ ही यह प्रश्न उठता है कि वयस्क अध्येता इतनी विशिष्टताओं के होते हुए भी अन्य भाषा के अधिगम में स्वभाषी के समान कुशलता अर्जित करने में क्यों असमर्थ रहता है? इसका उत्तर विभिन्न विद्वानों ने अपने ढंग से दिया है। अध्येता जब यह अनुभव करने लगता है कि वह अध्येय भाषा में प्रकार्यात्मक क्षमता के स्तर तक पहुँच चुका

है तब वह सीखना बंद कर देता है। इसके पश्चात् वह स्थिरीकृत अंतर भाषा का ही प्रयोग करता है (सेलिंकर 1972)।

अन्य भाषा में स्वभाषा भाषी दक्षता के स्तर तक न पहुँचने का एक कारण वयस्क अध्येता में भाषा को प्रत्यक्ष रूप से सीखने की कुशलता का ह्रास भी माना जाता है। यद्यपि उसमें बाल अध्येता की विशिष्टताएँ समान संयुक्तियों के प्रयोग की योग्यता वर्तमान होती है (क्रेशन 1973)। इस स्थिति में वयस्कों के लिए अन्य भाषा शिक्षण की विशिष्ट व्यवस्था अनिवार्य बन जाती है।

अन्य भाषा अधिगम के संदर्भ में अनेक ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं जहाँ, वयस्क अध्येता औपचारिक शिक्षण के बिना भी अन्य भाषा में स्वभाषाभाषी के समान दक्षता प्राप्त करने में सक्षम रहे हैं। अतः यदि वयस्क अध्येता अन्य भाषा में विविध भाषायी पक्षों को सीखने में स्वयं समर्थ है तो यह मानना आवश्यक हो जाता है कि उनमें स्वभाषीवत दक्षता प्राप्त करने की योग्यता भी वर्तमान है। औपचारिक शिक्षण के द्वारा इस योग्यता का सही दिशा निर्देशन एवं समुचित विकास भाषा अधिगम में सहायक होगा।

यह प्राक्कल्पना, कि वयस्क अध्येता अन्य भाषा के अधिगम में बाल अध्येताओं से पिछड़े होते हैं, उनमें सीखने की योग्यता कम होती है, भ्रामक है। इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि वयस्क अध्येता संज्ञानात्मक परिपक्वन के फलस्वरूप भाषा की जटिल एवं अमूर्त प्रकृति को समझने एवं उनका प्रयोग करने में अधिक समर्थ होता है।

उपर्युक्त परिपेक्ष्य में बालक तथा वयस्क अध्येता के अन्य भाषा-अधिगमगत अंतर के विवेचन का एक ही आधार शेष रहता है—वह है भावात्मक एवं संवेगात्मक पक्ष। कहा जा चुका है कि बालक भाषा अधिगम में समाजीकरण के उद्देश्य से उत्प्रेरित होता है। भाषा अधिगम इस लक्ष्य की पूर्ति की स्वाभाविक परिणति है। वयस्क अध्येता सामान्यतः इस लक्ष्य से उत्प्रेरित नहीं होता। अध्येय भाषा तथा भाषायी संस्कृति के प्रति सामान्यतः उसका सकारात्मक दृष्टिकोण भी विकसित नहीं होता अतः अन्य भाषा अधिगम में सफलता का सीमित होना स्वाभाविक है। विविध अध्ययनों के अनुसार स्वभाषायी दक्षता के विकास में सकारात्मक भावात्मक घटक न केवल आवश्यक हैं बल्कि वे अभिवृत्ति तथा बुद्धि से निरपेक्ष स्वतंत्र रूप से क्रियाशील रहते हैं (गार्डनर और लैम्बर्ट 1972; गियोरा 1971)। बालक के भाषायी विकास में बुद्धि तथा अभिवृत्ति का सामान्यतः उल्लेख नहीं मिलता अतः वयस्कों के भाषा अधिगम प्रक्रिया में भी इनकी विशिष्टता को स्वीकार करने का कोई औचित्य नहीं है। वयस्कों द्वारा बहुभाषिकता की कुशलता का विकास वस्तुतः उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

बालक तथा वयस्क अध्येता एवं सफल तथा असफल वयस्क अध्येयता के भाषा अधिगमगत अंतर का संबंध मुख्यतः भावात्मक मनोवैज्ञानिक घटकों से है। इसके फलस्वरूप वयस्क अध्येता भाषा अधिगम में बालक अध्येता के समान सफलता अर्जित नहीं कर पाता। यदि इस तथ्य को स्वीकृति प्राप्त है कि भाषा अधिगम में अंतर्भूत मनोवैज्ञानिक युक्तियाँ बालक तथा वयस्क दोनों में समान होती हैं केवल अध्येता के संज्ञानात्मक परिपक्वन में मात्रागत भिन्नता होती है तो भावात्मक घटक का विशिष्ट योगदान स्वतः स्पष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति में वयस्क अध्येता भी अन्य भाषा अधिगम में स्वभाषाभाषी के समान दक्षता अर्जित कर सकता है। परंतु इसके लिए उसमें स्थायी उत्प्रेरण, अन्य भाषायी सांस्कृतिक समुदाय के साथ प्रगाढ़ संबद्धता तथा संकीर्ण भाषायी दृष्टिकोण पर विजय प्राप्त करने की योग्यता का विकास अपेक्षित है। निष्कर्ष यह है कि अन्य भाषा के अध्येता की भाषा अधिगम संबंधी उपलब्धियों का मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित दो बातों को ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक है :—

(क) बालक तथा वयस्क के भाषा अधिगम में संज्ञानात्मक समानताएँ हैं। और

(ख) अधिगम प्रक्रिया में भावात्मक घटकों का विशेष योगदान है।

इन्हीं के संदर्भ में बालक तथा वयस्क के अन्य भाषा अधिगम से संबंधित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं एवं तदनुरूप शिक्षण-योजना गठित की जा सकती है।

3
बालक का भाषायी विकास

3.0 भाषा अधिगम की प्रक्रिया में, विशेष रूप से औपचारिक अधिगम-परिवेश में, अध्येता का क्या योगदान है, उसकी क्या भूमिका है इससे संबंधित जानकारी प्राप्त करने के दो स्रोत हो सकते हैं—एक है अन्य भाषा अधिगम के क्षेत्र में किये गये अनुसंधान एवं तत्संबंधी अनुभव और दूसरा है मातृभाषा उपार्जन की प्रक्रियाओं का सूक्ष्म अवलोकन। परंतु इन दोनों ही स्रोतों से भाषा-अधिगम-प्रक्रिया का नितांत प्रामाणिक एवं अंतिम निष्कर्ष प्राप्त करना संभव नहीं है। मातृभाषा-उपार्जन को सहज एवं स्वाभाविक भाषा अधिगम परिवेश माना जाता है। कारण स्पष्ट है कि इसमें अधिगम संयुक्तियाँ बालक द्वारा ही निर्धारित होती हैं अध्यापक द्वारा अरोपित नहीं की जातीं। अतः बालक के भाषायी विकास का अध्ययन न केवल मातृभाषा उपार्जन की परिस्थितियों का परिचायक है बल्कि अन्य भाषा अधिगम के लिए संकेतार्थ भी प्रस्तुत करता है।

बालक के भाषायी विकास के अध्ययन का इतिहास अपने वर्तमान रूप में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से प्रारंभ होता है। मनोवैज्ञानिकों तथा भाषावैज्ञानिकों के सम्मिलित प्रयास से इसमें विशेष प्रगति हुई। बालक के संज्ञानात्मक विकास में भाषा के योगदान को स्वीकृति प्रदान करने का श्रेय वस्तुतः मनोविज्ञान को ही है; आगे चल कर भाषाविज्ञान की प्राक्कल्पनाएँ, तकनीक तथा नवीन उपलब्धियाँ, इस क्षेत्र से संबंधित समस्याओं के विवेचन तथा समाधान में सहायक हुई। भाषा उपार्जन के अध्ययन में मनोभाषावैज्ञानिक उपागम वस्तुतः इन दोनों की समन्वित अंतर्दृष्टि का प्रतिफलन है, अतः विशेष महत्व रखता है।

बालक के भाषायी विकास का प्रथम प्रामाणिक विवरण स्टर्नस द्वारा प्रस्तुत किया गया जिसमें उन्होंने अपने तीनों बच्चों के भाषायी विकास के निरीक्षण पर आधारित तथ्य प्रस्तुत किया (स्टर्न और स्टर्न 1907)। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इस प्रकार की कुछ सामग्री प्रकाशित रूप में सामने आई। मनोवैज्ञानिकों ने भी अपने दृष्टिकोण से बालक के भाषायी विकास के अध्ययन में रुचि प्रदर्शित की।

परंतु भाषा-अधिगम-प्रक्रिया की जटिलता को स्वीकार करते हुए भी वे भाषा-अधिगम को सामान्य अधिगम से भिन्न प्रक्रिया के रूप में मान्यता प्रदान करने में असमर्थ रहे बालकों द्वारा प्रयुक्त शब्द भंडार तथा उनके वाक्यों की औसत लंबाई के आधार पर उन्होंने भाषा और बुद्धि के सहसंबंध का पर्याप्त विवेचन किया। भाषा-विकास का अध्ययन भी मुख्यतः बौद्धिक विकास के सूचक रूप में ही किया गया। इस विकासात्मक अनुसंधान का पर्याप्त विवरण मैकार्थी द्वारा (मैकार्थी 1954) प्रस्तुत किया गया।

बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक के उत्तरार्ध में भाषा और भाषायी व्यवहार के अध्ययन की नवीन दिशाएँ प्रशस्त हुईं। वैज्ञानिक तकनीकों के माध्यम से बालक के उच्चारों एवं भाषायी प्रयोगों का विस्तृत एवं क्रमबद्ध विवरण रखने की प्रवृत्ति संपुष्ट हुई। भाषा तथा भाषा व्यवहार के अध्ययन में नवीन उपागम का समावेश मनोभाषावैज्ञानिक विचारधारा से प्रारंभ होता है। 1953 में केरोल ने भाषा के अध्ययन में मनोभाषाविज्ञान शब्द का प्रयोग किया। इस उपागम के फलस्वरूप बालकों के भाषायी विकास का क्रमबद्ध तथा विधिवत अध्ययन किया जाने लगा। यह अध्ययन मुख्यतः बालकों के वैयक्तिक अध्ययनों—प्रथम उच्चार से लेकर विद्यालय जाने की आयु तक के विवरणों—पर आधारित था। इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य ब्राउन तथा उसके सहयोगियों का है (ब्राउन और बेलुगी 1964, ब्राउन और हनलोन 1970 आदि)। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में चामस्की द्वारा प्रतिपादित नवीन मान्यताओं के फलस्वरूप बाल-भाषा के अध्ययन के क्षेत्र में भी नवीन संकल्पनाओं तथा विचारधाराओं का प्रादुर्भाव हुआ। आंतरिक तथा बहिर्संरचना की उद्भावना, सार्वभौम व्याकरण की प्राक्कल्पना तथा भाषायी क्षमता और निष्पादन की संकल्पनाएँ मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं।

बालक के भाषायी विकास का अध्ययन वस्तुतः भाषा अधिगम एवं शिक्षण के क्षेत्र में नवीन संभावनाओं का द्योतक है। अतः इसकी विस्तृत चर्चा आवश्यक है।

बालक के भाषायी विकास का अध्ययन मुख्यतः दो दृष्टिकोणों से किया जा सकता है—विषय वस्तु अथवा भाषायी घटकों की दृष्टि से और आयु की दृष्टि से। मैकी ने इसे विषयगत और कालिक विकास की संज्ञा दी है। इन्हें क्रमशः भाषा विकास के विविध पक्ष तथा स्तर कहा जा सकता है। भाषा विकास के विविध भाषायी पक्ष तथा स्तर परस्पर संबद्ध हैं। फिर भी विवेचन की सुविधा एवं स्पष्टता के लिए इनका पृथक-पृथक वर्णन करना उचित होगा।

3.1. भाषायी विकास के विविध पक्ष

बालक के भाषायी विकास का अध्ययन भाषा की विविध व्यवस्थाओं के संदर्भ में किया जा सकता है यथा—ध्वनि, शब्द, अर्थ और व्याकरणिक व्यवस्था आदि।

3.1.1. ध्वनि-विकास

बालक मातृभाषा में ध्वनियों को किस प्रकार उपार्जित करता है? यह प्रश्न आज भी विद्वानों के लिए अनुसंधान का विषय है। विविध प्रयोगों के आधार पर ध्वनि विकास संबंधी कुछ विशिष्टताएँ स्पष्ट होती हैं परंतु इन्हें अंतिम निष्कर्ष नहीं माना जा सकता। भाषायी ध्वनियों के उपार्जन की पृष्ठभूमि के रूप में यह जरूरी है कि बालक अपने परिवेश में वाक् ध्वनियों तथा अन्य प्रकार की ध्वनियों के अंतर को पहचानना सीखे। विशेष कर सतत संपर्क में आने वाले व्यक्तियों द्वारा उच्चरित वाक् ध्वनियों तथा अन्य प्रकार की ध्वनियों के अंतर को पहचानना जरूरी है (डी. विलर्स और डी. विलर्स 1978)। मानव शिशु विकास के प्रारंभिक स्तर पर वाक् ध्वनियों तथा अन्य प्रकार की ध्वनियों के अंतर को पहचानने लगता है और उनके प्रति भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करता है। "हट", वटरवर्थ तथा सिपरस्टीन के प्रयोगों से इस तथ्य की पुष्टि होती है (हट इत्यादि 1968; वटरवर्थ और सिपरस्टीन 1974)। इस पहचान के बाद ही इन ध्वनियों को सीखने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है।

बालक के ध्वनि विकास में विकास-क्रम की दृष्टि से कई स्तर निर्धारित किये जा सकते हैं। विद्वानों ने इनका विवेचन कई प्रकार से किया है, परंतु ध्वन्यात्मक विकास के चारों स्तरों से लगभग सभी सहमत हैं (मैके 1965) ये हैं—(1) रोना, (2) बबलाना (3) ध्वनि अनुरणन तथा (4) बोलना। इसका संक्षिप्त विवरण देना उचित होगा।

3.1.1.1. रोना

बालक के ध्वन्यात्मक विकास का प्रथम स्तर 'रोना' है। इसे जन्म के समय स्वतः उद्भूत मूलप्रवृत्यात्मक "रोने" से भिन्न, आवश्यकताओं तथा कष्ट की अनुभूति के प्रकटीकरण का साधन माना जा सकता है। शिशु, भूख, कष्ट, तथा असुविधा के कारण—यथा गीला होने पर रोता है। कभी-कभी यह रोना स्थिति-परिवर्तन की इच्छा को भी द्योतित करता है—यथा माँ का ध्यान आकर्षित करने अथवा गोद में उठा लिए जाने की इच्छा आदि। इन सभी स्थितियों में रोना शिशु की आवश्यकताओं, भावों, तथा विचारों का द्योतक है। भाषा विकास के क्रम में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। रोने की प्रक्रिया में बालक के वाक् अवयव क्रियाशील होते हैं,

उनका समुचित अभ्यास हो जाता है। वाक् अवयवों का स्वतः अभ्यास ध्वनियों के उच्चारण में सहायक है। इसके साथ ही बालक में वाक् अवयवों के नियंत्रण की क्षमता भी विकसित होती है।

3.1.1.2. **बबलाना**

ध्वनियों के उपार्जन में बबलाना एक महत्वपूर्ण स्तर है। अतः चार से नौ महीने का समय भाषायी विकास की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है क्योंकि सामान्यत इसी समय बालक बबलाना प्रारंभ करता है। यह अनिवार्य एवं अनियंत्रित क्रिया है। इस स्थिति में बालक के मुख से कुछ ध्वनियाँ स्वतः उच्चरित होने लगती हैं। बबलाने को ध्वनियों के साथ क्रीड़ा की स्थिति कहा गया है अतः बालक के लिए यह एक सुखद अनुभूति है। बबलाने से युक्त इन ध्वनियों की बारंबारता में क्रमशः वृद्धि होती है। नौ महीने की आयु में बबलाहट अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाता है। ये ध्वनियाँ वाक् ध्वनियों के समकक्ष प्रतीत होती हैं और बहुधा वाक्य के समान अनुक्रम में आरोही तथा अवरोही अनुतान के साथ उच्चरित होती हैं, परंतु ये बोधगम्य नहीं होतीं।

भाषायी विकास में "बबलाने" का महत्वपूर्ण योगदान है। इससे बालक के वाक् अवयव क्रियाशील होते हैं। प्रकृति दत्त वाक् क्रियाओं के अभ्यास—जिनका आगे चलकर सम्प्रेषण में उपयोग हो सकता है—तथा वाक् अवयव की क्रियाओं का मानसिक क्रियाओं के साथ सह संबंध स्थापन आदि विविध कार्य बबलाने की प्रक्रिया द्वारा ही संपन्न होते हैं। परंतु इन स्वतः उच्चरित ध्वनियों का भाषायी व्यवहार तथा भाषायी प्रयोगों के साथ कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता। "बबलाने" में बालक वयस्कों द्वारा उच्चरित ध्वनियों का अनुकरण नहीं करता। इतना ही नहीं, यदि बड़ों द्वारा अनुकरण कराने का प्रयास भी किया जाता है तो यह प्रयास असफल रहता है।

"बबलाने" को ध्वन्यात्मक विविधता का काल माना जाता है। इस समय शिशु के मुख से विविध ध्वनियाँ स्वतः उच्चरित होती हैं, जिनका संबंध भाषा विशेष की ध्वनियों से नहीं होता। भाषायी विकास के क्रम में उसे मातृभाषा की ध्वनियों को सप्रयास सीखना पड़ता है। कहा जा सकता है कि "बबलाना" बालक के निजी संसार से संबद्ध वाक् अवयवों की क्रिया मात्र है। भाषा के प्रयोक्ता अथवा श्रोता की उपस्थिति से निरपेक्ष बबलाने की प्रक्रिया सतत रूप से गतिशील एवं सक्रिय रहती है।

कुछ विद्वानों के अनुसार बबलाना जैविकीय परिपक्वन का परिणाम है जो बहरे शिशुओं में भी वर्तमान रहता है [लेनीबर्ग, रिबेलस्की और निकोलास 1964]। परंतु इसकी निरंतरता और बारंबारता मौखिक तथा सामाजिक उद्दीपन

पर निर्भर रहती है। इस प्रकार बालक का प्रारंभिक भाषायी विकास दो घटकों के संयोजन पर आधारित है [क] परिपक्वन का उत्तरोत्तर क्रम—जो वाक् अवयवों के नियंत्रण में सहायक है तथा [ख] बालक की वाक् क्रियाओं के प्रति बड़ों की प्रतिक्रिया बबलाने में उच्चरित ध्वनियों को प्रायः स्वर और व्यंजन समझने का भ्रम होता है। ये स्वतः उच्चरित ध्वनियाँ वस्तुतः न तो स्वर हैं और न व्यंजन। इतना ही नहीं भाषा विशेष की ध्वनियों के वयस्क प्रारूपों को सीखने से भी इनका कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। भाषा व्यवहार के क्रम में बालक इन ध्वनियों को पुनः उच्चरित करना सीखता है।

3. 1. 1. 3. **ध्वनि अनुरणन**

ध्वनियों के उपार्जन में ध्वनि अनुरणन का स्तर अनेक दृष्टियों से महत्व रखता है। यह कहा जा चुका है कि बबलाना अनुकरण का परिणाम नहीं है, परंतु बबलाने के साथ ही बालक अनुकरण की प्रवृत्ति अर्जित करता है। यद्यपि भाषा अधिगम अनुकरण मात्र नहीं है परंतु इसके बिना भाषा सीखना असंभव है। भाषायी विकास में शिशु के मुख से कुछ ध्वनियाँ स्वतः उच्चरित होती हैं। ये ध्वनियाँ उसके कानों तक पहुँच कर उद्दीपन का काम करती हैं। बालक इस उद्दीपन अर्थात् अपनी ही उच्चरित एवं सुनी गई ध्वनि के प्रति प्रतिक्रिया करता है और ध्वनिविशेष को अनायास बार-बार दोहराता है। इस क्रम में वह एक प्रकार से ध्वनि विशेष के घेरे में आबद्ध हो जाता है। फलस्वरूप एक ही ध्वनि की आवृत्ति बार-बार होती है। अपनी ही स्वतः उच्चरित ध्वनि को वह सुनता है, पुनः बोलता है, सुनता है, बोलता है। इस क्रम में उद्दीपन और प्रतिक्रिया के बीच का अंतराल कम होता जाता है और ये आवृत्यात्मक ध्वनियाँ शब्दों, शब्द रूपों का भ्रम उत्पन्न करती हैं यथा—

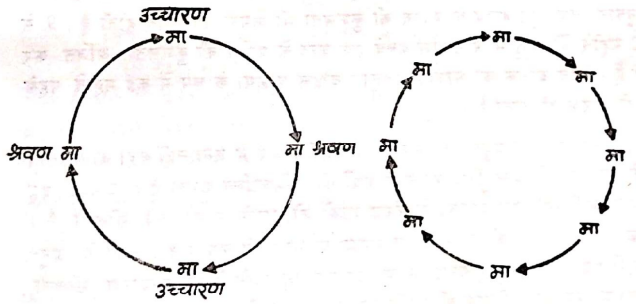

आरेख-3

परंतु ध्वनि अनुरणन अथवा गूँज के स्तर पर ये केवल ध्वनि अनुरणन हैं वास्तविक शब्द नहीं है। ध्वनि अनुरणन की तीव्र गति के कारण वयस्क श्रोता को

शब्द सुनने का भ्रम होता है, यथा पा ▷ पा > पापा या मा ▷ मा ≫ मामा आदि। स्पष्ट है कि ध्वनि विकास के इस स्तर पर बालक बाह्य जगत से निरपेक्ष अपनी ही ध्वनियों से खेलता रहता है।

इसी भाषायी क्रीड़ा में वह आनंद का अनुभव करता है। इस प्रक्रिया में कुछ समय के पश्चात यदि बालक के कान में दूसरों की ध्वनियाँ पहुँचती हैं तो वह उनका भी अनुकरण करता है। इस स्तर पर वयस्कों द्वारा उच्चरित ध्वनियाँ केवल उद्दीपन का ही काम करती हैं, ध्वनि अनुकरण के आदर्श नमूने के रूप में ग्रहीत नहीं होतीं (डेनिस फ्राई 1977)।

इस काल में विकसित आत्म अनुकरणात्मक प्रवृत्ति आगे चल कर बालक के भाषायी विकास में प्रमुख रूप से सहायक होती है। ध्वनि अनुकरण के क्रम में उत्पन्न ध्वनियाँ क्रमशः व्यक्तियों तथा वस्तुओं से संबद्ध हो जाती हैं और कालांतर में सार्थक शब्दों के रूप में स्वीकार की जाती हैं। परिवार में माता तथा अन्य आत्मीय जनों का स्नेह पूर्ण व्यवहार, शब्द विशेष की उनके द्वारा आवृत्ति एवं पुनः प्रयोग पुनर्निवेशन का कार्य करता है। बालक ध्वनियों के अनुक्रम का प्रत्यक्षीकरण करता है और शब्द विशेष का सचेतन रूप से प्रयोग करने लगता है। वस्तुतः यहीं से भाषा के सार्थक प्रयोगों का क्रम आरंभ होता है।

3.1.1.4. बोलना

बालक द्वारा उच्चरित प्रथम शब्द भाषिक सम्प्रेषण का प्रथम सूचक है। बालक का उच्चार भाषा विशेष की विशिष्टताओं से युक्त होकर संबद्ध भाषा के ध्वनि अनुक्रमों के रूप में सचेतन रूप से प्रयुक्त होने लगता है। उसके विचारों तथा भावों की अभिव्यक्ति का साधन बनता है। भाषा विशेष के ध्वनिगत अभिलक्षणों—अनुतान, लय, सुर आदि के प्रयोग की कुशलता भी क्रमशः विकसित होती है। 9 से 12 महीने की आयु में अधिकांश बच्चे एक शब्द के प्रयोग की कुशलता अर्जित कर लेते हैं। परंतु बालक का भाषायी विकास बोधन प्रक्रिया के रूप में कई महीने पहले से ही प्रारंभ हो जाता है।

बालक द्वारा प्रयुक्त इन शब्दों को कोशीय अर्थ में शब्द नहीं कहा जा सकता। इनके द्वारा वह विभिन्न क्रियाओं तथा अर्थों की अभिव्यक्ति करता है। क्रमशः वह विभिन्न व्यक्तियों तथा वस्तुओं से संबद्ध शब्दों को, उनके नामों को सीखता है। इस क्रम में वह भाषा की ध्वनियों का क्रमशः प्रयोग करने लगता है। बड़ों के अनुकरण विशेषकर माँ के अनुकरण, के आधार पर वह ध्वनियों का उच्चारण सीखता है। क्रमशः वह भाषा विशेष की ध्वनि व्यवस्था से परिचित होता जाता है। उल्लेखनीय है कि वाक् ध्वनियों को उच्चरित करने के पूर्व ही बालक वाक् ध्वनियों के प्रति प्रतिक्रिया करना सीख चुका होता है। परंतु भाषा का व्यवहार करते समय

बालक के वाक् प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में निश्चित परिवर्तन होता है। बालक के वाक् प्रत्यक्षीकरण तथा भाषायी व्यवहार की प्रक्रिया में साथ-साथ होने वाले परिवर्तन इस बात के द्योतक हैं कि प्रथम वर्ष के अन्त तक वह भाषा संबंधी कुछ जानकारी प्राप्त कर लेता है और वाक् क्रिया के प्रति उसकी कुछ निश्चित धारणाएँ बन जाती हैं। इस क्रम में वस्तुओं पर आधारित संकल्पनाएँ—जिन्हें विद्वानों ने "पदार्थ स्थायित्व" (Object Permanance) की संज्ञा दी है (बावर, 1974, फ्लावेल, 1977) विकसित होती हैं। इसके फलस्वरूप बालक इस तथ्य से परिचित हो जाता है कि भाषायी ध्वनियाँ पदार्थों तथा परिवेश से व्यवस्थित रूप से संबद्ध हैं। "बबलाने" के स्तर की समाप्ति के साथ-साथ क्रमशः, उच्चारों की संख्या और विविधता में भी वृद्धि होती है। ये उच्चार सामान्यतः संक्षिप्त होते हैं तथा बाह्य स्तर पर इन्हें वयस्कों द्वारा प्रयुक्त शब्दों से मिलता-जुलता परंतु संक्षिप्त रूप माना जा सकता है।

बालक द्वारा उच्चरित स्पष्ट शब्द रूप जो वयस्क प्रारूपों पर आधारित प्रतीत होते हैं सामान्यतः 10 से 13 महीनों की आयु में उच्चरित होते हैं। इनमें अधिकतर स्वर व्यंजन अथवा उनका पुनरावृत्यात्मक क्रम (स्वर व्यंजन-स्वर व्यंजना) दृष्टिगत होता है। बालक द्वारा उच्चरित प्रारंभिक शब्दों पर आधारित ध्वन्यात्मक विकास के सिद्धांत के प्रतिपादक जेकाब्सन (1968) के अनुसार ध्वन्यात्मक विकास का क्रम सुव्यवस्थित और शाश्वत है। सभी बच्चे पहले स्वरों और व्यंजनों में अन्तर करना सीखते हैं तत्पश्चात् व्यंजनों के पारस्परिक अंतर से परिचित होते हैं।

बालक द्वारा प्रयुक्त प्रारंभिक शब्दों के ध्वन्यात्मक पक्ष से संबंद्ध कुछ विशिष्टताएँ मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। सबसे पहली विशिष्टता है चयनात्मक निष्पादन की प्रवृत्ति। बच्चे प्रारंभ में कुछ विशिष्ट ध्वनियों से युक्त शब्दों का ही प्रयोग करते हैं तथा वे जानबूझकर कुछ विशिष्ट ध्वनियों से युक्त शब्दों के प्रयोग से बचना चाहते हैं। इनके बदले वे उन ध्वनियों से युक्त शब्दों का प्रयोग करना अधिक पसंद करते हैं जिन पर उनका पर्याप्त अधिकार हो चुका है (मेन 1976, फर्गसन 1977)। उदाहरण स्वरूप बालक द्वओष्ठ्य ध्वनियों से युक्त शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं, यथा—बाबा, मामा आदि। वे वयस्कों द्वारा प्रयुक्त अनेक शब्दों को समझने की योग्यता रखते हैं परंतु उनका प्रयोग करने का प्रयत्न नहीं करते। चयनात्मक निष्पादन का दूसरा आधार शब्दों का आकार है। सामान्यतः बालक छोटे शब्दों का ही प्रयोग करता है। अधिकांश बच्चे "व्यंजन-स्वर-व्यंजन-स्वर" (यथा बाबा) अनुक्रम से युक्त शब्दों का प्रयोग करते हैं। परंतु कुछ बच्चे प्रारंभ में "व्यंजन स्वर" अनुक्रम से युक्त शब्दों (बा) का ही प्रयोग कर पाते हैं। स्पष्ट है कि बालक अपने प्रारंभिक प्रयोगों में विशिष्ट शब्द आकार को ही जो बालक को सरल प्रतीत होते हैं अपनाता है। इसमें बहुधा वह वयस्क प्रारूपों से निर्देशित नहीं होता।

ध्वन्यात्मक पक्ष से संबद्ध दूसरी विशिष्टता है भाषा विशेष की उच्चारण व्यवस्था से संबद्ध इकाइयों (स्वनिमों) को सीखने का क्रम। शब्द प्रयोग की कुशलता अर्जित करने के साथ ही साथ बालक भाषा विशेष की सार्थक ध्वनियों पर भी अधिकार कर लेता है। ध्वन्यात्मक विकास का यह क्रम सुव्यवस्थित और नियमित होता है। परंतु साथ ही यह क्रम जटिल और समय सापेक्ष भी है। बहुधा सात वर्ष की आयु तक भी यह विकास-क्रम पूरा नहीं हो पाता। इसकी जटिलता इस बात से ही स्पष्ट है कि विकास के विविध स्तरों की जानकारी होने पर भी ध्वनि-विकास क्रम को पूरी तरह समझा नहीं जा सकता। फिर भी कुछ बातें निश्चित रूप से स्वीकृत हैं यथा—

(क) बालक द्वारा भाषा की वास्तविक ध्वनियों को सीखने के क्रम का सामान्यीकृत विवेचन नहीं किया जा सकता एवं सामान्य निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते।

(ख) उच्चरित ध्वनियों के आधार पर सामान्य प्रवृत्तियों का निर्धारण नहीं किया जा सकता। स्पष्ट है कि ध्वन्यात्मक विकास क्रम में समग्र रूप से समानता होने पर भी विकास-गति में वैयक्तिक भिन्नता होती है।

ध्वन्यात्मक पक्ष की तीसरी विशेषता है वयस्कों द्वारा प्रयुक्त नमूनों एवं प्रारूपों तथा बालकों द्वारा व्यवहृत भाषायी प्रयोगों का अंतर। कहा जा चुका है कि बालक ध्वनि अनुकरण के आधार पर सीखता है। इस सिद्धांत के अनुसार बड़ों द्वारा उच्चरित ध्वनियों तथा ध्वनि संयोगों का बालक द्वारा उसी रूप में अनुकरण किया जाना चाहिए। परंतु वस्तुतः ऐसा नहीं होता। बच्चे या तो कुछ ध्वनियों के स्थान पर दूसरी ध्वनियों का प्रयोग करते हैं अथवा उनका स्वतः निर्मित सरलीकृत रूप प्रयुक्त करते हैं। इस प्रक्रिया का विवेचन ध्वन्यात्मक नियमों एवं बालक के ध्वनि विकास के विविध स्तरों की संबद्धता के संदर्भ में किया जाता है। वस्तुतः भाषाओं के विकास क्रम में जो भी ध्वनि परिवर्तन दिखाई देते हैं, उनके प्रमुख कारणों में से एक बच्चों द्वारा भाषा उपार्जन के समय किया जाने वाला इस प्रकार का परिवर्तन भी है। ध्वन्यात्मक नियमों के द्वारा बालक के वास्तविक प्रयोग तथा उद्दिष्ट प्रयोग की परस्पर संबद्धता को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया है। कुछ भाषावैज्ञानिक (स्मिथ 1973) यह जानते हैं कि बालक बड़ों द्वारा प्रयुक्त शब्दों एवं उद्दिष्ट प्रयोगों को सही-सही द्योतित करता है अर्थात् उसमें सही रूप से सुनने की क्षमता तो है परंतु उनके प्रयोग की कुशलता विकसित नहीं होती। ध्वनियों के विशिष्ट अभिलक्षणों के प्रत्यक्षीकरण की कुशलता के विकास से संबंधित अध्ययनों (गानरिका 1973, एडवर्ड्स 1974) से यह संकेत मिलता है कि बालक का प्रत्यक्षीकरण प्रायः सही नहीं होता। संभवतः इनका कारण यह है कि वह प्रत्यक्षीकरण के साथ ही साथ उनके प्रयोग की कुशलता भी अर्जित करता है। परंतु इस बात के भी पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि बालक का वाक् प्रत्यक्षीकरण

उन्हीं रूपों के प्रयोग-कुशलता की अपेक्षा अग्रगामी और समृद्ध होता है (एडवर्ड्स 1974)। कहा जा सकता है कि बालक के भाषायी प्रयोग का प्रमुख निर्धारक वस्तुतः उसका लक्ष्य है।

बालक के ध्वन्यात्मक विकास की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि वह शब्दों के उच्चारण के साथ ही साथ भाषा के खंडेतर स्वनिमों के प्रयोग की कुशलता भी सहज रूप से अर्जित कर लेता है। बबलाना तथा ध्वनि अनुरणन में भी अनुतान का पूर्वाभास मिलता है, फलस्वरूप इन प्रयोगों को भाषायी प्रयोग समझने का भ्रम होता है। परंतु भाषायी विकास क्रम में अनुतान साँचों का विकास निश्चित एवं क्रमबद्ध रूप से होता है। ध्वनि विकास के समान अनुतान साँचों का विकास भी प्रारंभिक स्थिति में बड़ों के अनुकरण पर आधारित होता है। भाषा के वयस्क प्रयोक्ता जब बच्चों से बातचीत करते हैं तो इस वार्तालाप क्रम में बालक उनके अनुतान का अनुकरण करता है। बालक में अनुतान साँचों के प्रत्यक्षीकरण की योग्यता सामान्यतः आठ महीने की आयु में विकसित हो जाती है और वह आरोही तथा अवरोही अनुतान का अंतर पहचानने लगता है (मोर्स 1974)। प्रश्नसूचक अनुतान तथा सामान्य कथन के अनुतान में अंतर पहचानना भी वह इसी आयु में सीखता है। निष्कर्ष यह है कि बालक अनुतान साँचों को अनुकरण के आधार पर सीखता है और इनके समुचित प्रयोग की कुशलता अर्जित कर लेता है। ध्वनियों के समान यहाँ भी वयस्क प्रारूपों तथा बालक के प्रयोगों में अंतर होता है। परंतु धीरे-धीरे वयस्क प्रारूपों के समकक्ष प्रयोग की कुशलता विकसित होती जाती है।

3.1.2. शब्द-विकास

बालक के भाषायी विकास में शब्द प्रयोग की कुशलता का विशेष महत्व है। वस्तुतः शब्द प्रयोग के माध्यम से ही उसकी भाषायी कुशलता परिलक्षित होती है। बालक द्वारा उच्चरित एकाक्षरी शब्द यथा माँ, पा, दा भी सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से शब्द ही हैं जो व्यक्ति अथवा वस्तु से संबद्ध हो कर निश्चित रूप ग्रहण करते हैं। भाषायी विकास के क्रम में बालक शब्दों तथा शब्द रूपों पर क्रमशः अधिकार प्राप्त करता है। ये विविध शब्द-रूप प्रारंभ में अनुकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखे जाते हैं। बड़ों द्वारा उच्चरित वाक्य अथवा पदबंधीय प्रयोगों के आधार पर बालक इनका प्रयोग करना सीखता है परंतु अनुकरण-प्रक्रिया के द्वारा भाषा के सभी रूपों को नहीं सीखा जा सकता। अतः आगे चल कर बालक सादृश्यता के आधार पर नये रूपों की रचना करता है। बहुधा ये प्रयोग बालक की भाषायी त्रुटियों के कारण बन जाते हैं। परंतु भाषा में सादृश्यता मूलक नवीन रूप रचना की प्रवृत्ति को बालक की भाषायी सृजनात्मकता का द्योतक माना जाता है, उसकी अक्षमताओं का नहीं। उसके ये प्रारंभिक प्रयोग माता-पिता तथा परिवार के अन्य

सदस्यों द्वारा संशोधित हो कर कालांतर में वास्तविक भाषायी प्रयोग बनते हैं। इस क्रम में बालक इन शब्द रूपों की सीमाओं से परिचित होता है। वह भाषा के अनियमित रूपों को भी प्रयत्न पूर्वक सीखता है। क्रमशः आयुगत विकास के साथ वह विविध रूप रचनाओं से परिचित होता है और उन पर पर्याप्त अधिकार प्राप्त कर लेता है।

शब्द भंडार के विकास-क्रम की दृष्टि से यदि बालक के भाषायी विकास का विवेचन किया जाय तो कुछ प्रमुख तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है यथा—

प्रथम शब्द सामान्यतः प्रथम वर्ष में ही बालक द्वारा उच्चरित होते हैं। वह एक समय में एक ही शब्द का प्रयोग करता है। ये शब्द सामान्यतः एकाक्षरी होते हैं। एकाक्षरी शब्द पुनर्निवेशन की प्रक्रिया द्वारा न केवल अर्थ ग्रहण करते हैं बल्कि वयस्क प्रारूप की समकक्षता भी प्राप्त करते हैं। बालक निकटस्थ व्यक्तियों तथा पदार्थों के नामों से क्रमशः परिचित होता है। वस्तुतः मातृभाषा उपार्जन का एक महत्वपूर्ण एवं सोद्देश्य पक्ष बच्चों को पदार्थों तथा वस्तुओं के नामों से परिचित कराना है। वस्तुओं तथा पदार्थों के अनेक नामों में से बच्चों को कौन से नाम सिखाये जाते हैं, ये विकल्प किस प्रकार निर्धारित होते हैं तथा बालक के संज्ञानात्मक विकास में इनका क्या योगदान है आदि—अनेक प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। वयस्क प्रयोक्ता बालक के साथ किये गए भाषायी प्रयोगों में सरलता और सुबोधता का सिद्धांत अपनाता है। बालक द्वारा वस्तुओं के नामों को सीखने के क्रम में सायान्यतः कुछ नियमों का संकेत मिलता है। ब्राउन ने वस्तुओं के नामकरण की प्रक्रिया के अध्ययन के आधार पर दो नियमों की ओर संकेत किया है—संक्षिप्तता का नियम तथा बारंबारता का नियम। प्रस्तुत संदर्भ में इनकी चर्चा आवश्यक है।

3.1.2.1. संक्षिप्तता का नियम

संक्षिप्तता का नियम जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, भाषायी रूपों की संक्षिप्तता से संबंधित है। यह धारणा दृढ़ और सार्वभौम है कि बच्चों को लंबे नामों को सीखने तथा प्रयोग करने में कठिनाई होती है अस्तु उन्हें छोटे ही नाम सिखाये जायें। अतः पदबंध की अपेक्षा शब्द, और शब्दों में भी एकाक्षरी शब्द अनेकाक्षरी शब्दों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त समझे जाते हैं। परंतु अक्सर छोटे नामों को न सिखा कर प्रचलित लंबे नाम ही सिखाये जाते हैं अथवा यह कहा जा सकता है कि बालक विशिष्ट संदर्भों में छोटे शब्दों का प्रयोग न कर प्रचलित लंबे शब्दों का प्रयोग करता है। ऐसा क्यों होता है? इसका उत्तर बारंबारता के नियम के आधार पर दिया जा सकता है।

3.1.2.2. बारंबारता का नियम

बारंबारता का नियम शब्दों एवं भाषायी प्रयोगों की आवृत्यात्मक बारंबारता की ओर संकेत करता है। बच्चे सामान्यतः उन शब्दों अथवा नामों को जल्दी सीख

लेते हैं जिनकी आवृत्ति निकटवर्ती परिवेश में अधिक होती है। जिन शब्दों को वे बार-बार सुनते हैं वे शब्द उनके स्मृति-कोश में सुदृढ़ हो जाते हैं। लंबे प्रयोग भी परिवेश में अधिक प्रचलित होने के कारण प्रयोग की दृष्टि से सरल एवं संक्षिप्त प्रतीत होते हैं। ऐसी स्थिति में शब्दों की लंबाई-स्वनिमों अथवा अक्षरों में प्रयोग की बारंबारता के साथ आंतरिक रूप से संबद्ध होती है। परिणामतः किसी पदार्थ अथवा प्राणी के लिए अधिक प्रचलित नाम ही प्रयोग की दृष्टि से लंबे होते हुए भी संक्षिप्त प्रतीत होते हैं।

स्पष्ट है कि बालक द्वारा नामों को सीखने का क्रम बारंबारता एवं संक्षिप्तता के सिद्धांत पर आधारित है। परंतु कभी-कभी बारंबारता और संक्षिप्तता के सिद्धांत के विपरीत बच्चों को बड़े नाम सिखाये जाते हैं यथा "फल" शब्द छोटा भी है और प्रचलित भी है परंतु अन्य फलों के नाम जैसे केला, अमरूद आदि सिखाये जाते हैं। इसका कारण यह माना जा सकता है कि भाषायी समुदाय में वह वस्तु उसी नाम से अभिहित की जाती है। अतः इन विशिष्ट तथा लंबे नामों को सिखाने का आधार भाषायी परंपरा तथा उपयोगिता है। बारंबारता के सिद्धांत को इसमें स्वतः अंतर्भूत मान लिया जाता है।

बालक के प्रारंभिक शब्द भंडार के विकास संबंधी अध्ययनों से यह पता चलता है कि नवीन शब्द प्रारंभ में अत्यंत मंद गति से सीखे जाते हैं। एक से दो वर्ष की आयु में शब्द भंडार का विकास मंद गति से होता है। अधिकांशतः शब्द संज्ञा होते हैं जिनका प्रयोग वाक्य के रूप में किया जाता है। ये प्रारंभिक संज्ञा शब्द सामान्यतः उन वस्तुओं से संबद्ध होते हैं जिनके प्रति बालक किसी प्रकार की प्रतिक्रिया करता है। इन वस्तुओं को दो वर्गों में रखा जा सकता है गतिशील वस्तुएँ तथा स्थिर वस्तुएँ।

बालक द्वारा उच्चरित प्रारंभिक शब्दों में क्रिया अथवा व्यापार को द्योतित करने वाले भी कुछ शब्द होते हैं। ये या तो कार्य व्यापार से संबद्ध होते हैं अथवा किसी प्रकार की इच्छा एवं आकांक्षा को द्योतित करते हैं। परंतु यह आवश्यक नहीं कि ये क्रिया शब्द ही हों। बालक किसी भी शब्द के द्वारा विशिष्ट व्यापारों तथा आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति करता है यथा "मम" शब्द न केवल पानी को द्योतित करता है बल्कि "पानी चाहिए" "पानी है" का भाव भी व्यक्त करता है।

बालक के प्रयोगों में कुछ ऐसे शब्द मिलते हैं जो वस्तुओं के गुण, दशा एवं स्थिति की ओर संकेत करते हैं यथा बड़ा, छोटा, भीतर, बाहर आदि। बालक निकटवर्ती परिवेश से संबंधित कुछ सामाजिक अभिव्यक्तियों का भी प्रयोग करता है यथा हाँ, नहीं, जी, आदि। व्याकरणिक शब्द जैसे उपसर्ग, प्रत्यय, सहायक क्रिया आदि का सर्वथा अभाव होता है। शब्द भंडार के विकास-क्रम के साथ विकास की

गति में भी तीव्रता आती है। सामान्यतः दो वर्ष की आयु में विकास की गति तीव्र हो जाती है। तीसरे वर्ष में संज्ञा के अतिरिक्त अन्य व्याकरणिक कोटियों से संबद्ध शब्दों के प्रयोग की कुशलता विकसित होती है। क्रमशः वह भाषायी संरचना पर भी अधिकार पा लेता है। बालक के ये प्रयोग प्रारंभिक स्थिति में उसके निकटवर्ती परिवेश से संबद्ध होते हैं। अनुभव क्षेत्र के विस्तार एवं वाचन की कुशलता के विकास के साथ शब्द भंडार भी तीव्र गति से विकसित होता है। इस प्रकार मातृभाषा में शब्द भंडार के विकास का क्रम सतत रूप से गतिशील रहता है।

शब्दों को सीखने का अनुक्रम वयस्कों द्वारा प्रयुक्त अनुक्रम पर आधारित होता है, बालकों द्वारा प्रयुक्त अनुक्रम पर नहीं। शब्द भंडार के उत्तराधर क्रम में सामान्यतः मूर्त पदार्थों के द्योतक शब्द पहले सीखे जाते हैं, अमूर्त भावों के द्योतक शब्द जैसे कोमलता आदि बाद में सीखे जाते हैं।

विभिन्न आयु में सामान्य बालक के शब्द भंडार में सक्रिय तथा निष्क्रिय शब्दों की पर्याप्त संख्या होती है। सामान्य धारणा के विपरीत बालकों का शब्द भंडार समुचित रूप से विकसित एवं समृद्ध होता है। परंतु बालक जिन शब्दों का प्रयोग करता है उनका सुनिश्चित संदर्भगत अर्थ नहीं होता। वयस्क प्रयोक्ताओं में यह सुनिश्चितता दृष्टिगत होती है। बालकों के शब्द प्रयोगों में अर्थगत भिन्नता अधिक पाई जाती है। अनुभव क्षेत्र के विस्तार एवं भाषायी कुशलता के विकास के साथ-साथ वह क्रमशः वयस्क प्रारूपों के अनुरूप शब्दों का प्रयोग करने लगता है। परंतु शब्दों के प्रयोग में समुचित दक्षता अर्जित करने में पर्याप्त समय लगता है। कहा जा सकता है कि शब्द भंडार का विकास एक जटिल प्रक्रिया है।

3.1.3 अर्थ-विकास

भाषा को मानवीय सम्प्रेषण का, एकमात्र समर्थ साधन माना गया है। शिशु के रुदन की प्रक्रिया को भाषायी विकास का प्रथम स्तर मानने के मूल में सम्प्रेषण तथा अर्थाभिव्यक्ति की संकल्पना ही वर्तमान रहती है। अर्थ के विकास की दृष्टि से "रोने" की प्रक्रिया में तीन स्तर निर्धारित किये जा सकते हैं—

(1) कष्ट की अभिव्यक्ति के लिए गतिवाही स्नायु तंतुओं द्वारा की गई प्रतिक्रिया यथा शारीरिक उद्दीपन (भूख, पीड़ा आदि) की प्रतिक्रिया के रूप में रुदन।

(2) पर्यावरण में परिवर्तन लाने के साधन के रूप में रुदन यथा पेशाब से गीला होने पर रोना आदि।

(3) अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में रुदन जैसे माँ द्वारा गोद में उठा लेने की इच्छा आदि।

शिशु रोने के माध्यम से विविध भावों की अभिव्यक्ति करता है। आवश्यकता पूरी हो जाने पर वह शांत हो जाता है। माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य बालक की इन रुदन-क्रियाओं को निश्चित अर्थ प्रदान करते हैं। इस प्रकार बालक का रुदन पुनर्बलित हो कर अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनता है।

भाषायी विकास के क्रम में बालक के मुँह से कुछ ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं। वयस्क श्रोता इन ध्वनियों को व्यक्तियों तथा वस्तुओं से संबद्ध कर देता है और वे सार्थक शब्दों के रूप में विकसित होती हैं। इन शब्द-प्रयोगों के माध्यम से बालक की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं और क्रमशः वह शब्द संयोगों, पदबंधों तथा वाक्यों के माध्यम से विविध अर्थों की अभिव्यक्ति करने लगता है।

बालक शब्दों का अर्थ परिवेश के संदर्भ में साहचर्य तथा पुनर्बलन की प्रक्रिया द्वारा ग्रहण करता है। परिवेश में प्राणियों तथा पदार्थों के साथ प्रयुक्त शब्दों का साहचर्य तथा वयस्कों द्वारा उनकी स्वीकृति, जो पुनर्बलन का द्योतक है, अर्थ-विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। बालक एक समय में शब्द का एक अर्थ सीखता है। यह अर्थ विशिष्ट होता है सामान्य नहीं, परंतु इससे उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है यथा दा—दूध, पा—पानी आदि। कुछ समय के पश्चात् वह शब्दों के सामान्य तथा प्रचलित अर्थ से परिचित होता है। भाषायी विकास के क्रम में बालक सीमित शब्दों से अनेक अर्थों की अभिव्यक्ति करता है। कहा जा सकता है कि शब्दों की अपेक्षा बालक पर अर्थ की विविधता एवं बहुलता का भार अधिक होता है।

कहा जा चुका है कि भाषा विकास की प्रारंभिक स्थिति में बालक द्वारा उच्चरित एक शब्द पूर्ण वाक्य के रूप में अर्थ को द्योतित करता है। इस एक शब्द के द्वारा वह अनेक अर्थों की अभिव्यक्ति करता है यथा "माँ" शब्द द्वारा—माँ मुझे गोद में लो, मुझे देखो, मेरे पास आओ आदि। वह इस तथ्य को भली-भाँति समझ जाता है कि इन शब्दों के द्वारा उसकी आवश्यकताओं, विचारों तथा भावों की अभिव्यक्ति होती है। वह वस्तुओं, घटनाओं तथा शब्दों के साथ उनके संकल्पनात्मक पक्षों एवं संबंधों को भी द्योतित करने का प्रयत्न करता है।

शब्दों के अर्थग्रहण की प्रक्रिया बालक के लिए एक जटिल प्रक्रिया है। वह जिन शब्दों को सुनता है वे सभी उसके लिए नवीन हैं। उसके मस्तिष्क में जन्म से ही शब्द साँचे वर्तमान नहीं होते। भाषा उपार्जन के क्रम में उसे शब्दों को सीखना पड़ता है। क्रमशः वह शब्दों के अर्थ से परिचित होता है। इस स्तर पर भी बालक की स्थिति वयस्क अध्येता से भिन्न होती है। वयस्क अध्येता शब्दों का अर्थ जानने के लिए कोश का उपयोग करता है अथवा किसी से पूछता है, या संदर्भ से अर्थग्रहण करता है। परंतु बालक के सम्मुख केवल अंतिम विकल्प ही शेष रहता है। अतः वयस्क प्रयोक्ता की तुलना में नवीन शब्दों के अर्थग्रहण की समस्या बालक के सम्मुख निरंतर उत्पन्न होती रहती है। यद्यपि बालक दूसरों से पूछ कर भी

अर्थ ग्रहण कर सकता है परंतु वह सामान्यतः संदर्भ का ही उपयोग करता है। बालक इन संदर्भों का अप्रत्याशित रूप में प्रयोग करता है तथा इनके आधार पर कुछ अनुमान गठित करता है। अस्तु अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया के संदर्भ में दो मुद्दे मुख्यतः विचारणीय हैं—बालक के ये अनुमान किस पर आधारित हैं तथा वयस्क प्रयोक्ता बालक द्वारा प्रयुक्त इन नवीन शब्दों को क्या अर्थ प्रदान करते हैं ?

भाषायी विकास के अन्य क्षेत्रों की भाँति अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया में भी बोधन का स्तर उत्पादन के स्तर से अधिक समुन्नत होता है। बोधन प्रक्रिया में बालक शब्दों के साथ-साथ वक्ता के हाव-भावों के आधार पर ही अर्थ ग्रहण करता है। बालक अध्येता शब्दों के साथ सहज रूप से प्रयुक्त हाव भाव को समझने में विशेष रूप से निपुण होता है। सामान्यतः यह देखा गया है कि भाषायी विकास के प्रारंभिक स्तर पर (पाँच छः महीने की आयु में) जब शब्दों को समझने की योग्यता पर्याप्त रूप से विकसित नहीं होती, बालक दूसरों के हाव भावों के प्रति प्रतिक्रिया करता है। केवल शब्द के आधार पर वह कितना अर्थ ग्रहण कर पाता है, यह कहना कठिन है। बालक जैसे ही किसी शब्द को अर्थ प्रदान करता है, वह तुरंत उसका प्रयोग करने लगता है। परंतु बालक द्वारा प्रदत्त अर्थ और वयस्कों द्वारा प्रयुक्त अर्थ में भिन्नता होती है। ये भिन्नताएँ जिन्हें अर्थगत त्रुटियाँ भी कहा जाता है, इस तथ्य की द्योतक हैं कि बालक संकल्पनाओं को शब्दों से संबद्ध कर रहा है।

अर्थ-विकास में कुछ शब्दों के अर्थ अपेक्षाकृत अधिक जटिल होते है। जटिलता का कारण सामान्यतः संकल्पनात्मक जटिलता है। परंतु संकल्पनात्मक जटिलता के आधार पर यह कहना कठिन है कि किन शब्दों के अर्थों को सीखना दूसरों की अपेक्षा सरल अथवा जटिल हो सकता है। बालक द्वारा अर्थ को सीखने का क्रम कुछ घटकों यथा वैयक्तिक अनुभवों तथा विशिष्ट शब्दों के उद्भासनगत अवसरों पर आधारित होता है। अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया में बालक प्राप्त अनुभवों तथा निकटवर्ती संदर्भगत संकेतों के आधार पर शब्दों तथा उच्चारों को समझने का प्रयत्न करता है। इस प्रक्रिया में भाषा के प्रकार्य तथा कथ्य से संबंधित निम्नलिखित संकल्पनाएँ कार्यरत रहती हैं—

(क) भाषा सम्प्रेषण का साधन है और

(ख) इसका संदर्भगत अर्थ होता है।

प्रथम संकल्पना का संबंध वयस्कों के हाव भाव तथा हाव भाव युक्त भाषायी प्रयोगों से है। बालक का ध्यान पहले भाव-प्रयोक्ता के हाव भाव पर केंद्रित होता है तत्पश्चात संबद्ध भाषायी प्रयोगों पर। अतः वह भाषा को भी सम्प्रेषण के साधन के रूप में स्वीकर करने लगता है। दूसरी संकल्पना के संदर्भ में बालक यह अनुभव

करता है कि परिस्थिति विशेष में प्रयुक्त अभिव्यक्ति तथा उस परिस्थिति में कोई न कोई संबंध अवश्य है। संबंध-स्थापन की इस प्रक्रिया में वह संकल्पनाओं तथा शब्दों के बीच संबंध स्थापित करता है। बालक मुख्य रूप से यह अनुभव करता है कि तात्कालिक प्रत्यक्ष संदर्भों में ही भाषा के माध्यम से सम्प्रेषण कार्य किया जा रहा है। अतः सदर्भों के आधार पर ही वह शब्दों तथा उच्चारों का अर्थ ग्रहण करता है। इस प्रक्रिया में वह वस्तुओं, घटनाओं, तत्वों तथा परिचित संबंधों पर आधारित संकल्पनात्मक ज्ञान की सहायता से शब्दों के अर्थ से संबंधित प्राक्कल्पनाएँ गठित करता है। तत्पश्चात् इनके बोधन एवं प्रयोग के लिए विशिष्ट संयुक्तियों की सहायता लेता है यथा "दा" के द्वारा वह दूध की बोतल की ओर संकेत करता है अथवा उसे माँगने की इच्छा प्रकट करता है। कहा जा चुका है कि बालक द्वारा ग्रहीत अर्थ विशिष्ट अर्थ होता है जिनका प्रयोग वह विविध अवसरों पर करता है। वयस्कों द्वारा किये गये प्रयोगों तथा स्वगठित प्रयोगों की बोध गम्यता के आधार पर बालक प्रयुक्त नियमों तथा प्राक्कल्पनाओं में परिवर्तन करता है। क्रमशः उसके प्रयोग वयस्क प्रयोगों के समान होते जाते हैं। इससे न केवल अर्थ विषयक संकल्पनात्मक सूचनाओं की जानकारी मिलती है बल्कि उस क्रम का भी परिचय मिलता है जिससे उसकी परिकल्पनाएँ समाज स्वीकृत अर्थ के रूप में परिणत होती हैं।

बालक द्वारा प्रयुक्त प्रारंभिक सरल अर्थ क्रमशः वयस्क प्रयोक्ताओं द्वारा व्यवहृत अर्थ में रूपांतरित होते हैं। अर्थ-विकास के इस क्रम में बालक अपने मानसिक शब्द कोश में यौगिक, ऋणात्मक तथा परिवर्धन की प्रक्रिया द्वारा नवीन प्रविष्टियाँ करता जाता है। शब्दों के अर्थ में नवीन अंशों को जोड़ना, परिवर्धन करना तथा कुछ अर्थों के बदले नवीन अर्थ को प्रतिष्ठित करना पड़ता है। अतः कहा जा सकता है कि अर्थ के उपार्जन का प्रमुख प्रयोजन एवं प्रकार्य विविध आर्थी क्षेत्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। किन्हीं क्षेत्रों में सरल शब्दों के अर्थ जटिल अर्थों में समाहित कर लिए जाते हैं। इस स्थिति में बालक पहले सरल अर्थ को सीखता है, बाद में जटिल अर्थ को। अन्य आर्थी क्षेत्रों में शब्दों के अर्थ को सीखने का क्रम विशिष्ट शब्दों के अनुभव तथा उद्भासन से संबद्ध रहता है। बालक का संज्ञानात्मक झुकाव, जिसमें वह वस्तुओं का घटनाओं का संबंध स्थापित करता है, अन्य शब्दों की तुलना में कुछ शब्दों के अर्थग्रहण को अधिक सुगम बना देता है। ये घटक प्रारंभ में मूर्त होते हैं यथा आकार, बनावट आदि से संबंधित पर क्रमशः अधिक अमूर्त बनते जाते हैं जैसे कोमलता, क्रोध, हर्ष आदि। समुचित प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दो से लेकर छः वर्ष की आयु में बालक न्यूनतम उद्भासन के आधार पर अधिकांश शब्दों का उत्पादक प्रयोग करने लगता है। वयस्कों द्वारा प्रयुक्त अर्थगत कुशलता के समुचित विकास के पूर्व ही बालक इन शब्दों का व्यवहार करना प्रारंभ कर देता है।

3.1.4. व्याकरणिक विकास

बालक का वास्तविक भाषायी विकास लगभग डेढ़ वर्ष की आयु से प्रारंभ होता है। इस समय तक वह भाषायी साँचों का प्रयोग करने लगता है। यद्यपि प्रारंभिक स्तर पर प्रयुक्त भाषायी प्रयोग का सम्प्रेषणात्मक महत्व निश्चित है, परंतु व्याकरणिक कुशलता के विकास से ही वास्तविक भाषायी विकास का प्रारंभ माना जा सकता है। डेढ़ अथवा दो वर्ष की आयु के बाद वह भाषा का प्रतीकात्मक क्रिया के रूप में व्यवहार करने लगता है। बालक के उच्चारों का स्वयं उसके साथ, अन्य व्यक्तियों के साथ, निकटवर्ती परिवेश तथा उसकी अपनी इच्छाओं के साथ संबंध स्थापित होता है। बालक के सम्प्रेषणात्मक व्यवहार में, उसकी भाषायी योग्यताओं में क्रमशः अधिक वृद्धि होती है और वह कुछ वर्षों में ही भाषा की आधारभूत संरचना पर अधिकार पा लेता है। उसका ध्यान नवीन शब्दों को सीखने पर अधिक केंद्रित होता है। भाषा की नवीन व्याकरणिक संरचनाओं को भी सीखने के लिए वह प्रयत्नशील होता है। भाषा की सामाजिक भूमिका से भी वह परिचित होता है।

बालक प्रारंभ में एक शब्द अथवा पद का प्रयोग करता है। सम्प्रेषण की दृष्टि से इनका आर्थी एवं समाज भाषा वैज्ञानिक महत्व है परंतु इसकी व्याकरणिक महत्ता संदिग्ध है। डेढ़ वर्ष की आयु में यद्यपि बालक का शब्द भंडार सीमित होता है परंतु वह भाषायी उद्दीपन के प्रति प्रतिक्रिया करता है। दो वर्ष की आयु में न केवल उसका शब्द भंडार तीव्र गति से विकसित होता है बल्कि वह द्विपदीय वाक्यों का भी प्रयोग करने लगता है। यद्यपि ये प्रयोग वयस्कों के प्रयोगों से भिन्न होते हैं और इनका पूर्णतया व्याकरणिक विवेचन भी संभव नहीं है, फिर भी इन्हें वाक्यीय रचना माना जा सकता है। बालकों द्वारा किये गए ये प्रयोग वयस्कों के व्याकरणिक प्रयोगों से मिलते जुलते हैं। परंतु व्याकरणिक विकास के क्रम में बालक तथा वयस्क में प्रत्येक स्तर पर भिन्नता पाई जाती है। बालक उद्भासित भाषायी सामग्री का नवीन पुनर्गठित रूप प्रस्तुत करता है। यह पुनर्गठन भाषायी उद्दीपन तथा परिपक्वन गत विकास पर आधारित होता है।

इस स्तर पर बालक की भाषा मुख्यतः "टेलीग्राफिक" होती है अर्थात् उसके प्रारंभिक वाक्यों में कुछ शब्द अन्य शब्दों की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त होते हैं। इन्हें मुख्यतः कोशीय शब्द कहा जा सकता है। बालक संज्ञा तथा परिस्थिति विशेष से संबद्ध क्रिया शब्दों का प्रयोग करता है। व्याकरणिक शब्द जिनकी विशेष उपयोगिता नहीं है, बहुत कम प्रयुक्त होते हैं। बालक के प्रारंभिक प्रयोगों को टेलीग्राफिक मानने का कारण शब्दों के चयन एवं प्रयोग में उनकी दृष्टि से उपयोगिता एवं यथासंभव प्रयत्न की बचत का सिद्धांत है। वह एक अथवा दो शब्दों के द्वारा अधिक से अधिक

अभिव्यक्ति करने का प्रयत्न करता है। प्रश्न हो सकता है कि बालक इन कोशीय शब्दों का ही प्रयोग क्यों करता है, व्याकरणिक शब्दों का प्रयोग क्यों नहीं करता? कारण स्पष्ट है कि जिन विशिष्टताओं के फलस्वरूप शब्द-भाषा में अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं, उन्हीं विशिष्टताओं के फलस्वरूप वे बालक के लिए भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाते हैं। इतना ही नहीं संज्ञा तथा क्रिया शब्दों पर अन्य व्याकरणिक शब्दों की अपेक्षा बलाघात की मात्रा भी अधिक होती है जिससे बालक को उनको सुनने तथा अनुकरण करने में सुगमता होती है।

द्विपदीय वाक्य के स्तर पर अधिकांश बालक उसी शब्द-क्रम का प्रयोग करते हैं जिसका प्रयोग सामान्यतः वयस्क प्रयोक्ता विशिष्ट आर्थी संबंधों के द्योतन के लिए करते हैं। वयस्क तथा बालक शब्दों के अलग-अलग अर्थ से ही परिचित नहीं होते बल्कि वे उनके आर्थी संबंधों से भी परिचित होते हैं। वाक्यों के शब्द क्रम से इसका संकेत मिलता है। क्रमशः वह द्विपदीय वाक्यों से लंबे वाक्यों के प्रयोग की कुशलता अर्जित करता है। यह इस तथ्य का द्योतक है कि उसमें संरचना के उत्तराधर क्रम के प्रयोग की योग्यता विकसित हो गई है। द्विपदीय वाक्यों के प्रयोग की कुशलता विकसित होने पर बालक को वाक्यीय नियमों की अधिक जानकारी हो जाती है। वह क्रमशः अन्य वाक्यीय घटकों का भी प्रयोग करने लगता है। इस स्तर पर वह रूपिमीय युक्तियों यथा शब्दांत, संज्ञा रूपों के साथ वचन सूचक प्रयोग, क्रिया रूपों का काल सूचक प्रयोग तथा अन्य व्याकरणिक शब्दों का प्रयोग सामान्यतः नहीं करता। क्रमशः वाक्य संरचना का विस्तार होता है और वाक्यीय संरचना जटिल होती जाती है। इस स्तर के अंत तक बालक सभी सरल वाक्य संरचनाओं का प्रयोग करने लगता है। इसी आधार पर यह कहा जाता है कि बालक सामान्यतः तीन वर्ष की आयु में भाषा के आधारभूत व्याकरण पर समुचित अधिकार पा लेता है।

तीन से लेकर साढ़े तीन वर्ष की आयु में बालक जटिल वाक्य संरचनाओं को सीखना प्रारंभ करता है। वह संयोजकों का भी प्रयोग करने लगता है; पदबंध भी क्रमशः जटिलतर होते जाते हैं। इस अवधि में बालक भाषा की सृजनात्मक शक्ति से भली-भाँति परिचित हो जाता है और उसका प्रयोग करने लगता है। संयोजकों का प्रयोग सीख लेने पर वह लंबे से लंबे वाक्यों की संरचना कर सकता है। उसमें विविध प्रकार के वाक्यों की रचनागत कुशलता भी विकसित हो जाती है। उसकी वाक्य रचना वयस्क प्रयोक्ताओं के वाक्यों से मिलती जुलती होती है। परंतु वयस्कों की तुलना में उसमें दो कमियाँ पाई जाती हैं—एक तो उसमें त्रुटियों (वयस्कों की शब्दावली में) की संख्या अधिक होती है; दूसरे वाक्य संरचनाओं को सीखने का क्रम अधूरा होता है। कारण स्पष्ट है—वह भाषा की अन्य संरचनाओं को भी सीखता है अतः अधूरापन स्वाभाविक है। जहाँ तक त्रुटियों का प्रश्न है वस्तुतः इन्हें

त्रुटियाँ नहीं कहा जा सकता। ये मूलतः बालक द्वारा भाषा की नियमितताओं तथा अनियमितताओं को सीखने की द्योतक मात्र हैं।

लगभग चार एवं साढ़े चार वर्ष की आयु में बालक भाषा की अन्य व्याकरणिक व्यवस्थाओं पर भी पर्याप्त अधिकार पा लेता है। वह सर्वनामों तथा सहायक क्रियाओं का प्रयोग करने लगता है। इसी प्रकार वह कर्म वाच्य का प्रयोग भी करने लगता है। यह कुशलता लगभग नौ दस वर्ष की आयु में पूर्णतया विकसित होती है, परंतु इसका प्रारंभ भाषा-विकास के इस काल से ही माना जा सकता है। इस प्रकार यद्यपि बालक का वाक्यीय विकास वाक्य संरचना में अंतर्निहित व्याकरणिक सिद्धांतों की जानकारी पर आधारित है, परंतु इस समय तक वह इनमें से अधिकांश पर अधिकार पा लेता है। भाषा में नवीन एवं कम प्रचलित वाक्य साँचों को वह उद्भासन गत अनुभव के आधार पर सीखता है। इस प्रकार लगभग सात वर्ष की आयु तक वह भाषा की व्याकरणिक तथा वाक्यीय व्यवस्था पर पर्याप्त अधिकार पा लेता है। शैलीगत विविधता की दृष्टि से विकास की संभावनाएँ सदैव वर्तमान रहती हैं।

मैके ने विषयगत विकास में उपर्युक्त चार पक्षों के अतिरिक्त अमूर्तता, भाषायी व्यवहार एवं परिवेश तथा बोधन और वाक् व्यापार का उल्लेख किया है। अतः इनकी भी संक्षेप में चर्चा करना उचित होगा।

3.1.5. अमूर्तता की योग्यता का विकास

प्रतीकात्मक व्यवस्था के रूप में अमूर्तता भाषा का प्रमुख अभिलक्षण है। यह कुशलता अपेक्षाकृत कुछ देर से विकसित होती है। लगभग दस वर्ष की आयु में मातृभाषी बालक शब्द उसके संदर्भ में अंतर स्थापित करने लगता है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इससे पूर्व विकसित होने का भी संकेत दिया है। मात्रा, वजन या भार, समय और दिशा की अमूर्त संकल्पनाओं को उसे सीखना पड़ता है। सामान्यीकरण की कुशलता का भी क्रमशः विकास होता है। मानसिक विकास के साथ वह भाषा और विचार के अंतर को पहचानना सीखता है एवं उनमें संबंध स्थापित करता है। अमूर्तता की योग्यता वस्तुतः भाषायी विकास का द्योतक है। बालक के लिए वे स्वतः स्पष्ट नहीं होते अतः सीखने में कठिनाई होती है। भाषायी विकास की प्रारंभिक स्थिति में बालक किसी वस्तु और उसके अंश के बीच संबंध स्थापित करने में असमर्थ होता है, वह यह नहीं समझ पाता कि कोई भी अंश समग्र का ही एक अंश है। इतना ही नहीं उसमें सामान्यीकरण की योग्यता भी प्रारंभिक स्तर पर विकसित नहीं होती यथा माँ केवल उसी की माँ है दूसरों की भी माँ हो सकती है यह समझ कुछ देर में विकसित होती है। वह वाक् तथा विचार के अंतर को समझने में भी असमर्थ होता है। मानसिक विकास के साथ वह वाक् क्रिया तथा विचार में अंतर

करना सीखता है तत्पश्चात् उनमें पारस्परिक संबंध स्थापित करता है। भाषायी विकास के क्रम में अमूर्त संकल्पनाओं यथा कोमलता, करुणा, कठोरता आदि का विकास मानसिक परिपक्वन के क्रम में होता है। इस योग्यता के फलस्वरूप बालक व्यक्ति अथवा वस्तु की अनुपस्थिति में भी उनसे संबंधित चर्चा करता है। स्पष्ट है कि अमूर्तता की योग्यता का विकास वस्तुतः भाषायी विकास का द्योतक है।

3.1.6. भाषायी व्यवहार एवं परिवेश

बालक सामाजिक परिवेश में सामाजिक उद्देश्य से भाषा सीखता है। भाषायी परिवेश जितना ही समृद्ध होगा भाषायी व्यवहार के उतने ही अधिक अवसर सुलभ होंगे। वयस्कों के भाषायी प्रयोग बालक के लिए भाषायी प्रारूप अथवा नमूने के रूप में काम करते हैं। बाल्यावस्था में वह अपने समवयस्क साथियों से अधिक भाषा सीखता है। चिंतन एवं अभिव्यक्ति में लगभग समानता होने के साथ ही आयुगत समानता भी उसे भाषा व्यवहार की प्रेरणा देती है। बालक के भाषायी विकास एवं भाषायी अधिकार के साथ-साथ उसके विचार जगत में भी यथेष्ट परिवर्तन होता है। भाषा को विचारों का संवाहक कहा गया है। इस दायित्व के निर्वाह के साथ ही भाषा विचारों के संवर्धन में भी सहायक है। अतः भाषायी विकास के प्रारंभिक स्तर पर उसमें स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की कुशलता भी विकसित हो जाती है। उसमें भाषायी प्रयोग की दक्षता का विकास होता है। इतना ही नहीं उसके भाषायी प्रयोगों में विचारों की नवीनता भी दृष्टिगत होती है, परंतु वह भाषायी संरचना एवं सामाजिक संरचना से अधिकाधिक नियंत्रित होता जाता है। भाषायी विकास के प्रारंभिक स्तर पर यद्यपि अनुकरण का विशेष योगदान है परंतु भाषायी विकास के क्रम में उसमें विश्लेषण की कुशलता भी विकसित होती है। भाषा का सृजनात्मक प्रयोग वस्तुतः इस विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति की ही निष्पत्ति है। इन समस्त प्रक्रियाओं में सामाजिक परिवेश की भूमिका महत्वपूर्ण है। अतः बालक का भाषायी व्यवहार प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सामाजिक परिवेश से नियंत्रित होता है।

3.1.7. बोधन और वाक् व्यापार

कहा जा चुका है कि बोधन की कुशलता का विकास निष्पादन कुशलता के पूर्व होता है। बालक में भाषा को सुन कर समझने की योग्यता वाक् व्यापार के माध्यम से विचारों तथा भावों की अभिव्यक्ति की तुलना में अधिक होती है। यही कारण है कि बालक की वाक् क्रियाओं के आधार पर उसके समग्र भाषायी विकास का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। शब्दों को सुन कर समझने और उनका प्रयोग करने के बीच का अंतराल दीर्घ हो सकता है। इस अवधि में वह विविध संकल्पनाओं के अर्थ से परिचित होता है और उन्हें ध्वनि प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करना सीखता है। भाषायी विकास के क्रम में सामान्यीकरण की कुशलता विकसित होती

है तथा बालक द्वारा प्रयुक्त वाक् व्यापार निरंतर समृद्ध होता जाता है। इस प्रकार एक ओर बोधन की कुशलता अधिकाधिक संपुष्ट होती है तो दूसरी ओर वाक् शक्ति का उत्तरोत्तर विकास होता जाता है, परंतु इनमें पूर्वापर क्रम यथावत वर्तमान रहता है।

3.2. भाषायी विकास के स्तर

विकास के अन्य क्षेत्रों की भाँति बालक के भाषायी विकास में भी भाषा उपार्जन के स्तरों का स्पष्ट विभाजन संभव नहीं है। इन स्तरों का विवेचन केवल अनुमान के आधार पर ही किया जा सकता है, किसी वैज्ञानिक माप दंड के आधार पर नहीं। फिर भी यह प्रामाणिक रूप से कहा जा सकता है कि भाषा विकास के स्तर परस्पर व्यापी हैं। ये स्तर निम्नलिखित हो सकते हैं—

3.2.1. वाक् क्रिया पूर्व स्तर

बालक के भाषायी विकास के प्रारंभिक कुछ महीनों में वाक् क्रियाओं का रोने, किलकने तथा स्वतः निःसृत अस्पष्ट ध्वनियों का विशेष महत्व है। ये न केवल वाक् अवयवों की सुदृढ़ता, विकास एवं अभ्यास में सहायक हैं, बल्कि वे पुनर्बलित ध्वनियों की उपकरणात्मक तथा सम्प्रेषणात्मक प्रकृति से भी बालक को परिचित कराती हैं यथा रोना भूख अथवा कष्ट से छुटकारा पाने का साधन बनता है।

प्रथम कुछ महीनों में विकसित किलकारी क्रमशः ध्वन्यात्मक विविधता से युक्त स्वतः उच्चरित वाक् क्रियाओं, जिन्हें "बबलाने" की संज्ञा दी जाती है, परिणत होती हैं। बालक के मुँह से कुछ ध्वनियाँ, जिन्हें अक्षरों से मिलती जुलती ध्वनियाँ कहा जा सकता है, उच्चरित होने लगती हैं। कहा जा चुका है कि "बबलाना" स्वतः उद्भूत प्रक्रिया है। उसे सप्रयास सीखना नहीं पड़ता परंतु बालक के भाषायी विकास में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। बालक के भाषायी विकास में बबलाने के महत्व की चर्चा की जा चुकी है अतः यहाँ केवल उसका संकेत मात्र ही पर्याप्त है।

बालक सबसे पहले अपने निकटवर्ती परिवेश में प्रत्यक्ष रूप से वर्तमान वस्तुओं, पदार्थों तथा व्यक्तियों से परिचित होता है। प्रारंभ में माता-पिता इन वस्तुओं को उसके सामने प्रस्तुत करते हैं, धीरे-धीरे वह इन्हें हाथ बढ़ाकर पकड़ना सीखता है। घुटनों के बल चलना तथा खड़े हो कर चलना सीखने की प्रक्रिया में वह इन वस्तुओं के अधिकाधिक संपर्क में आता है। लगभग एक वर्ष की आयु में उसे निरंतर व्यवहार में प्रयुक्त सामान्य वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसे स्वयं अपने दैनिक क्रिया कलापों की भी समुचित जानकारी हो जाती है। एक से डेढ़ वर्ष

की आयु के इस विकास क्रम को कुछ विद्वानों ने (पियाजे 1951, 1955) 'संवेदनागतिपरक' स्तर कहा है। उनके अनुसार बालक परिवेश के प्रति की गयी प्रतिक्रिया के माध्यम से यथा छूना, पकड़ना, देखना तथा उनको हिलाना डुलाना आदि, ज्ञान प्राप्त करता है। बालक के भाषायी विकास के अध्ययन में इस स्तर की विशिष्टताओं से परिचित होना आवश्यक है।

3.2.1.1. संवेदनागतिपरक स्तर

भाषायी विकास के इस स्तर पर शिशु निकटवर्ती परिवेश में संवेदनाओं के प्रति गामक क्रियाएँ करता है। इस स्तर के विकास क्रम में बालक स्मृति के आधार पर घटनाओं अथवा क्रियाओं की पुनरावृत्ति करता है। पियाजे ने अपनी पुत्री के अनुकरणात्मक व्यवहार के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि इस समय तक बालक में घटनाओं अथवा वस्तुओं को स्मृति के आधार पर द्योतित करने की क्षमता विकसित हो जाती है।

संवेदनागतिपरक स्तर के अंतिम चरणों में संबद्ध विकास की तीन मुख्य दिशायें भी स्पष्ट होती हैं। ये हैं वस्तु यथायित्व की सिद्धता, उपकरणों अथवा साधनों का अन्वेषण तथा प्रतीकात्मक खेल का आविर्भाव। वस्तु अथवा पदार्थ स्थायित्व से अभिप्राय उस कुशलता से है जिसमें बालक केवल वस्तुओं को पहचानता ही नहीं है बल्कि यह भी अनुभव करता है पदार्थ आँखों से ओझल होने पर भी अपने स्थान पर यथावत बने रहते हैं। अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए जब वह किसी मध्यस्थ का प्रयोग करने लगता है, चाहे वह व्यक्ति हो अथवा पदार्थ, तो उसे उपकरण अथवा साधन का ज्ञान हो जाता है। प्रतीकात्मक खेल एक प्रकार से अभिनयात्मक है। बालक एक लड़की को घोड़ा मान लेता है और तदनुकूल व्यवहार का अभिनय करता है। यह त्रिपक्षीय विकास क्रम इस बात पर निर्भर करता है कि बालक स्वयं उन वस्तुओं तथा घटनाओं को द्योतित करने में कितना समर्थ है (पियाजे 1955, ब्रूनर 1973, डी. एडवर्ड्स, 1973)। घटनाओं तथा वस्तुओं को द्योतित करने की योग्यता किसी भी प्रकार की प्रतीकात्मक द्योतन व्यवस्था के उपार्जन के लिए पृष्ठ भूमि के रूप में आवश्यक है। संवेदनागतिपरक स्तर की विशिष्टताओं आस्थगित अनुकरण, वस्तु-स्थायित्व, उपकरणों का प्रयोग तथा प्रतीकात्मक खेल-से युक्त होने पर अथवा युक्त होने के क्रम में ही बालक प्रथम शब्द के प्रयोग की कुशलता अर्जित कर लेता है। वह सामान्यतः प्रथम शब्द का प्रयोग इसी समय करता है।

3.2.1.2. भाषायी बोधन स्तर

कहा जा चुका है कि बोधन का स्तर उत्पादन के स्तर का पूर्वगामी है। बालक में भाषा को समझने की कुशलता भाषा प्रयोग की कुशलता के पहले विकसित

होती है। सामान्यतः 8-10 महीने की आयु में प्रतीकात्मक आंगिक संकेतों, अनुतान, शब्दों और पदबंधों को समझने का प्रथम प्रमाण मिलता है। बालक के भाषायी विकास में यह महत्वपूर्ण काल माना जाता है। इस काल के भाषायी अनुभव ही आगे चलकर भाषा संबंधी व्यक्तिगत भिन्नता को द्योतित करते हैं।

बालक विकास के क्रम में क्रमशः भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों के अंतर को पहचानना सीखता है। परंतु इन पर उसका पर्याप्त अधिकार 4-6 वर्ष की आयु में, ही हो पाता है। वह सर्वप्रथम केवल बड़ी इकाइयों यथा पदबंध एवं एकाकी शब्द का अंतर ही पहचानना सीखता है। 2-3 वर्ष की आयु में वह अधिक मिलते जुलते शब्दों को न्यूनतम ध्वन्यात्मक भिन्नता के आधार पर पहचानने लगता है। सरल एवं संक्षिप्त आदेशों तथा निर्देशों को समझने की योग्यता भी प्रथम वर्ष के अंत तक विकसित हो जाती है। इस प्रकार बालक में बोधन-प्रक्रिया का विकास सुनिश्चित क्रम से होता है। अतः बालक के भाषायी विकास में इसे वाक्-क्रिया पूर्व एक महत्वपूर्ण सोपान माना जा सकता है।

3.2.2. प्रारंभिक वाक् क्रियाएँ एवं भाषायी व्यवहार

बोधन की प्रारंभिक कुशलता विकसित होने पर बालक भाषा का प्रयोग करना सीखता है। वह भाषा का सक्रिय, सार्थक और स्वैच्छिक प्रयोग प्रथम वर्ष के अंत तक करने लगता है। इन प्रयोगों को वयस्कों के प्रयोगों से मिलता जुलता प्रयोग माना जा सकता है। चूंकि बालक मौखिक भाषायी व्यवहार के उपकरणात्मक प्रयोग से परिचित हो चुका रहता है, अतः उसकी मुख्य समस्या केवल समुचित परिस्थिति में वाक् अवयवों को क्रियाशील बनाने की ही होती है। वाक्-प्रयोग की कुशलता का प्रारंभ हो जाने पर इसका उत्तरोत्तर विकास होता रहता है।

बालक के प्रारंभिक भाषायी व्यवहार में निष्पादन कुशलता की दृष्टि से कई स्तर निर्धारित किये जा सकते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण देना उचित होगा।

3.2.2.1. एक पदीय प्रयोग

बालक प्रारंभ में एक शब्द का ही प्रयोग करता है। यह शब्द सामान्यतः संज्ञा शब्द होते हैं तथा निकटवर्ती वस्तुओं, पदार्थों, व्यक्तियों, खिलौनों तथा खाने-पीने की चीजों के लिए प्रयुक्त होते हैं (नेल्सन 1973)। बालक द्वारा प्रयुक्त शब्दों तथा शब्दों के प्रकार में व्यक्तिगत भिन्नता दृष्टिगत होती है। कुछ बच्चे पदार्थों के नामों का अधिक प्रयोग करते हैं तो कुछ वस्तुओं के नामों का कम तथा सामाजिक अभिव्यक्तियों का अधिक प्रयोग करते हैं। इसका कारण बालक के भाषायी उपार्जन संबंधी भिन्नता के साथ ही उनके लालन पालन की प्रणालीगत भिन्नता भी हो सकती है।

बालक के ये एक पदीय प्रयोग अभिव्यक्ति की दृष्टि से संपूर्ण वाक्य का काम करते हैं। इन वाक्यों के व्याकरणिक पक्ष के संबंध में प्रमाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इन शब्दों को व्याकरणिक कोटियों की दृष्टि से भी वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है। परंतु इनकी सम्प्रेषणीयता असंदिग्ध है।

ये एक पदीय प्रयोग सामान्यतः विधेय का कार्य करते हैं। अपनी सीमित योग्यता के कारण बालक वाक्य के अन्य घटकों का प्रयोग नहीं कर पाता। अतः वयस्क श्रोता बालक द्वारा प्रयुक्त शब्दों को समझने के लिए संदर्भ विशेष में ही इन प्रयोगों को ग्रहण करता है। ये संदर्भ ही भाषायी दृष्टि से अधूरी अभिव्यक्ति को पूर्णता प्रदान करते हैं (ग्रीनफील्ड और स्मिथ 1976) कुछ विद्वानों ने इस प्रक्रिया को समूढ़ विश्लेषण-पद्धति के नाम से अभिहित किया है (फास और हेक्स 1978)। इसका उपयोग द्विपदीय प्रयोगों के संदर्भ में भी विशेष रूप से होता है। इन एक पदीय प्रयोगों में अति सामान्यीकरण की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। बालक द्वारा प्रयुक्त शब्द से वस्तु विशेष का ही द्योतन नहीं होता बल्कि उससे मिलती जुलती अन्य वस्तुओं के लिए भी वह शब्द विशेष का प्रयोग करता है जैसे गेंद का प्रयोग केवल गेंद के लिए ही नहीं होता, बल्कि अन्य वस्तुओं के लिए भी होता है जिनका आकार गोल है। कहा जा सकता है कि अति सामान्यीकरण का प्रत्यक्षात्मक आधार होता है।

बालक द्वारा प्रयुक्त शब्दों का अर्थ तथा संबंधित संकल्पनाएँ बड़ों द्वारा प्रयुक्त अर्थ से भिन्न होती हैं। यह भिन्नता केवल इस रूप में ही दृष्टिगत नहीं होती कि बालकों द्वारा प्रयुक्त अर्थ वास्तविक अर्थ का केवल द्योतन करता है बल्कि जटिलता की दृष्टि से भी आँकी जा सकती है।

बालक के प्रारंभिक भाषायी विकास संबंधी अध्ययनों से यह संकेत मिलता है कि बालक जैसे-जैसे एक से अधिक शब्दों का प्रयोग करने लगता है, अति सामान्यीकरण की प्रवृत्ति क्रमशः कम होती जाती है। बालक वस्तुओं, उनके लिए प्रयुक्त शब्दों के संबंध तथा शब्द मात्र के पारस्परिक संबंधों को अधिक गंभीरता और सूक्ष्मता से पहचानने लगता है। यह परिवर्तन भाषायी विकास की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही; विकास गति की तीव्रता का भी द्योतक है।

3.2.2.2. द्विपदीय प्रयोग

एक पदीय उच्चारों की प्रयोग-कुशलता के विकसित होने के कुछ महीनों के बाद ही बालक इन एकाकी शब्दों को द्विपदीय प्रयोग के रूप में संयोजित करने लगता है। बहुधा द्विपदीय प्रयोगों के पूर्व बालक एकाकी शब्दों का शृंखला बद्ध प्रयोग करता है। वस्तुतः बालक इस स्तर पर उन्हीं शब्दों का क्रम से प्रयोग करता है

जिनको वह द्विपदीय प्रयोगों में सम्मिलित रूप से प्रयुक्त करना चाहता है। इन शृंखलाबद्ध प्रयोगों में प्रत्येक शब्द का पृथक अनुतान होता है तथा दो शब्दों के बीच विराम की स्थिति दृष्टिगत होती है (ब्लूम 1973) यथा—माँ। दूध।

परंतु कुछ समय पश्चात् वह द्विपदीय प्रयोग में इन दोनों शब्दों का समुचित प्रयोग करने लगता है यथा—माँ दूध। कहा जा सकता है कि एकाकी शब्दों का शृंखलाबद्ध प्रयोग लंबे उच्चारों के आविर्भाव का द्योतक है। कुछ विद्वानों ने (बावर मैंन 1973) इन द्विपदीय प्रयोगों में कारक संबंधों का भी अध्ययन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बालक विविध कारक संबंधों का प्रयोग करता है परंतु सामान्यतः कर्ता कारक का प्रयोग आदि स्थिति में ही होता है।

बालक के द्विपदीय प्रयोगों में भिन्नता का एक प्रमुख कारण नियमों के चयन का विकल्प है। ब्रेन के अनुसार बालक संबंध विशेष को द्योतित करने के लिए कुछ नियम बना लेता है और इसके अनुसार शब्दों का प्रयोग करता है। द्विपदीय प्रयोगों में भिन्नता का दूसरा कारण प्रयुक्त शब्दों की प्रकृति से संबद्ध है यथा दो कोशीय शब्दों का प्रयोग अथवा एक कोशीय शब्द और सर्वनाम का प्रयोग आदि (नेल्सन 1974)। निष्कर्ष यह है कि बालक एक पदीय से द्विपदीय प्रयोग के विकास क्रम में समान वस्तुओं के संबंध में ही चर्चा करता है। अंतर केवल यह है कि किसी घटना का वर्णन करते समय वह एकाधिक भूमिका अथवा क्रिया की अभिव्यक्त करता है।

द्विपदीय वाक्यों के प्रयोग की कुशलता अर्जित करने के क्रम में बालक अपनी मातृभाषा की संरचना और प्रकार्य दोनों का ही विस्तार करता है। अतः इनका विवेचन निम्नलिखित संदर्भों में करना आवश्यक है—

(1) शब्द संयोजन

द्विपदीय प्रयोगों से संबंधित एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस स्तर पर बालक भाषायी संरचना का विस्तार करता है। वह दो से अधिक शब्दों का भी प्रयोग करता है। इन शब्दों को वह किस क्रम से संयोजित करता है, ये शब्द कोटियाँ किस प्रकार की हैं, इनसे संबंधित अनेक अध्ययन हुए हैं (ब्रेन 1976; नेल्सन (1975)। इनके आधार पर कहा जा सकता है कि शब्दों द्वारा विशिष्ट संबंधों के द्योतन संबंधी नियमों के विकल्प में विविधता दृष्टिगत होती है। शब्द संयोजन के प्रकार के संबंध में भी यही स्थिति है। परंतु बालक के इन द्वि तथा बहुपदीय प्रयोगों में शब्दों का लगभग परिवर्तित क्रम मिलता है। किसी संबंध विशेष को द्योतित करने वाले सभी प्रयोगों में शब्दों का एक ही क्रम मिलता है। यह क्रम सभी बालकों के भाषायी प्रयोगों में दृष्टिगत होता है। इस विशेषता को कुछ विद्वानों ने उच्चारों में नियमितता की संज्ञा दी है (फॉस और हेक्स)।

बालक के द्विपदीय प्रयोगों में व्याकरणिक संबंध निर्धारित करने का भी प्रयत्न किया गया है। परंतु यह प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता है कि बालक वाक्य में उद्देश्य तथा विधेय दोनों का प्रयोग करता है एवं वह उद्देश्य की संकल्पना से परिचित है। भाषायी विकास के क्रम में बालक भाषायी संरचना का विस्तार करता है। वह व्याकरणिक शब्दों और शब्दांतों को संयोजित करता है; निषेधात्मक प्रयोगों तथा प्रश्नों के लिए एक ही वाक्य में एकाधिक शब्दों का प्रयोग करता है। ये सभी प्रक्रियाएँ बालक द्वारा प्रयुक्त नियमों के अनुरूप निश्चित क्रम से घटित होती हैं।

(2) "थीम" संकेत

भाषायी विकास क्रम में बालक किन विषयों से संबंधित चर्चा करता है? उसकी कथ्य सामग्री क्या है? इसकी जानकारी आवश्यक है। एक पदीय प्रयोग से द्विपदीय प्रयोग के विकस-क्रम में वह लगभग समान वस्तुओं से ही संबंधित चर्चा करता है। परंतु किसी घटना का वर्णन करते समय वह एकाधिक भूमिकाओं का निर्वाह करता है।

अभिव्यक्ति एवं कथ्य की दृष्टि से बालक के द्विपदीय प्रयोगों में प्रतिसप्ति तत्व के विविध रूप देखे जा सकते हैं। इनका संबंध वस्तुओं, स्थितियों और गुण से होता है। इस स्तर पर वह सामान्यतः निषेधात्मक प्रयोग करने लगता है। उसके द्विपदीय प्रयोगों में अनुरोध की भी अभिव्यक्ति होती है। यह सामान्यतः किसी कार्य अथवा किसी प्रकार की सूचना से संबद्ध होता है। कार्य संबंधी अनुरोध में वस्तु का नाम प्रयुक्त होता है; सूचना संबंधी अनुरोध सामान्यतः कम पाया जाता है। इन प्रयोगों में बालक परिचित तथा नवीन दोनों ही प्रकार की सूचनाओं का एक साथ प्रयोग करता है। इसके पूर्व एकपदीय प्रयोगों में वह सामान्यतः नवीन सूचना, जो वस्तुतः बालक के लिए नवीन है, का ही प्रयोग करता है। द्विपदीय प्रयोगों में नवीन सूचना पर अधिक बल देने के लिए वह केंद्रीय बलाघात (Focalstress) का प्रयोग करता है। इस प्रकार बालक अपने द्विपदीय प्रयोगों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति में समर्थ होता है।

3.2. 3. विभेदक वाक् सम्प्रेषण

द्विपदीय प्रयोगों की कुशलता अर्जित करने के बाद भाषायी विकास की दृष्टि से विभेदक वाक् सम्प्रेषण एक महत्वपूर्ण सोपान है। दूसरे वर्ष के अंत में, जब बालक का शब्द भंडार भी पर्याप्त रूप से विकसित हो जाता है, बालक इस प्रकार की भाषायी क्रियाएँ करता है मानों वह "भाषा का वैज्ञानिक प्रयोग" कर रहा हो। वह यह देखता है कि उच्चार के कुछ अंश समान हैं तथा कुछ भिन्न। इसके आधार

पर वह विविध परिवर्तन करते हुए भाषायी प्रयोग एवं परीक्षण की दिशा में अग्रसर होता है। भाषा का यह परीक्षणात्मक प्रयोग वाक्य संरचना के विकास का आधार बनता है।

बालक के भाषायी विकास में शब्दों तथा सामाजिक दृष्टि से स्वीकृत व्याकरणिक अभिव्यक्तियों के प्रयोग की कुशलता का विशेष महत्व है। इस स्तर पर बालक सबसे पहले व्याकरणिक शब्दों तथा शब्दांतों का प्रयोग करना सीखता है। वह क्रमशः क्रिया विशेषण, सहायक क्रियाओं, सर्वनाम तथा संज्ञा और क्रिया पदांतों का प्रयोग करना भी सीखता है। परंतु बालक के भाषा-विकास की जटिल प्रक्रिया को समझने के लिए भाषा विकास के विविध दिशाओं के अवलोकन के साथ ही साथ उन घटकों पर भी ध्यान देना आवश्यक है जिनके कारण कुछ संरचनाओं को सीखना अपेक्षाकृत सरल माना जाता है।

बालक व्याकरणिक रूपिमों के प्रयोग द्वारा अपने उच्चारों के प्रतिसप्ति तत्व (Propositional Content) का विस्तार करता है तत्पश्चात् इनके संयोजन द्वारा क्रमशः वाक्य संरचना का विस्तार करना सीखता है। इन व्याकरणिक रूपिमों के उपार्जन में अनेक स्तर हैं। इन स्तरों पर वह इनके प्रयोग से संबंधित नियमों को गठित करता है और इनके अनुसार भाषा का प्रयोग करता है। वयस्कों द्वारा प्रस्तुत नमूनों एवं प्रारूपों के आधार पर वह भाषायी त्रुटियों में स्वतः संशोधन करता रहता है।

इनके उपार्जन को प्रभावित करने वाले घटकों में दो घटक मुख्यतः उल्लेखनीय हैं। ये हैं—आर्थी जटिलता—रूपिमों पर आरोपित विचारों की जटिलता और वयस्कों, विशेषतः माता-पिता, के भाषायी प्रयोगों में इनकी बारंबारता। सरल अर्थों के द्योतक रूपिमों के बारे में भी सामान्यतः यही स्थिति घटित होती है। परंतु यह आवश्यक नहीं है कि बार-बार प्रयुक्त रूपिम ही जल्दी सीखे जायें। व्याकरणिक रूपिमों को सीखने में बारंबारता के सिद्धांत का उद्भासनगत महत्व है। कहा जा सकता है कि बालक व्याकरणिक रूपिमों का नियमित रूप से प्रयोग करता है। प्रयोग के क्रम में उसके स्वगठित नियमों में तब तक सुधार एवं परिमार्जन होता रहता है जब तक वे वयस्क प्रारूपों के समान नहीं हो जाते। वाक्य संरचना में निषेधात्मक तथा प्रश्नसूचक वाक्यों का भी समावेश हो जाता है और सरल वाक्य क्रमशः जटिल वाक्यों में परिणत हो जाते हैं।

3.2.4. परवर्ती स्तर

विभेदक वाक् सम्प्रेषण की कुशलता का विकास हो जाने पर बालक भाषा की वाक्यीय संरचना का स्वतंत्र प्रयोग करने में समर्थ हो जाता है। इस

स्तर पर सभी दृष्टियों से उसका भाषायी विकास तीव्र गति से होता है। लगभग 6 वर्ष की आयु में सामान्य बालक अपनी भाषा की सभी स्वनिमीय विशेषताओं पर अधिकार प्राप्त कर लेता है। भाषा के प्रचलित व्याकरणिक रूपों तथा संरचनाओं पर भी उसका समुचित अधिकार हो जाता है। परंतु भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था पर अधिकार प्राप्त करने का क्रम युवावस्था तक चलता रहता है। इस स्तर पर व्याकरणिक व्यवस्थागत अधिकार दो रूपों में हो सकता है—नवीन संरचनाओं पर अधिकार तथा सीखी गई संरचनाओं की पूर्ण जानकारी। नवीन संरचना पर अधिकार कराने के लिए वाक्यीय संबद्धता के विविध रूपों का अभ्यास कराया जाता है। जहाँ तक भाषायी संरचनाओं के सही-सही बोधन की कुशलता का प्रश्न है वह आयु के साथ विकसित होती जाती है। स्पष्ट है कि बालक क्रमशः वाक्य संरचना के सभी घटकों को समझने की कुशलता अर्जित कर लेता है और इनका समुचित रूप से प्रयोग करने लगता है।

शब्द भंडार तथा अर्थ का विकास सामान्यतः प्रौढ़ावस्था तक होता रहता है। अनुभव क्षेत्र के विस्तार तथा नवीन संदर्भों से परिचित होने पर संबंधित शब्दों एवं अर्थों के कोश में निरंतर वृद्धि होती है। अतः भाषायी विकास की जटिल प्रक्रिया के संबंध में यह कहना संभव नहीं है कि स्तर विशेष पर यह विकास पूर्णता को प्राप्त हो चुका है। इस जटिलता का एक प्रमुख कारण भाषायी जटिलता है। अतः भाषायी जटिलता की संकल्पना से परिचित होना आवश्यक है।

3.2.4.1. भाषायी जटिलता

भाषा के अधिकांश प्रयोक्ताओं में यह धारणा व्याप्त है कि कुछ संरचनाएं दूसरों की अपेक्षा अधिक जटिल हैं यथा लंबे वाक्य छोटे वाक्य की तुलना में अधिक जटिल होते हैं, नकारात्मक वाक्य सकारात्मक वाक्यों की अपेक्षा सीखने में अधिक कठिनाई उत्पन्न करते हैं आदि। बालक की भाषायी त्रुटियों को सुधारने के क्रम में इन जटिलताओं का सहज ही अनुभव किया जा सकता है। इस जटिलता को यथा संभव कम करने के लिए भाषा का वयस्क प्रयोक्ता बच्चों के साथ सामान्यतः भाषा का सरलीकृत रूप ही प्रयुक्त करता है। बालक भी भाषा उपार्जन में सरल प्रयोगों से जटिल प्रयोगों को सीखने का क्रम अपनाता है। पाँच से छः वर्ष की आयु में उसके अधिकांश प्रयोग वयस्क प्रयोगों के समकक्ष हो जाते हैं। भाषा-उपार्जन का यह क्रम सभी भाषाओं के संदर्भ में सामान्यतः दृष्टिगत होता है (क्लार्क और क्लार्क 1977)।

लगभग सभी विद्वान इस मत से सहमत हैं कि बालक सरल रूपों को पहले सीखता है और जटिल रूपों को बाद में। सहज ही जिज्ञासा होती है कि भाषा अधिगम में जटिलता का मुख्य स्रोत क्या है? जटिलता किन कारणों से उत्पन्न होती

है और इसका वास्तविक स्वरूप क्या है ? इन प्रश्नों पर सम्यक रूप से विचार करना आवश्यक है। भाषायी जटिलता के मुख्यतः दो स्रोत हैं—संज्ञानात्मक जटिलता तथा रूपात्मक जटिलता।

(1) संज्ञानात्मक जटिलता

संज्ञानात्मक जटिलता से अभिप्राय बालक द्वारा विचारों को भाषा में संयोजित करने की जटिलता से है। जगत उसकी संरचना तथा संबद्ध प्राणियों, वस्तुओं पदार्थों आदि से संबंधित संकल्पनाएँ एवं विचार बालक के लिए न केवल दुर्बोध हैं बल्कि वह निश्चित आयु में इनसे पूर्णतया परिचित भी नहीं हो पाता। विचारों की जटिलता भाषायी संरचना को सीखने के क्रम में प्रतिबिंबित होती है। सरल विचार भाषा में पहले तथा शीघ्र ही अनुदित हो जाते हैं। जटिल विचारों को भाषा में रूपांतरित करने में अधिक समय लगता है। अतः बालक के भाषायी विकास की गति के निर्धारण में संज्ञानात्मक जटिलता का विशेष महत्व है। इस संबंध में दो बातें मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं—

(क) बालक सामान्यतः ऐसे शब्दों को नहीं सीखता जिनका उसके लिए कोई अर्थ न हो।

(ख) बालक निश्चित आयु में समान एवं मिलते जुलते विचारों तथा संकल्पनाओं के संबंध में ही चर्चा करता है।

(2) रूपात्मक जटिलता

रूपात्मक जटिलता से तात्पर्य भाषायी युक्तियों से संबंधित जटिलता से है। रूपात्मक दृष्टि से भाषा की किसी व्यवस्था को उस समय जटिल माना जाता है जब संबंधित नियमों में अपवादों की संख्या अधिक होती है यथा हिंदी में लिंग व्यवस्था। भाषा विशेष में प्रयुक्त युक्तियों में भी जटिलता का क्रम निर्धारित किया जा सकता है। भाषायी युक्तियाँ जितनी ही जटिल होती हैं बालक को भाषा सीखने में उतनी ही कठिनाई होती है। रूपात्मक जटिलता की दृष्टि से भाषाओं में भिन्नता पाई जाती है। परंतु इन भाषायी जटिलताओं के होते हुए भी बालक भाषा में कुछ संरचनाओं को अपेक्षाकृत जल्दी सीखता है।

3.2.4.2. भाषायी सृजनात्मकता

संप्रेषण के अन्य साधनों की तुलना में भाषायी संप्रेषण समर्थ साधन होने के साथ ही साथ अत्यंत जटिल भी हैं। भाषायी व्यवहार में बालक श्रवण तथा भाषण की कुशलता के द्वारा क्रमशः भाव ग्रहण तथा भाव प्रकाशन के महत्वपूर्ण सामाजिक

दायित्वों का निर्वाह करता है। कहा जा चुका है कि श्रवण तथा भाषण में अनेक जटिल मानसिक प्रक्रियाएँ समाविष्ट रहती हैं। इनकी जटिलता उस समय जटिलतर हो जाती हैं जब बालक के भाषायी प्रयोगों में सृजनात्मकता का स्वतः समावेश हो जाता है। भाषावैज्ञानिकों ने मानवीय भाषा के अभिलक्षणों की चर्चा में सृजनात्मकता को विशेष गुण माना है। इसके फलस्वरूप बालक असंख्य नवीन वाक्यों की रचना एवं प्रयोग करता है। बालक का भाषायी प्रयोग नवीन है, विलक्षण है। प्रत्येक वाक्य की निजी नवीनता एवं विलक्षणता है जो प्रयोग विशेष के संदर्भ में ग्राह्य हैं। ये प्रयोग भाषा के उच्चरित संदर्भों में वक्ता द्वारा व्यक्त तथा श्रोता द्वारा बोधगम्य होते हैं। मानव शिशु भाषा की इस जटिलता तथा सृजनात्मकता पर किस प्रकार अधिकार पा लेता है इस प्रश्न का उत्तर विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से दिया है।

क्षमता के सिद्धांत के अनुसार यह जन्मजात क्षमता ही भाषायी उद्भासन प्रक्रिया द्वारा भाषायी विकास के विविध स्तरों से विकसित होती हुई रचनात्मक अभिव्यक्ति की पूर्णता को प्राप्त होती है। विविध स्तरों पर बालक की त्रुटियाँ वस्तुतः इसी सृजनात्मकता की द्योतक हैं। भाषायी विकास के क्रम में विभिन्न संदर्भों के अनुकूल शब्दों के चयन, वाक्य संरचना तथा अभिव्यक्ति कुशलता द्वारा वस्तुतः इस विलक्षणता के ही प्रमाण मिलते हैं। विचार, कल्पना तथा भाषा का संबंध इस सृजनात्मकता का ही द्योतक है। भाषा व्यवहार की शैलीगत विविधता में इस प्रवृत्ति के ही दर्शन होते हैं। अनुभव क्षेत्र का विस्तार तथा भाषायी संपर्क की सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की विविधता इस कुशलता के विकास में आवश्यक घटक है।

3.3. भाषायी विकास के विविध पक्षों एवं स्तरों में पारस्परिक संबंध

भाषायी विकास के विविध पक्षों का अध्ययन तार्किक, भाषावैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पृथक रूप से किया जा सकता है। परंतु वस्तुतः ये पक्ष परस्पर संबंधित हैं। किसी एक पक्ष का पूर्ण विकास हो जाने पर अन्य पक्ष विकसित हो यह स्थिति नहीं होती है। यह संभव नहीं है कि ध्वनि का विकास पूरा हो जाने पर शब्द रूपों का विकास प्रारंभ होता हो और शब्द रूपों का पूर्णतया विकास हो जाने पर आर्थी पक्ष एवं तत्पश्चात संरचनात्मक पक्ष विकसित होते हों। विशिष्ट परिस्थितियों में एकाधिक पक्ष अन्य पक्षों से अत्यधिक संबद्ध होते हैं। भाषायी विकास क्रम में पूर्वापर क्रम केवल विकास की दिशा को द्योतित करता है, स्तर अथवा पक्ष विशेष की असंबद्धता को नहीं। विभिन्न अध्ययनों का सारांश प्रस्तुत करते हुए मैकार्थी की मान्यता है कि परिपक्वता के सामान्य द्योतक (शब्द भंडार, उच्चारण-योग्यता,

वाक्य की लंबाई, तथा वाक् त्रुटियाँ) परस्पर प्रगाढ़ रूप से संबद्ध हैं केवल शब्द भंडार ही एक मात्र अपवाद माना जा सकता है। इस सहसंबद्धता में वृद्धावस्था में कुछ कमी आ सकती है। भाषायी परिपक्वन तथा मानसिक आयु अथवा बुद्धि लब्धि में सकारात्मक संबंध स्थापित किया जाता है। कहा जा सकता है कि भाषायी विकास के विविध पक्षों की संबद्धता एक ओर भाषायी परिपक्वन का द्योतक है तो दूसरी ओर मानसिक विकास का भी परिचायक है।

इसी प्रकार भाषायी पक्षों तथा भाषायी स्तरों में भी परस्पर संबद्धता वर्तमान रहती है। भाषायी घटकों का विकास निश्चित आयु तथा विकास क्रम में होता है। भाषायी विकास के विविध पक्षों में कालिक विकास का संदर्भ वस्तुतः इस परस्पर संबद्धता का ही प्रमाण है। भाषा का प्रयोक्ता मानव शिशु परिपक्वन के क्रम में ही भाषा की विविध व्यवस्थाओं पर अधिकार पाने में समर्थ होता है। शारीरिक तथा मानसिक विकास के क्रम में बालक सामाजिकता के महत्वपूर्ण साधन भाषा का प्रयोग वैयक्तिक तथा सामाजिक प्रयोजनों के लिए करता है। भाषायी घटकों तथा विकास के स्तरों की परस्पर संबद्धता इस तथ्य से भी प्रमाणित होती है कि बालक के किसी भी प्रकार के विकास की चर्चा में भाषायी विकास सामान्यतः उसके मानसिक विकास के मापन का प्रमुख आधार बनता है। इसी प्रकार सामाजिक तथा वैयक्तिक विकास में भी भाषा प्रमुख निर्धारक तत्व है।

3.4. भाषायी विकास में व्यक्तिगत भिन्नताएँ

भाषा-विकास व्यक्ति सापेक्ष प्रक्रिया है। भाषा विकास के विविध पक्षों तथा स्तरों में परस्पर संबद्धता होने पर भी बालक के भाषायी विकास में समरूपता के सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। अतः बालक के भाषायी विकास में व्यक्तिगत भिन्नताओं का होना स्वाभाविक है। इन भिन्नताओं के स्वरूप तथा कारणों पर यदि गंभीरता से विचार किया जाए तो निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं।

बालक का प्रारंभिक भाषायी परिवेश सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है। यह बाह्य घटक भाषा विकास की गति को मुख्य रूप से प्रभावित करता है। कहा जा चुका है कि भाषा विकास के विविध पक्षों में विकास-क्रम की दृष्टि से समानता होती है। सभी बालकों में ध्वनि, शब्द, अर्थ एवं व्याकरणिक संरचना का विकास इसी अनुक्रम से होता है। परंतु इसके विकास की गति में भिन्नता पाई जाती है। प्रारंभिक भाषायी परिवेश की समृद्धता भाषायी विकास में सहायक है। बालक को परिवार में भाषा का जितना समृद्ध पर्यावरण मिलता है, भाषायी प्रयोग के जितने ही अधिक अवसर उपलब्ध होते हैं, भाषायी विकास सामान्यतः उतना ही अधिक

समृद्ध एवं परिपुष्ट होता है। इसका प्रतिफलन औपचारिक शिक्षा के प्रारंभिक स्तरों पर होता है।

सामाजिक आर्थिक स्तर के अनुरूप पारिवारिक जीवन एवं भाषायी व्यवहार के विविध रूप दृष्टिगत होते हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों ने उच्च सामाजिक आर्थिक स्तरों पर भाषायी विकास की तीव्र गति का उल्लेख किया है, परंतु इस संबंध में अंतिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सामाजिक तथा आर्थिक स्तर भाषा की गुणात्मक भिन्नता के प्रमुख आधार बनते हैं, मात्रात्मक भिन्नता के अन्य विविध स्रोत हैं—बालक के लालन पालन का ढंग, उसके प्रारंभिक अनुभव भाषा-विकास को मंद अथवा गतिशील कर सकते हैं। एकांतिक वातावरण, बोलने के लिए प्रोत्साहन का अभाव, उपेक्षा का दृष्टिकोण बालभाषा का अधिक समय तक प्रयोग आदि भाषायी विकास में बाधक हैं।

बालक के भाषायी विकास में वयस्कों का अधिक संपर्क, उनके साथ भाषा व्यवहार का अधिकतम अवसर विशेष महत्व रखता है। इससे भाषा विकास की गति तीव्र होती है। कुछ विद्वानों के अनुसार वयस्कों के अधिक संपर्क में रहने वाले बालकों का भाषायी विकास उन बालकों की अपेक्षा अधिक होता है जो केवल समवयस्कों से ही बातचीत करते रहते हैं। इसका प्रमुख कारण संभवतः यह है कि भाषा-उपार्जन के क्रम में वयस्क भाषायी प्रारूपों का अधिक महत्व है। प्रारंभिक स्तर पर इनके अनुकरण के आधार पर ही भाषायी कुशलता गठित होती है।

बालक के भाषायी विकास में लैंगिक भिन्नता किस सीमा तक नियामक तत्व हैं इसका अध्ययन भी कुछ विद्वानों ने किया है। मैकार्थी ने बालकों की तुलना में बालिकाओं के भाषायी विकास की अपेक्षाकृत तीव्र गति का उल्लेख किया है। इस संबंध में अंतिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता परंतु यह निश्चित है कि इसका संबंध बच्चों के लालन-पालन की रीतियों तथा उस सांस्कृतिक समुदाय में बालक बालिकाओं के प्रति अभिव्यक्त दृष्टिकोण से है।

भाषायी विकास में मानसिक तथा संवेगात्मक घटकों का भी निश्चित महत्व है। मानसिक एवं संवेगात्मक विकास का प्रभाव भाषा विकास पर पड़ता है। यद्यपि सभी सामान्य बालकों में भाषायी क्षमता जन्म से ही वर्तमान होती है, परंतु तीव्र बुद्धि के बालक का प्रत्ययात्मक विकास अपेक्षाकृत तीव्र गति से होता है। अमूर्तीकरण की क्षमता भी उसमें जल्दी विकसित हो जाती है। विविध भाषायी घटकों की प्रयोग कुशलता प्रतिभावान बालकों में सामान्य बालकों की अपेक्षा अधिक और जल्दी विकसित होती है। पिछड़े हुए बालकों का भाषायी विकास न केवल मंद-गति से होता है बल्कि वे भाषायी संरचना पर भी समुचित अधिकार पाने में असमर्थ

रहते हैं। स्पष्ट है कि तीव्र बुद्धि तथा मंद बुद्धि के बालकों में भाषा संबंधी गुणात्मक एवं मात्रात्मक भिन्नता पाई जाती है।

संवेगात्मक पक्ष की अत्यधिक प्रबलता भी भाषायी विकास में कुछ समस्याओं का कारण बनती है, यथा हकलाहट आदि। परंतु भाषा के प्रति संवेगात्मक लगाव भाषायी निष्ठा का भी द्योतक है।

किसी प्रकार का शारीरिक विकार भाषा-विकास को न्यूनाधिक मात्रा में प्रभावित करता है। अंधे बालकों में भाषा के उच्चरित रूप के व्यवहार की कुशलता अधिक विकसित होती है। परंतु बहरे तथा किसी प्रकार के वाक् दोष से पीड़ित बच्चों में भाषायी विकास की गति मंद अथवा अवरुद्ध हो सकती है। शारीरिक दोषों के निदान एवं सुधारात्मक शिक्षा के द्वारा बालक के भाषायी विकास में समुचित प्रगति हो सकती है।

निष्कर्ष यह है कि बालक के भाषायी विकास में व्यक्तिगत भिन्नता दृष्टिगत होती है। चूंकि प्रत्येक बालक दूसरे बालक से भिन्न व्यक्तित्व की विशिष्टताओं से संयुक्त होता है अतः भाषायी विकास में भिन्नता का होना स्वाभाविक है।

4
द्वितीय भाषा अधिगम

4.0. भाषा अधिगम अन्य विषयों की तुलना में एक विशिष्ट प्रक्रिया है। विशिष्टता का कारण भाषायी प्रकृति की जटिलता एवं कौशल परक व्यवहार है। मातृभाषा में बालक भाषा की इन जटिलताओं एवं कुशलताओं पर सहज रूप से अधिकार पा लेता है परंतु द्वितीय भाषा अधिगम की प्रक्रिया में इन जटिलताओं के कारण अधिगम संबंधी अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

अध्येता, विशेष कर वयस्क अध्येता, मातृभाषा सीखने तथा उसमें पर्याप्त कुशलता अर्जित करने के बाद ही अन्य भाषा सीखता है। वयस्क अध्येता के संदर्भ में मातृभाषा की आदतें अपेक्षाकृत अधिक सुदृढ़ हो जाती हैं एवं भाषा अधिगम की प्रक्रिया कुछ दृष्टियों से जटिलतर हो जाती है। अतः द्वितीय भाषा अधिगम की प्रक्रिया पर विचार करने के पूर्व यह आवश्यक है कि मातृभाषा, द्वितीय भाषा तथा विदेशी भाषा संबंधी संकल्पनाओं से स्पष्टतया परिचय प्राप्त कर लिया जाय।

मातृभाषा, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, बालक की अपनी भाषा है, जिसके साथ उसका आत्मीयता का संबंध और रागात्मक लगाव होता है। इसके माध्यम से ही वह निकटवर्ती वातावरण को अन्वेषित करता है तथा अपनी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। उसका संज्ञानात्मक विकास, उसकी संकल्पनाएँ इसके माध्यम से ही गठित एवं विकसित होती हैं। यही वह प्रारंभिक आधार है जिसके द्वारा उसका भाषायी व्यक्तित्व निर्मित होता है, भाषायी समुदाय के सदस्य के रूप में उसकी अस्मिता निर्धारित होती है। मातृभाषा ही बालक के सामाजीकरण का प्रमुख आधार है। समाज और उसके सांस्कृतिक संदर्भों में व्यक्ति मातृभाषा के माध्यम से ही अपना अस्तित्व द्योतित कर पाता है। वस्तुतः मातृभाषा उसके बौद्धिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास का प्रमुख आधार है। अतः मातृभाषा को अमूर्त संकल्पना नहीं माना जा सकता बल्कि वह एक प्रत्यक्ष सामाजिक वास्तविकता है, व्यक्तित्व के विकास एवं उसके समाजीकरण से संबद्ध भाषायी प्रक्रिया है, तथा सम्प्रेषण का प्रारंभिक एवं प्रभावी माध्यम है।

शिक्षा के संदर्भ में मातृभाषा का मानकरूप ही सामान्यतः शिक्षा का माध्यम बनता है। अतः भाषायी कौशलों का विकास सर्वप्रथम मातृभाषा में ही संभव है; मुख्य कौशलों पर सर्वभौम अधिकार का तो यह एक मात्र साधन है ही। अतः मातृभाषा की शिक्षा के संदर्भ में भाषा-अधिगम की स्वाभाविक अनौपचारिक स्थितियाँ, सामाजिक संदर्भ तथा बाल अध्येता की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि मुख्य रूप से सहायक होते हैं।

द्वितीय भाषा, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, अध्येता के लिए मातृभाषा से इतर दूसरी भाषा है। शिक्षण के संदर्भ में द्वितीय अथवा अन्य भाषा से तात्पर्य एक राष्ट्र की उन सभी भाषाओं से है जो मातृभाषा से इतर परंतु सांस्कृतिक दृष्टि से एक सूत्रता में आबद्ध हैं। एक राष्ट्र में बोली जाने वाली भाषाएँ सम स्रोतीय एवं भिन्न स्रोतीय भी हो सकती हैं। अतः अधिगम तथा शिक्षण की दृष्टि से द्वितीय भाषा को दो वर्गों में रखा जा सकता है—सम श्रोतीय भाषाएँ तथा भिन्न स्रोतीय भाषाएँ। समस्रोतीय भाषाओं में विविध भाषायी घटकों की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक समानता हो सकती है। इससे अधिगम प्रक्रिया में सुगमता होती है। स्रोतीय भिन्नता, भाषा अधिगम में कठिनाई तथा व्यवधान उत्पन्न करती है। चूँकि प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्टता होती है अतः समानता होते हुए भी विशिष्टता अवश्यंभावी है। अन्य भाषा अधिगम में छात्र इन विशिष्टताओं पर ही अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

अन्य भाषा का अधिगम बहुभाषी समाज में आंशिक अथवा पूर्ण रूप से अनौपचारिक हो सकता है। परंतु विद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में यह पूर्णतया औपचारिक है। अन्य भाषा तथा विदेशी भाषा का अंतर मुख्यतः इस तथ्य पर ही आधारित होता है। द्वितीय भाषा अधिगम सामान्यतः औपचारिक स्थितियों में घटित होता है परंतु अनौपचारिक अधिगम परिवेश भी उपलब्ध हो सकता है। इसके विपरीत विदेशी भाषा अधिगम नितांत औपचारिक अधिगम परिवेश में ही संभव है। अन्य भाषा तथा विदेशी भाषा में आधारभूत भिन्नता केवल औपचारिकता पर ही केंद्रित न होकर संस्कृतिगत पार्थक्य पर भी आधारित है। इस स्थिति में औपचारिक तथा अनौपचारिक परिवेश पूरक एवं सहायक होते हैं।

विदेशी भाषा वस्तुतः दूसरे राष्ट्र अथवा भूखंड की भाषा है, जिसकी अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता होती है। भाषा का विदेशीपन वस्तुतः विविध भाषायी घटकों, विशेषकर वाक्य संरचना के स्तर पर दृष्टिगत होता है। प्रशासनिक सत्ता से संबद्ध होने पर विदेशी भाषा शासित वर्ग पर आरोपित कर दी जाती है, समस्त राजकीय कार्यों में व्यवहृत एवं प्रयुक्त होती है। इतना ही नहीं उसके साथ राजकीय गरिमा

की भावना भी संयुक्त हो जाती है। विशिष्ट परिस्थितियों में भाषा विशेष के व्यवहार-क्षेत्र के आधार पर विदेशीपन की संकल्पना उदार हो जाती है और उस भाषा का व्यापक धरातल पर प्रयोग होता है। भारत वर्ष में अंग्रेजी की भी यही स्थिति रही है। परंतु सामान्यतः भाषा के मूल में निहित विदेशीपन ही भाषा अधिगम एवं शिक्षण की समस्याओं का मूल कारण है। अतः विदेशी तथा देशीय अन्य भाषाओं के अधिगम एवं शिक्षण में संस्कृतिपरक भिन्नता पर दृष्टि केंद्रित करना आवश्यक हो जाता है।

अन्य भाषा का अध्येता बालक तथा वयस्क दोनों ही हो सकते हैं। अतः सहज ही प्रश्न उत्पन्न होता है क्या बालक तथा वयस्क अध्येता की भाषा-अधिगम-प्रक्रिया समान है? क्या वयस्क अध्येता अन्य भाषा पर मातृभाषावत अधिकार पाने में समर्थ होता है? इनका समुचित उत्तर प्राप्त करने के लिए अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया से परिचित होना आवश्यक है।

मातृभाषा में भाषायी व्यवहार की पर्याप्त कुशलता अर्जित करने के पश्चात् अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया को मातृभाषा अधिगम से नितांत भिन्न प्रक्रिया नहीं माना जा सकता। अन्य भाषा अधिगम में उसी दृष्टिकोण का समावेश होता है जिस दृष्टिकोण से मातृभाषा भाषी संसार को देखने की, प्रत्यक्षीकरण करने की आदत गठित कर लेता है। वस्तुतः इसे भाषा में निहित संस्कृति के अधिगम की प्रक्रिया माना जा सकता है (पिट कार्डर 1973)। यह कार्य असंभव नहीं, परंतु कठिन अवश्य है। अन्य भाषा का अधिगम निश्चय ही परिचित परिवेश अथवा वस्तुओं के लिए नवीन शब्दावली के चयन, स्वतः अनुवाद-युक्ति के प्रयोग एवं द्विभाषी कोश के आत्मीकरण की प्रक्रिया मात्र नहीं है। द्वितीय भाषा का अधिगम वस्तुतः उपार्जित भाषायी कौशलों एवं ज्ञान को नवीन संदर्भों में अनुकूलित करने एवं विस्तार देने की प्रक्रिया है। इसे कौशलों के नवीन कुलक को नये सिरे से पुनः सीखने की प्रक्रिया नहीं कहा जा सकता है। वस्तुतः सभी भाषाओं में कुछ आधारभूत सार्वभौम तत्व होते हैं; उनकी बाह्य एवं तथाकथित कृत्रिम विशेषताओं में ही भिन्नता दृष्टिगत होती है। अन्य भाषा अधिगम मूलतः इन विशेषताओं पर अधिकार पाने की प्रक्रिया से संबद्ध है।

विगत कुछ दशाब्दियों में बालक के अन्य भाषा-अधिगमपरक अनुसंधानों (रविम 1974, मिलन 1974) से यह संकेत मिलता है कि भाषायी विकास का क्रम लगभग वही रहता है जिसका उल्लेख विद्वानों (ब्राउन आदि) ने मातृभाषा उपार्जन के क्रम में किया है। इन अनुसंधानों से यह भी स्पष्ट होता है कि बालक के अन्य भाषा अधिगम

की प्रक्रिया कई महत्वपूर्ण दृष्टियों से मातृभाषा उपार्जन की सामान्य प्रक्रिया से मिलती जुलती है।

बाल अध्येता के अन्य भाषा अधिगम से संबंधित अनुसंधानों के आधार पर इस संबंध में निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय हैं—

प्रत्येक सामान्य बालक में क्रियात्मक, संज्ञानात्मक तथा भावात्मक एवं संवेगात्मक शक्तियाँ वर्तमान होती हैं। अतः अन्य भाषा के अधिगम में बालक की संज्ञानात्मक संरचना का महत्वपूर्ण स्थान है। इस विचारधारा के अनुसार बालक के मस्तिष्क में अन्य भाषा की संरचनाओं को ऊपर से लादने का, आरोपित करने का प्रयत्न नहीं किया जाता बल्कि यह देखने का प्रयत्न अवश्य किया जाता है कि बालक के मस्तिष्क में वस्तुतः वे कौन सी शक्तियाँ हैं जो भाषा अधिगम को निर्देशित एवं नियंत्रित करती हैं। अधिगमपरक इस दृष्टिकोण को नितांत नवीन उद्भावना भी नहीं माना जा सकता। वस्तुतः यह विचारधारा मातृभाषा-उपार्जन में रोज़र ब्राऊन विकारात्मक मनोविज्ञान में मुख्यतः पियाजे और भाषाविज्ञान में चामस्की के योगदान का मूल आधार है (डूले एवं बर्ट 1975)।

भाषा अधिगम में अधिगम-परिवेश का विशेष महत्व है। यह परिवेश मुख्यतः दो प्रकार का हो सकता है—भाषिक तथा भाषिकेतर। इस संदर्भ में कुछ तथ्य विचारणीय हैं, यथा—अध्येता अन्य भाषा को सहज परिवेश में सीख रहा है अथवा बोलियों को, समवयस्कों की भाषा सीख रहा है अथवा वयस्कों की। इन सबके आधार पर बालक की संज्ञानात्मक संरचना और भाषा-अधिगम प्रक्रिया के संबंध में निश्चित रूप में कुछ कहा जा सकता है।

सहज जिज्ञासा होती है कि भाषा अधिगम प्रक्रिया की निष्पत्ति क्या है? बालक के अन्य भाषायी प्रयोग का स्वरूप क्या है? इस संबंध में अधिकांश विद्वानों की मान्यता यह है कि अधिगम के क्रम में बालक द्वारा प्रयुक्त भाषा न तो मातृभाषा का प्रतिनिधित्व करती है और न लक्ष्य भाषा का। वस्तुतः यह इन दोनों का मिश्रित एवं नवीन रूप है जो अध्येता की अधिगम योग्यता तथा अन्य संबंधित घटकों से नियंत्रित होती है। विद्वानों ने अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया के संदर्भ में भाषा के इस स्वरूप को "संक्रांतिपरक" भाषा की संज्ञा दी है। पिट कार्डर ने इस संक्रांतिपरक भाषा को "वैयक्तिक बोली" माना है जबकि सेलिंकर इसे "अंतरभाषा" मानते हैं। अंतर भाषा की स्थिति वस्तुतः मातृभाषा और अन्य भाषा के बीच की स्थिति है।

द्वितीय भाषा अधिगम तथा इससे संबंधित विविध संकल्पनाओं को अगले पृष्ठ पर दिए गए आरेख 3 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

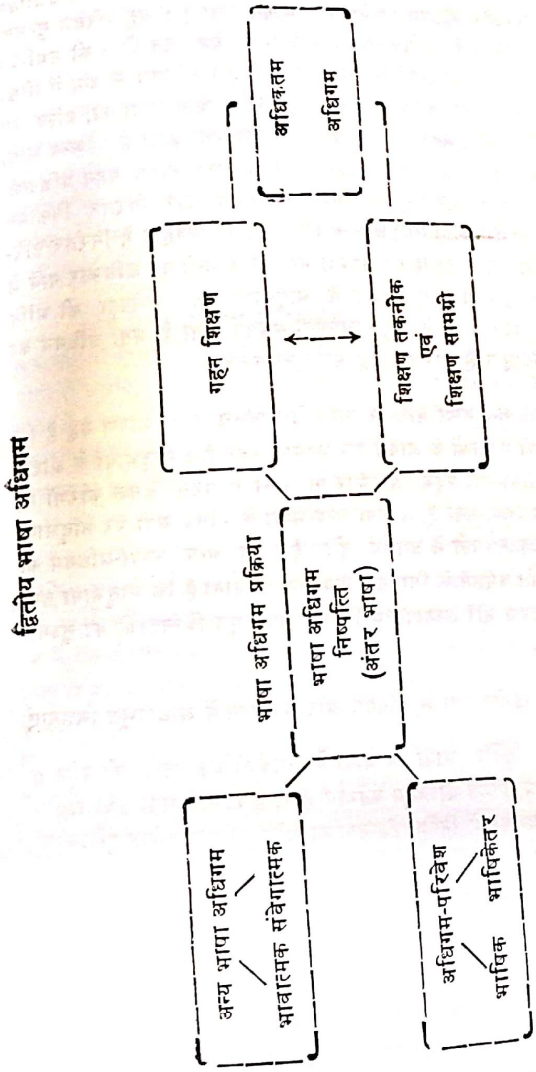

आरेख —3

द्वितीय भाषा अधिगम

अन्य भाषा अधिगम एक ओर भावात्मक एवं संवेगात्मक घटकों से प्रभावित होता है तो दूसरी ओर अधिगम परिवेश से नियंत्रित होता है। यह परिवेश मुख्यतः दो प्रकार का हो सकता है, भाषिक तथा भाषिकेतर परिवेश। इन दोनों की समन्वित कार्यकारिता से भाषा-अधिगम-प्रक्रिया गतिशील होती है। अधिगम के क्रम में सीखी गई भाषा न तो मातृभाषा का प्रतिरूप होती है और न अन्य भाषा का, बल्कि इन दोनों के मिले-जुले रूप "अंतर भाषा" के रूप में दृष्टिगत होती है। अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया इस स्तर पर ही अवरुद्ध नहीं हो जाती, बल्कि गहन प्रशिक्षण, प्रभावी शिक्षण तकनीकों एवं समुचित शिक्षण सामग्री के द्वारा निरंतर विकसित होती रहती है। शिक्षण की प्रक्रिया के फलस्वरूप भाषायी व्यवहार में निरंतर परिवर्तन और परिवर्धन होता रहता है। अध्येता भाषायी कौशलों पर अधिकार पाने में अधिक सक्षम होता है। परंतु अन्य भाषा में मातृभाषा भाषी प्रयोक्ता की भाँति भाषायी कुशलता प्राप्त करने में वह सामान्यतः असमर्थ होता है अतः अधिगम का स्तर अधिकतम ही रहता है चरमतम नहीं माना जा सकता।

स्पष्ट है कि अन्य भाषा अधिगम एक जटिल प्रक्रिया है। कारण यह है कि अध्येता के सम्मुख दो भाषाओं के आदर्श रूप वर्तमान रहते हैं। मातृभाषा के आदर्श रूपों पर तो छात्र सामान्यतः सहज अधिकार पा लेता है, परंतु अनेक कारणों से, जिनका आगे उल्लेख किया गया है, अध्येता अन्य भाषा के मानक रूपों पर मातृभाषा भाषी के समान अधिकार पाने में असमर्थ होता है। अतः अन्य भाषा-अधिगम की प्रक्रिया को भली-भांति समझने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि मातृभाषा तथा द्वितीय भाषा के अधिगम और अध्यापन में निहित आधारभूत भिन्नताओं का सूक्ष्मावलोकन किया जाय।

4.1. मातृभाषा तथा द्वितीयभाषा के अधिगम और अध्यापन में आधारभूत भिन्नताएँ

मातृभाषा एवं द्वितीय भाषा में भाषा के सार्वभौमिक तत्वों की दृष्टि से समानता होते हुए भी प्रकृतिगत वैशिष्ट्य वर्तमान होता है। मातृभाषा तथा द्वितीय भाषा अधिगम और अध्यापन में निहित भिन्नता का विवेचन निम्नलिखित दृष्टिकोणों से किया जा सकता है।

4.1.1. उद्भासनगत अंतर

बालक निकटवर्ती भाषायी परिवेश में उद्भासन की प्रक्रिया द्वारा मातृभाषा का उपार्जन करता है। सम्प्रेषण के साधन के रूप में क्रमशः वह भाषा का प्रयोग करने लगता है। भाषा की विविध व्यवस्थाओं पर उसका सहज अधिकार हो जाता है। बालक परिवार तथा भाषायी समुदाय के सहज संपर्क एवं व्यक्तिगत तथा

सामाजिक आवश्यकता के फलस्वरूप मातृभाषा को चतुर्दिक परिवेश से अनौपचारिक रूप से सीखता है। मातृभाषा से उद्भासित होने की प्रक्रिया सतत रूप से गतिशील रहती है। फलस्वरूप मातृभाषा अधिगम के साथ सहजता एवं अनिवार्यता के अभिलक्षण स्वतः समाविष्ट हो जाते हैं। औपचारिक शिक्षा के संदर्भ में भी मातृभाषा जिज्ञासा की संतुष्टि, आत्माभिव्यक्ति, ज्ञानार्जन तथा व्यक्तित्व के विकास का प्रमुख स्रोत बनती है। तदनुकूल अधिगम एवं शिक्षण प्रक्रिया भी सहज एवं स्वाभाविक रूप से विकसित होती है। निष्कर्ष यह है कि मातृभाषा में बाल अध्येता के लिए भाषायी अनुभव नितांत नवीन उपलब्धि है। भाषा विषयक संकल्पनाओं से वह पूर्व परिचित नहीं होता।

अन्य भाषा अधिगम में किशोर अथवा वयस्क अध्येता न केवल भाषायी संकल्पनाओं से परिचित होता है बल्कि भाषायी संकल्पनाएँ पूर्णतया विकसित भी होती हैं। वस्तुतः द्वितीय भाषा अधिगम परिवेश मातृभाषा अधिगम परिवेश से भिन्न होता है। भाषा अधिगम में मातृभाषा निकटस्थ परिवेश से संपर्क स्थापित करने का, सम्प्रेषणात्मक व्यवहार का अनिवार्य साधन है। अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया सामान्यतः इस अनिवार्यता से मुक्त होती है। औपचारिक शिक्षा के क्रम में यदि किसी प्रकार की अनिवार्यता है भी तो उसकी प्रकृति में भिन्नता है। स्पष्ट है कि अन्य भाषा औपचारिक परिवेश में सीखी गई विशिष्ट प्रयत्न साध्य प्रक्रिया है। अध्येता परिचित अनुभव क्षेत्र के लिए नवीन भाषायी प्रतीकों को सीखने का प्रयास करता है। अतः भाषा अधिगम साधन न बनकर साध्य बन जाता है। यद्यपि अन्य भाषा अधिगम में "सम्प्रेषणात्मक कुशलता" के विकास को विशेष महत्व दिया जाता है, परंतु कुशलता की प्रकृति स्वतः उद्भूत न होकर प्रत्यारोपित होती है। भाषायी उपलब्धियों के आधार पर इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। स्पष्ट है कि मातृभाषा की तुलना में अन्य भाषा का उद्भासन सीमित एवं नियंत्रित होता है अतः भाषा अधिगम में अंतर होना स्वाभाविक है।

4.1.2. संज्ञानात्मक परिपक्वन

मातृभाषा तथा द्वितीय भाषा अधिगम में भिन्नता का एक प्रमुख कारण अन्य भाषा के अध्येता का संज्ञानात्मक परिपक्वन है। इस संदर्भ में भाषा अधिगम में "जटिलतम काल" का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। अन्य भाषा अधिगम के संबंध में यह धारणा प्रचलित है कि बाल अध्येता वयस्क अध्येता की अपेक्षा अधिक सरलता और सफलता से भाषा सीखने में समर्थ होता है। अनेक विद्वान यह मानते हैं कि यौवनारंभ के प्रारंभिक काल में जब मस्तिष्क का पूर्ण विकास (Cerebral Lateralization) हो जाता है तब भाषा अधिगम की योग्यता समाप्त हो जाती है (लेनेबर्ग

1967, स्कोवेल 1969)। इस विचारधारा के अनुसार "जटिलतम काल" के बाद भाषा अधिगम में सफलता का अनुपात कम हो जाता है। परंतु क्रैशन (1973) के अनुसार मस्तिष्क का विकास यौवनारंभ के बहुत पहले ही पूरा हो जाता है अतः इसका संबंध न तो जटिलतम काल से है और न परवर्ती भाषा अधिगम से। वयस्कों द्वारा द्वितीय भाषा का प्रभावी अधिगम संभव है। अनेक वयस्क अध्येता बिना किसी औपचारिक शिक्षा के भी द्वितीय भाषा अधिगम में अधिक सफल होते हैं। अतः भाषा अधिगम में "जटिलतम काल" के शरीर वैज्ञानिक तर्क से सतर्क रहने की आवश्यकता है। इसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि भाषा अधिगम के विविध पक्षों की दृष्टि से बाल अध्येता वयस्कों की तुलना में अधिक सफल होते हैं। यद्यपि अन्य भाषा के किशोर एवं वयस्क अध्येता में अधिगम गत अंतर स्पष्टतया वर्तमान रहता है परंतु इस आयु वर्ग में सामान्यतः समानता की मात्रा भी अधिक पाई जाती है। इसके विपरीत बालक के मातृभाषा उपार्जन तथा बाल अध्येता के अन्य भाषा अधिगम में अपेक्षाकृत अधिक अंतर होता है (इनग्राम 1975)। कैटफोर्ड की भी यही मान्यता रही है कि वयस्क अध्येताओं की संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ अधिक परिपक्व होती हैं अतः वे बालकों की तुलना में जल्दी भाषा सीख लेते हैं। भाषा अधिगम में उनकी तथाकथित कठिनाई "द्वितीय भाषा अधिगम" की भिन्न परिस्थितियों के कारण होती है न कि जन्मजात शक्ति की विशेष न्यूनता के कारण (कैटफोर्ड 1969)। अतः द्वितीय भाषा के अधिगम के संदर्भ में जटिलतम काल की संकल्पना को विशेष महत्व नहीं दिया जा सकता। इसके आधार पर मातृभाषा तथा अन्य भाषा अधिगम प्रक्रिया का अंतर भी मुख्य रूप से स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

अन्य भाषा के किशोर अध्येता, विशेष रूप से वयस्क अध्येता का संज्ञानात्मक विकास मातृभाषा के अध्येता की तुलना में अधिक समृद्ध होता है। अतः बालक के मातृभाषा उपार्जन के विविध स्तरों यथा एक पदीय तथा द्विपदीय प्रयोगों का अन्य भाषा अधिगम में नितांत अभाव होता है। अपनी संज्ञानात्मक क्षमता के कारण वयस्क अध्येता भाषा अधिगम में अनेक दृष्टियों से मातृभाषी बालक की अपेक्षा अधिक समर्थ होता है।

मातृभाषा में बालक का भाषायी और संज्ञानात्मक विकास साथ-साथ होता है, अन्य भाषा अधिगम में ये दोनों भिन्न प्रक्रियाएँ हैं। वयस्क अध्येता की संज्ञानात्मक शक्तियाँ बाल अध्येता की तुलना में अधिक परिपक्व होती हैं अतः अन्य भाषा की ध्वनि व्यवस्था के अधिगम में वह सामान्यतः बाल सुलभ सहजता एवं सुगमता से वंचित रहता है।

सहज ही जिज्ञासा होती है कि अन्य भाषा के अध्येता का संज्ञानात्मक विकास भाषा-अधिगम-प्रक्रिया को किस रूप में प्रभावित करता है। अध्ययनों के आधार पर

कहा जा सकता है कि बालक का भाषायी अनुभव तथा समृद्ध संज्ञानात्मक विकास भाषा अधिगम की प्रक्रिया को मात्रात्मक दृष्टि से प्रभावित करते हैं। जहाँ तक गुणात्मकता का प्रश्न है मातृभाषा तथा अन्य भाषा का अध्येता लगभग मिलती-जुलती समान अधिगम युक्तियों का ही प्रयोग करता है, फिर भी उपलब्धिगत भिन्नता दृष्टिगत होती है।

4.1.3. भाषा अधिगम में सन्निहित मनोवैज्ञानिक अधिगम युक्तियाँ

भाषा उपार्जन के क्षेत्र में किए गए अनुसंधानों से स्पष्ट होता है कि बालक निकटवर्ती परिवेश से भाषायी सामग्री को आत्मसात करता है और उच्चारों का सामान्यीकरण करने के लिए व्यवस्थित व्याकरण गठित करता है (मैकनील 1970, स्लोबिन 1971)। वह अनुकरण और पुनरावृत्ति की युक्तियों का ही उपयोग नहीं करता, बल्कि ऐसी युक्तियों का भी प्रयोग करता है जिसके द्वारा भाषा की वाक्यीय संरचना का सरलीकरण हो सके और उसमें नियमितता स्थापित की जा सके। सरलीकरण की अधिगम युक्ति को केवल मातृभाषा उपार्जन की ही विशिष्टता नहीं माना जा सकता, अन्य भाषा के अधिगम में भी इस युक्ति का समुचित उपयोग होता है। अन्य भाषा के बाल तथा वयस्क अध्येताओं की त्रुटियों के आधार पर भी यही निष्कर्ष निकलता है कि वे अध्येय भाषा से प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध होते हैं और भाषा विशेष से संबद्ध अनुभवों का नवीन परिस्थितियों में उपयोग करते हैं। अन्य भाषा के बालक तथा वयस्क दोनों ही प्रकार के अध्येताओं में भाषा के सामान्यीकरण तथा सादृश्यता के आधार पर नवीन रूपों के गठन की क्षमता होती है।

पियाजे ने भाषा अधिगम में "संज्ञानात्मक तत्परता" का उल्लेख किया है। संज्ञानात्मक युक्तियों को बाल तथा वयस्क दोनों ही प्रकार के अध्येताओं के भाषा अधिगम की विशेषता माना जाता है। द्वितीय भाषा अधिगम की युक्तियों की व्याख्या करते हुए सेलिंकर का मत है कि इनमें अध्येय भाषा की व्यवस्था के सरलीकरण की प्रक्रिया समाविष्ट होती है। संभवतः इसका उद्देश्य अधिगम-भार को कम करना है। अध्येय भाषा के नियमों का अति सामान्यीकरण; व्याकरणिक जटिलताओं को सरलीकृत करने एवं अनसीखे भाषायी नियमों से बचने की प्रवृत्ति बालक तथा वयस्क दोनों ही प्रकार के अध्येताओं में पाई जाती है। अंतर भाषा के अंतराल को वह सीखी गई भाषा के प्रयोगों से पूरा करता है। अतः इन्हें द्वितीय भाषा अधिगम की महत्वपूर्ण संज्ञानात्मक युक्तियाँ माना जा सकता है। इस दृष्टि से मातृभाषा अधिगम तथा अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रियाओं में निहित समानता तथा भिन्नता का विश्लेषण कुछ सीमा तक संभव है।

4.1.4. सांस्कृतिक संदर्भ

मातृभाषा तथा अन्य भाषा अधिगम में प्रमुख अन्तर सांस्कृतिक संदर्भगत अंतर हैं। मातृभाषा अधिगम में बालक भाषा में निहित संस्कृति को सहज रूप से आत्मसात कर लेता है। शब्दों एवं उनके अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया में बालक भाषायी संस्कृति से सहज ही परिचित होता है। सांस्कृतिक घटकों के औपचारिक शिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। विविध भाषायी तत्वों में अंतर्भूत, सांस्कृतिक पक्ष को बालक स्वतः आत्मसात कर लेता है। परंतु अन्य भाषा यद्यपि व्यापक अर्थों में देश की सांस्कृतिक शृंखला से संबद्ध होती है, परंतु उसकी अपनी निजी सांस्कृतिक विशिष्टताएँ हैं जिसके कारण उसका भाषायी वैशिष्ट्य सुरक्षित रहता है। अतः मातृ-भाषा सीखने के क्रम में बालक जब दूसरी भाषा सीखता है तब भाषायी संस्कृति में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष शिक्षण की व्यवस्था का प्रश्न उत्पन्न होता है। संस्कृति का शिक्षण भाषा शिक्षण का अभिन्न अंग माना जाता है। अन्य भाषा के अध्यापन का मुख्य दायित्व छात्रों में सांस्कृतिक चेतना का विकास करना है। परंतु केवल औपचारिक शिक्षण के द्वारा अन्य भाषा के अध्येता में सांस्कृतिक समझ का समुचित रूप से विकास नहीं हो पाता। फलस्वरूप अन्य भाषायी प्रयोगों में मातृ भाषायी संस्कृति परिलक्षित होती है।

4.1.5. भाषायी प्रभाव

मातृभाषा तथा अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रियाओं में समानता होने पर भी अन्य भाषा अधिगम को मातृभाषा अधिगम का प्रतिरूप कदापि नहीं कहा जा सकता अन्य भाषा का अध्येता मातृभाषा से परिचित होता है, अतः अधिगम-प्रक्रिया पर मातृभाषा का प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है। मातृभाषा-उपार्जन के क्रम में भाषा की प्रवृत्ति से संबंधित अनेक प्राक्कल्पनाएँ बालक में सहजरूप से गठित हो जाती हैं। परंतु अन्य भाषा का अध्येता, चूँकि "भाषायी घटना" से परिचित होता है अतः इस प्रकार की प्राक्कल्पनाएँ उसमें सहज रूप से गठित नहीं होतीं।

अन्य भाषा-अधिगम-प्रक्रिया पर मातृभाषा के प्रभाव की अनिवार्यता को स्वीकारते हुए स्टर्न की मान्यता है कि इस महत्वपूर्ण घटक की न तो उपेक्षा की जा सकती है और न की जानी चाहिए। अन्य भाषा अधिगम पर मातृभाषा का प्रभाव दो रूपों में देखा जा सकता है—अंतरण तथा व्याघात। व्यतिरेकी विश्लेषण के उपागम के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वयस्क अध्येताओं के द्वितीय भाषा अधिगम में समरूप सफलता का अभाव होता है। चूँकि अन्य भाषा के अध्येताओं की अधिकांश त्रुटियों का संबंध मातृभाषा की संरचना से होता है अतः विद्वानों के अनुसार द्वितीय भाषा अधिगम में अंतरण की प्रक्रिया व्यवधान उत्पन्न करती है (लैडो 1957)।

बालक तथा वयस्क अध्येताओं के द्वितीय भाषा अधिगम की त्रुटियों के विश्लेषण पर आधारित प्रमाणों से भाषायी प्रभाव संबंधी कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

(1) द्वितीय भाषा के अध्येताओं की कुछ त्रुटियाँ मातृभाषा के अंतरण को द्योतित करती हैं, परंतु अधिकांश त्रुटियों से इसका संकेत नहीं मिलता।

(2) विविध भाषा भाषी अध्येताओं की अन्य भाषागत त्रुटियों में क्रमबद्धता और समानता दृष्टिगत होती है।

स्पष्ट है कि त्रुटियों का कारण केवल मातृभाषा का व्याघात न होकर कुछ अन्य कारण भी हैं यथा अति सामान्यीकरण एवं नियमों का सरलीकरण आदि। परंतु अन्य भाषा की अधिगम प्रक्रिया पर मातृभाषा के प्रभाव को उपर्युक्त तर्कों के आधार पर निरस्त नहीं किया जा सकता। वस्तुतः मातृभाषा को व्याघात के स्रोत के रूप में ही देखना उचित नहीं है, अध्येता के लिए यह संदर्भ बिंदु भी हो सकती है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसका प्रयोग अन्य भाषा का अध्येता आपातकालीन स्थिति में करता है। अन्य भाषा में अपने आप को भाषायी दृष्टि से असमर्थ पाने पर मातृभाषा के प्रयोग के अतिरिक्त अन्य भाषा के अध्येता के सामने कोई दूसरा विकल्प नहीं होता।

4.1.6. भावात्मक तथा मनोवैज्ञानिक स्थिति

मातृभाषा तथा अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया में कुछ समानताओं को स्वीकार करते हुए एवं अनेक दृष्टियों से अधिगम में अधिक समर्थ होने पर भी अन्य भाषा का वयस्क अध्येता मातृभाषी के समान दक्षता प्राप्त करने में असमर्थ होता है। इस संदर्भ में कुछ विद्वानों ने अंतर भाषा को प्रकार्यात्मक दक्षता का उल्लेख किया है। अध्येता जब यह अनुभव करने लगता है कि उसने अध्येय भाषा में इतनी दक्षता प्राप्त कर ली है जिसमें उद्देश्यों की पूर्ति होती है तो वह भाषा सीखना बंद कर देता है। वह ऐसी अंतर भाषा का प्रयोग करता है जिसमें त्रुटियाँ सुदृढ़ हो गई हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि अन्य भाषा अधिगम में वयस्क अध्येता बालकों से पिछड़े होते हैं। केवल यह संकेत मिलता है कि कुछ ऐसे भावात्मक तत्व हैं जिनके आधार पर मातृभाषा अधिगम तथा अन्य भाषा अधिगम और बालक तथा वयस्कों के भाषा अधिगम में निहित अंतर का विवेचन संभव है। मातृभाषा में यह भावात्मक एवं मनोवैज्ञानिक घटक भाषायी पक्षों के विकास में समानता के द्योतक हैं। इसके विपरीत अन्य भाषा में इनकी प्रकार्यात्मक भिन्नता तथा अध्येय भाषा की संस्कृति के प्रति सकारी दृष्टिकोण का अभाव भाषा अधिगम की प्रक्रिया को मुख्य रूप से प्रभावित करते हैं।

मातृभाषा तथा अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रियाओं में भिन्नता का निरूपण करने के साथ ही यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या अन्य भाषा के अध्येताओं में भी भाषा अधिगम संबंधी भिन्नताएँ वर्तमान होती हैं ? यदि ये भिन्नताएँ हैं तो इनका मुख्य कारण क्या है ? वस्तुतः अन्य भाषा के अध्येता में भाषा अधिगम की दृष्टि से व्यक्तिगत भिन्नताएँ परिलक्षित होती हैं। इनकी संक्षेप में चर्चा करना उचित है।

4.2. अन्य भाषा अधिगम में व्यक्तिगत भिन्नताएँ

अन्य भाषा की अधिगम प्रक्रिया में यद्यपि कई दृष्टियों से समानता का संकेत मिलता है परंतु भाषा के अध्येताओं में व्यक्तिगत भिन्नता भी समुचित मात्रा में वर्तमान रहती है। अधिगम प्रक्रिया से संबंधित विविध अनुसंधानों द्वारा उन विशिष्टताओं को निर्धारित करने का प्रयास किया गया है जो अधिगम प्रक्रिया में सफलता के द्योतक हैं। इस संदर्भ में अन्य भाषा के अध्येता में व्यक्तिगत भिन्नता के कुछ प्रमुख कारणों यथा—सामान्य अधिगम योग्यता, ध्वनियों के कोडीकरण की योग्यता, व्याकरणिक संवेदनशीलता, आगमनात्मक अधिगम योग्यता, साहचर्यात्मक स्मृति, उत्प्रेरण आदि का उल्लेख करना उचित होगा।

4.2.1. सामान्य अधिगम योग्यता

अन्य भाषा के अधिगम में अन्य घटकों के समान होने पर भिन्नता का प्रमुख स्रोत सामान्य अधिगम योग्यता है। विविध अध्ययनों के द्वारा भाषाओं के अधिगम तथा अन्य विषयों के अधिगम के पारस्परिक सबंधों का निर्धारण किया गया है। चूँकि यह सहसंबद्धता सामान्य रूप से वर्तमान रहती है अतः इसको अन्य भाषा अधिगम में सफलता का एक मात्र कारण नहीं माना जा सकता। भाषा अधिगम में सफलता के अन्य कारण भी हैं। भाषायी अभिवृत्ति का परीक्षण इससे ही संबंधित एक महत्वपूर्ण प्रयास है। परंतु भाषा अधिगम में सफलता का निर्धारक केवल अभिवृत्ति ही नहीं बल्कि अन्य योग्यताएँ भी हैं। इन पर ध्यान देना अपेक्षित है।

4.2.2. ध्वनियों के कोडीकरण की योग्यता

ध्वनियों के कोडीकरण से तात्पर्य ध्वनियों को लिपि प्रतीकों से और लिपि प्रतीकों को ध्वनियों से संबद्ध करना है। छात्र में इस कुशलता का विकास आवश्यक होता है। भाषा अधिगम में सफलता का मुख्य आधार ध्वनियों की विशिष्टताओं को स्मरण रखना है। वस्तुतः ध्वन्यात्मक कोडीकरण की योग्यता अन्य भाषा के अधिगम में अत्यंत आवश्यक स्थिति है। कारण स्पष्ट है अध्येता के लिए न केवल उस भाषा के नवीन स्वनिमों को पहचानना सीखना अनिवार्य है बल्कि रूपिमों, शब्दों, तथा

अनुतान साँचों द्वारा द्योतित ध्वनि-अनुक्रम का भी अभिज्ञान एवं स्मृति आवश्यक है (कैरोल 1971)। ध्वन्यात्मक कोडीकरण की दृष्टि से अध्येता में व्यक्तिगत भिन्नताएँ परिलक्षित होती हैं।

4.2.3. व्याकरणिक संवेदनशीलता

अन्य भाषा के अध्येता में भाषा से संबंधित व्याकरणिक चेतना एवं संवेदनशीलता किस सीमा तक विकसित हो सकी है इस दृष्टि से भी व्यक्तिगत अंतर परिलक्षित होता है। प्रयुक्त उच्चरित वाक्यों की वाक्यीय संरचना की जानकारी का परीक्षण किशोर अथवा वयस्क अध्येता (कभी-कभी बालकों) के संदर्भ में किया जा सकता है। भिन्नताएँ वयस्क अध्येताओं में अधिक दृष्टिगत होती हैं। यह योग्यता प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से भाषा अधिगम में सफलता को नियंत्रित करती है। अन्य भाषा का छात्र व्याकरणिक नियमों को सीखता है और भाषायी व्यवहार तथा बोधन की प्रक्रिया में इन नियमों के आधार पर वाक्यों को गठित करता है। अतः व्याकरणिक संवेदनशीलता जितनी ही अधिक होगी भाषा अधिगम में सफलता की मात्रा भी तदनुरूप निश्चित हो सकेगी।

4.2.4. आगमनात्मक अधिगम योग्यता

भाषा अधिगम में आगमनात्मक योग्यता से तात्पर्य उस योग्यता से है जिसमें छात्र उच्चरित अथवा मुद्रित भाषायी सामग्री के आधार पर अर्थ अथवा व्याकरणिक रूपों के संबंधों का अभिज्ञान करता है। श्रवण तथा वाचन की प्रक्रिया में वह अन्य भाषा की व्याकरणिक तथा आर्थी संरचनाओं को आत्मसात करने में समर्थ होता है। यह कुशलता वस्तुतः नियमों को रटने की कुशलता से भिन्न भाषायी नियमों को समझने एवं उनके अनुप्रयोग से संबद्ध है। अतः भाषायी क्रियाशीलता के साथ भाषायी अंतर्दृष्टि एवं सचेतनता का समुचित विकास भी अपेक्षित है।

4.2.5. साहचर्यात्मक स्मृति

अन्य भाषा के अधिगम में स्मृति एक महत्वपूर्ण घटक है जो विभिन्न भाषायी तत्वों से संबद्ध रहता है। यद्यपि मातृभाषा के अधिगम में भी स्मृति का महत्व स्वीकृत है परंतु मातृभाषा के प्रयोग की निरंतरता एवं अभ्यास जनित सहजता के कारण स्मृति के स्वतंत्र अस्तित्व का उल्लेख नहीं किया जाता। अन्य भाषा में परिचित अनुभव क्षेत्र के लिए नवीन भाषायी संकल्पनाओं एवं संरचनाओं का प्रयोग करना पड़ता है अतः साहचर्यात्मक स्मृति का महत्व स्वतः स्पष्ट है। अन्य भाषा की ध्वनियों तथा उनके विशिष्ट अभिलक्षणों, शब्दों तथा उनके कोशीय एवं व्याकरणिक अर्थों तथा व्याकरणिक संरचनागत विशिष्टताओं को इस सीमा तक स्मरण रखना

कि भाषा का समुचित प्रयोग किया जा सके अत्यंत आवश्यक है। मातृभाषा में शब्द भंडार के आधार पर बालक के भाषा अधिगम की सफलता का कुछ सीमा तक निर्धारण होता है। अन्य भाषा में भी अध्येता के शब्द भंडार तथा भाषायी प्रयोग की कुशलता के विकास में स्मृति का विशेष महत्व है। साहचर्यात्मक स्मृति की मात्रा एवं कुशलता के आधार पर अध्येताओं में व्यक्तिगत भिन्नता का होना स्वाभाविक है।

4.2.6. उत्प्रेरण

अन्य भाषा अधिगम में व्यक्तिगत भिन्नता का एक प्रमुख कारण उत्प्रेरण है। कहा जा चुका है कि बालक मातृभाषा के उपार्जन में स्वतः उत्प्रेरित होता है, परंतु अन्य भाषा के अधिगम में उसे उत्प्रेरित करना पड़ता है। उत्प्रेरण के साधन रूप और समन्वयात्मक रूप की चर्चा आगे विस्तार से की गई है अतः प्रस्तुत संदर्भ में केवल उसके औचित्य का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा। उत्प्रेरण की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह अध्येता को कार्य विशेष में संलग्न रखता है। द्वितीय भाषा का संप्रेषणात्मक संदर्भों में प्रयोग करने के लिए भाषायी कुशलताओं का समुचित विकास अपेक्षित है। अध्येता किन कारणों से अधिगम कार्य में संलग्न है यह बात विशेष महत्व नहीं रखती, महत्वपूर्ण तथ्य वस्तुतः उसकी संलग्नता है। सामान्य व्यक्ति अन्य भाषा सीखने के लिए उत्सुक नहीं होता, वह अन्य भाषा-भाषी राष्ट्र के प्रति भी संवेगात्मक लगाव का अनुभव नहीं करता, यद्यपि ये सभी उसके लिए विशेष उपयोगी हैं। परंतु आर्थिक तथा सामाजिक कारणों से अन्य भाषा का सफल एवं प्रभावी अधिगम आवश्यक समझा जाता है। दृढ़ निश्चयी व्यक्ति ही अन्य भाषा अधिगम में सफलता प्राप्त करता है। अतः अधिगम-उपलब्धियों की दृष्टि से व्यक्तिगत भिन्नता का होना स्वाभाविक है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अन्य भाषा के अध्येताओं में अनेक कारणों से व्यक्तिगत भिन्नताएँ दृष्टिगत होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति का स्वतंत्र व्यक्तित्व है। उसकी बौद्धिक, मानसिक, संवेगात्मक एवं अन्य संबद्ध शक्तियों तथा परिवेश का उसके व्यक्तित्व के गठन में विशेष योगदान है। अन्य भाषा के अधिगम में इन विशिष्टताओं का प्रतिफलन अवश्यंभावी है।

मातृभाषा तथा द्वितीय भाषा अधिगम संबंधी विशिष्टताओं से परिचित होने के साथ ही साथ यह तथ्य भी विचारणीय है कि विभिन्न मनोवैज्ञानिक तथा भाषावैज्ञानिक विचारधाराओं ने भाषा अधिगम के संबंध में किन मान्यताओं का प्रतिपादन किया है। इससे न केवल अधिगम प्रक्रिया संबंधी विस्तृत जानकारी प्राप्त

होगी बल्कि भाषायी अंतर्दृष्टि का भी विकास होगा, जिससे अन्य भाषा शिक्षण एवं अधिगम की प्रभाविता की वृद्धि संभव है। अतः भाषा अधिगम से संबंधित मुख्य विचारधाराओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना उचित होगा।

4.3. भाषा अधिगम से संबंधित विचारधाराएँ

भाषा अधिगम मानव की विशिष्टता है। बाल्यावस्था में बिना किसी औपचारिक शिक्षण के प्रत्येक सामान्य बालक भाषा को उपार्जित करता है। औपचारिक शिक्षा के क्रम में वह मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा के अधिगम में भी समर्थ होता है। सहज ही जिज्ञासा होती है कि भाषा अधिगम की प्रक्रिया किन विचारधाराओं एवं मान्यताओं से नियंत्रित होती है। विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से इस जिज्ञासा का समाधान किया है। इन अध्ययनों का उद्देश्य मानवीय भाषा के सामान्य अभिलक्षणों को निर्धारित करना, भाषा के सार्वभौमिक तत्वों का विवेचन करना तथा उन आधारभूत मान्यताओं की खोज करना रहा है जो भाषा-अधिगम की प्रक्रिया से संबद्ध रहते हैं। यद्यपि इन अध्ययनों का क्षेत्र मुख्यतः मातृभाषा उपार्जन की प्रक्रिया तक ही सीमित रहा है परंतु इनमें अंतर्भूत सिद्धांतों का निहितार्थ अन्य भाषा के अधिगम एवं शिक्षण में भी उपादेय माना गया है।

भाषा अधिगम की प्रक्रिया मूलतः मनोभाषावैज्ञानिक प्रक्रिया है। बालक के मानसिक जगत में घटित आंतरिक प्रक्रियाओं को प्रत्यक्षतः देखना तथा प्रयोगात्मक निष्कर्ष निकालना संभव नहीं है। केवल उसके भाषायी प्रयोगों के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। भाषा अधिगम का विवेचन करते हुए भाषावैज्ञानिकों ने भाषायी प्रारूपों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। परंतु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि भाषायी प्रारूपों से संबंधित सिद्धांत और भाषा उपार्जन की प्रक्रियाएँ समरूपी हैं। इनमें निम्नलिखित दृष्टिकोणों से अंतर स्थापित किया जा सकता है—

(1) भाषायी प्रारूप यद्यपि सापेक्षिक रूप से निश्चित व्यवस्था को द्योतित करता है परंतु इसमें विविध नवीन-प्रयोगों के निष्पादन की संभावना भी समाहित है। भाषा उपार्जन अध्येता की जन्मजात शक्तियों तथा प्रदत्त क्षमताओं से नियंत्रित एवं परिसीमित होता है।

(2) भाषायी प्रारूप एवं सिद्धांत अमूर्त व्यवस्था को, उसकी रूपरेखा को, द्योतित करते हैं। इसके विपरीत भाषा उपार्जन एक गत्यात्मक प्रक्रिया है जिसमें वक्ता का भाषायी प्रयोग समय एवं संदर्भ सापेक्ष होता है।

(3) भाषायी सिद्धांत एवं प्रारूप केवल भाषायी संदर्भों से संबंधित होते हैं। भाषेतर संदर्भों से नहीं। अतः यह न केवल अमूर्त बल्कि विकासशील भी है। परंतु भाषा उपार्जन की प्रक्रिया भाषेतर संदर्भों से भी संबद्ध होती है।

(4) भाषायी प्रारूपों का सैद्धांतिक एवं अर्थ निरपेक्ष विवेचन संभव है, परंतु भाषा उपार्जन में अर्थ केंद्रीय तत्व है। इसके बिना भाषायी प्रयोगों का कोई महत्व ही नहीं है। भाषायी प्रारूपों एवं भाषायी उपार्जन प्रक्रिया में तात्विक अंतर होने पर भी शिक्षण के संदर्भ में समन्वित उपागम का ही प्रयोग किया जाता है।

भाषा अधिगम की प्रक्रिया का विवेचन विविध दृष्टिकोणों से किया गया है। इनमें दो विचारधाराएँ मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं—व्यवहार वादी विचारधारा तथा बुद्धिवादी विचारधारा। इनकी मान्यताओं से परिचित होने के साथ ही साथ यह देखना भी आवश्यक है कि अन्य भाषा अधिगम में इनके क्या संकेतार्थ हो सकते हैं।

4.3.1. व्यवहारवादी विचारधारा

अधिगम के सिद्धांतों में व्यवहारवादी विचारधारा का महत्व विशेष रूप से स्वीकृत है। इस विचारधारा के अनुसार अधिगम उद्दीपन-प्रतिक्रिया तथा अभ्यनुकूलन के सिद्धांत पर आधारित हैं। अभ्यनुकूलन में प्रेरकों, उनकी निरंतर आवृत्तियों, मूल उद्दीपन एवं मूल तथा गौण उद्दीपन की संबद्धता और उनके प्रति की गई प्रतिक्रियाओं के बीच अव्यवधान महत्वपूर्ण हैं। इस विचारधारा के अनुसार अभ्यनुकूलित प्रतिवर्तों का निर्माण, आदतों का गठन तथा स्वचालित व्यवहार ही अधिगम है। प्रतिक्रिया की आवृत्ति से आदतों का गठन होता है। अतः सीखा गया कार्य स्वचालित रूप से संपन्न होता है। उत्प्रेरण एवं पुनर्बलन सीखने में सहायक हैं। भाषा अधिगम के संदर्भ में व्यवहारवाद की निम्नलिखित मान्यताएँ द्रष्टव्य हैं—

इस विचारधारा के अनुसार भाषा अधिगम का कोई स्वतंत्रवाद नहीं है। अधिगम के सामान्य सिद्धांतों का भाषा में अनुप्रयोग ही भाषा अधिगम है। अतः भाषा अधिगम तथा अन्य प्रकार के अधिगम में कोई अंतर नहीं स्थापित किया जा सकता।

केवल मानव में ही भाषा सीखने की शक्ति वर्तमान होती है। परंतु भाषा अधिगम तथा भाषा प्रयोग के संदर्भ में यह विचारधारा किन्हीं जटिल आंतरिक शक्तियों की उद्भावना को नहीं स्वीकार करती।

व्यवहारवादी केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानता है। अतः उसकी अध्ययन सामग्री केवल मानवीय उच्चार तथा संबंधित परिस्थितियाँ हैं जिनमें वे घटित होती

हैं। इनके आधार पर ही भाषायी व्यवहार का विवेचन संभव है। अधिगम-प्रक्रिया परिस्थितियों से नियंत्रित है। परिस्थितियाँ समान होने पर व्यक्ति समान रूप से सीख सकता है।

भाषा अधिगम में उच्चार को उत्तेजना के प्रति की गई प्रतिक्रिया की निष्पत्ति माना गया है। उत्तेजना बाह्य तथा आंतरिक दोनों प्रकार की हो सकती है। बाह्य उत्तेजना दूसरों द्वारा उच्चरित भाषायी रूप में वर्तमान होती है, अध्येता इनके प्रति प्रतिक्रिया करता है। आंतरिक उत्तेजना आंतरिक आवश्यकताओं से संबद्ध है यथा भूख, अथवा प्यास के कारण बालक द्वारा किया गया भाषायी प्रयोग आदि। इन प्रारंभिक भाषायी प्रतिक्रियाओं को पुनर्बलित करना आवश्यक है। बालक को यह पुनर्बलन कई स्रोतों से प्राप्त होता है। माता-पिता का अनुमोदन पुनर्बलन का शक्तिशाली माध्यम है, तथा बालक की आवश्यकताओं की पूर्ति परोक्ष पुनर्बलन का साधन है। पुनर्बलन का तीसरा स्रोत भाषायी पुनर्बलन है। बालक का स्वयं अपना भाषायी प्रयोग तथा दूसरों द्वारा किया गया भाषायी प्रयोग न केवल उद्दीपन बल्कि पुनर्बलन का भी काम करता है। बालक द्वारा किये गए भाषायी प्रयोग यदि बोधगम्य हैं, पुनर्बलित किये गए हैं तभी सीखे जाते हैं। अतः अधिगम पुनर्बलन का ही परिणाम है।

बालक की सही प्रतिक्रियाओं को पुनर्बलित करना आवश्यक है तभी सीखना संभव है। सही प्रतिक्रियाओं की संख्या अधिक होने पर सीखने की गति तीव्र होती है। सीखने के क्रम में बालक त्रुटियाँ करता है। इन त्रुटियों के अनेक कारण हो सकते हैं यथा सही रूपों को न सुनना, गलत रूपों का अनुकरण करना, सादृश्यता के नियम का मिथ्या विस्तार आदि।

अधिगम में सही प्रतिक्रियाओं की सतत पुनरावृत्ति आवश्यक है। प्रतिक्रिया का एकाध बार घटित होना ही, चाहे वे पुनर्बलित ही क्यों न हों, आदतों के गठन में सहायक नहीं होता। अतः अधिगम के लिए पुनरावृत्ति आवश्यक है। परंतु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण तथ्य है प्रतिक्रिया का घटित होना। प्रतिक्रिया विशेष के संदर्भ में ही पुनरावृत्ति, पुनर्बलन तथा अधिगम की संकल्पनाएँ सार्थक होती हैं। स्पष्ट है कि अध्येता की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही अधिगम संभव है। भाषायी प्रयोगों को निष्क्रिय रूप से सुनने, उनके सैद्धांतिक पक्ष से ही अवगत होने से भाषा नहीं सीखी जाती। सीखने के लिए कार्य विशेष का सतत अभ्यास अपेक्षित है।

व्यवहारवादी विचारधारा के अनुसार सादृश्यता की शक्ति बालक में जन्मजात होती है। वह इसका प्रयोग भाषायी एवं भाषेतर व्यवहार में भी करता

है। भाषा अधिगम में अधिकांश त्रुटियाँ सादृश्यता के नियम के अति विस्तार के कारण होती हैं। भाषायी प्रयोगों में यदि इस प्रकार की त्रुटियों पर पर्याप्त ध्यान न दिया जाय तो गलत रूपों के प्रयोग का अभ्यास ही सुदृढ़ हो जाता है।

भाषायी व्यवहार के विवेचन में व्यवहारवादी मातृभाषा को ही आधार मानता है। भाषा वैज्ञानिक की भाँति वह भी भाषा के उच्चरित रूप को ही महत्व देता है, भाषा का लिखित रूप गौण है। मौखिक भाषायी व्यवहार सामान्य मानव शिशु की सहज विशेषता है।

भाषायी संदर्भ में व्यवहारवादी विचारधारा की एक प्रमुख विशेषता अर्थ-परक है। भाषायी प्रतिक्रिया रूप और कथ्य दोनों ही दृष्टि से सही होनी चाहिए। यह भी आवश्यक है कि रूप केवल सही ही नहीं, उद्दीपन के परिपेक्ष्य में संगत भी हों। अतः भाषा अधिगम में भाषायी व्यवहार एवं प्रतिक्रियाएँ रूपात्मक और कथ्यात्मक दृष्टि से उपयुक्त होनी चाहिए। व्यवहारवाद की यह विशेषता है कि वह अर्थ का संबंध किसी प्रकार की मानसिक संरचना से नहीं जोड़ता। इनके अनुसार अर्थ वस्तुतः उद्दीपन के प्रति की गई समुचित प्रतिक्रिया है। मातृभाषा के उपार्जन में बालक एक-एक उद्दीपन से पृथक-पृथक परिचित नहीं होता, वह उद्दीपन समूहों से परिचित होता है। इनके लिए वह भाषायी प्रतीकों का प्रयोग करता है। इस क्रम में वह संदर्भ विशेष से संबद्ध उपयुक्त तथा अनुपयुक्त भाषायी प्रतिक्रियाओं में अंतर स्थापित करना सीखता है। अधिगम जनित अनुभवों के फलस्वरूप समुचित उद्दीपन के प्रस्तुत होते ही भाषायी प्रतिक्रिया स्वचालित रूप से घटित होती है। इस विचारधारा के अनुसार भाषायी व्यवहार में अर्थ बोध की मानसिक प्रक्रिया का कोई औचित्य नहीं है।

4.3.2. बुद्धिवादी विचारधारा

यह विचारधारा भाषा-अधिगम में व्यवहारवाद से भिन्न नवीन मान्यताओं का प्रतिपादन करती है। इसके अनुसार अधिगम बाह्य क्रियाओं की निष्पत्ति न होकर बौद्धिक प्रक्रियाओं पर आधारित है। भाषा अधिगम अभ्यनुकूलन का परिणाम न होकर आंतरिक शक्तियों की क्रियाशीलता का परिणाम है। इस विचारधारा के प्रणेता चामस्की की मान्यता है कि बालक में जन्म से ही भाषा सीखने की क्षमता वर्तमान होती है। परिपक्वन के क्रम में भाषायी उद्भासन के फलस्वरूप बालक मातृभाषा का उपार्जन करता है। यह क्षमता सार्वभौम है इसके फलस्वरूप प्रत्येक सामान्य बालक भाषा सीखता है। यह क्षमता अदृश्य है अतः इसका संबंध 'आंतरिक क्रिया विधि' से जोड़ा जाता है। बुद्धिवादी भाषा को अत्यंत जटिल व्यवहार मानता

है इसका विवेचन बाह्य घटकों के आधार पर नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि यह विचारधारा जन्मजात क्रियाविधि के अस्तित्व को स्वीकार करती है। इस जन्मजात क्रियाविधि को "भाषा उपार्जन युक्ति" के नाम से अभिहित किया जाता है। इसके अनुसार बालक में जन्म से ही भाषा विषयक ज्ञान वर्तमान होता है जिसके फलस्वरूप वह मातृभाषा के अमूर्त नियमों को उपार्जित करता है। 'भाषा उपार्जन युक्ति' की कार्यकारिता का विवेचन करने के पूर्व बुद्धिवादी विचारधारा की प्रमुख मान्यताओं को स्पष्ट करना आवश्यक है।

बुद्धिवादी विचारधारा के अनुसार भाषा नियमों की अत्यधिक संघटित व्यवस्था है। अध्येता इन नियमों को आत्मसात करता है। ये नियम ही भाषायी निष्पादन के आधार हैं। भाषायी व्यवहार आदतों का समुच्चय न होकर नियमों पर आधारित व्यवस्था है।

भाषा अधिगम में आंतरिक शक्तियों का विशेष महत्व है। बालक में भाषा-उपार्जन की क्षमता जन्मजात होती है अतः वह भाषा को परिपक्वन के सामान्य क्रम में उद्भासन के फलस्वरूप सहज रूप से उपार्जित करता है। इस विचारधारा के अनुसार भाषा उपार्जन की प्रक्रिया सभी बालकों में समान होती है। इसका कारण जन्मजात भाषायी क्षमता है न कि व्यवहारवाद द्वारा प्रतिपादित सामाजिक परिवेश।

बुद्धिवादी विचारधारा भाषा को अत्यंत जटिल व्यवस्था के रूप में स्वीकार करती है। इसका विवेचन बाह्य अभिलक्षणों के आधार पर नहीं किया जा सकता। स्किनर के "भाषायी व्यवहार" की आलोचना करते हुए चामस्की का मत है कि व्यवहारवादी सिद्धांत पशुओं पर किये गये प्रयोगों पर आधारित हैं। इसके आधार पर मातृभाषा के उपार्जन और उसके प्रयोगों की कुशलता का विवेचन संभव नहीं है। स्पष्ट है कि यह विचारधारा व्यवहारवाद के पुनर्बलन सिद्धांत, पुनरावृत्यात्मक प्रतिक्रिया तथा बाह्य घटकों के महत्व को नगण्य मानती हैं।

यह विचारधारा भाषा अधिगम में सामाजिक घटकों के महत्व को नहीं स्वीकार करती। इसके अनुसार प्रत्येक सामान्य मानव शिशु में भाषा उपार्जन की क्षमता जन्मजात होती है। इसे सामाजिक संदर्भों में अर्जित नहीं किया जा सकता। भाषा उपार्जन युक्ति की प्रकृति तथा इसकी कार्य विधि अनुल्लंघनीय है। भाषा-उपार्जन युक्ति एवं भाषायी उद्भासन के फलस्वरूप अधिगम प्रक्रिया सुनिश्चित रूप से गतिशील होती है। बालक के भाषायी विकास के स्तरों में समानता पाई जाती है, परंतु अधिगम गति दृष्टि से भिन्नता दृष्टिगत होती है।

बुद्धिवादी भाषा को विशिष्ट प्रकार की मानसिक क्रिया मानता है जो मुख्यतः नियमों से नियंत्रित होती है। अतः भाषा को आदतों का गठन मात्र नहीं कहा जा

सकता। बालक में भाषायी नियमों के उत्पादन तथा प्रयोग की क्षमता होती है। भाषा अधिगम वस्तुतः इन नियमों की ही निष्पत्ति है। बुद्धिवादी विचारधारा भाषा अधिगम में व्यवहारवादी सादृश्यता की संकल्पना को भी स्वीकार नहीं करती। भाषा उपार्जन मुख्यतः नियमों के आत्मीकरण की प्रक्रिया है। भाषा सीखते समय बालक भाषा के व्याकरण को सीखता है, अपनी भाषा के आंतरिक एवं अमूर्त नियमों की खोज करता है। भाषा-उपार्जन प्रक्रिया को समझने के लिए भाषा उपार्जन युक्ति की संक्रियात्मकता से परिचित होना आवश्यक है। यह युक्ति सुनिश्चित क्रम से गतिशील होती है।

बालक को जन्म से भाषायी उद्भासन प्राप्त होता है। अधिगम युक्ति की क्रियाशीलता के लिए यह एक महत्वपूर्ण घटक है। इस युक्ति के द्वारा भाषा विशेष की संरचना से संबंधित प्राक्कल्पनाएँ बालक के मस्तिष्क में गठित होती हैं यद्यपि वह इस प्रक्रिया से नितांत अपरिचित रहता है। बालक अपने भाषायी प्रयोगों में इन प्राक्कल्पनाओं का स्वतः परीक्षण करता है। नवीन भाषायी प्रदत्तों एवं उद्भासन के संदर्भ में वह इन प्राक्कल्पनाओं में संशोधन एवं परिवर्धन करता रहता है। उसका उद्देश्य भाषा स्वीकृत एवं व्यावहारिक प्रयोग करना होता है। ये प्राक्कल्पनाएँ प्रारंभ में अत्यंत सरल होती हैं। बालक के एक पदीय द्विपदीय प्रयोगों में इनके समुचित प्रमाण उपलब्ध होते हैं। बालक के विकास के क्रम में इन प्राक्कल्पनाओं का स्वरूप क्रमशः जटिल होता जाता है। बालक इन प्राक्कल्पनाओं के आधार पर भाषा का प्रयोग करता है। चूंकि वह अधिकांशतः वयस्कों द्वारा प्रयुक्त भाषा से ही उद्भासित होता रहता है अतः वह अपने भाषायी प्रयोगों को वयस्क प्रारूपों के अनुसार ढालने का प्रयत्न करता है। उसके भाषायी प्रयोग क्रमशः वयस्क प्रारूपों के समकक्ष होते जाते हैं। इस क्रम में बालक भाषा के आंतरिक लघु व्याकरण को गठित कर लेता है। परिमार्जन की सतत प्रक्रिया के क्रम में बालक द्वारा निर्मित लघु व्याकरण में आवश्यक परिवर्धन होता रहता है। इस प्रक्रिया में बालक का लघु व्याकरण क्रमशः वयस्कों द्वारा प्रयुक्त व्याकरण की समरूपता प्राप्त कर लेता है। इस स्तर पर बालक का भाषायी प्रयोग भी लगभग वयस्क प्रयोग के समकक्ष हो जाता है।

भाषा उपार्जन युक्ति का समर्थन मुख्यतः दो आधारों पर किया जाता है—

(क) भाषायी संरचना की आंतरिक प्रकृति के कारण बालक में भाषा उपार्जन युक्ति की संकल्पना को स्वीकार किया जा सकता है।

(ख) बालक के भाषायी प्रयोगों के निरीक्षण के आधार पर भाषा उपार्जन युक्ति के अस्तित्व को मान्यता दी जा सकती है।

स्पष्ट है कि बुद्धिवादी विचारधारा के अनुसार भाषा उपार्जन प्रक्रिया का विवेचन "भाषा उपार्जन युक्ति" की संकल्पना के द्वारा ही संभव है।

4.3 3. अन्य भाषा अधिगम तथा शिक्षण में इन विचारधाराओं का योगदान

अन्य भाषा के शिक्षण में व्यवहारवादी तथा बुद्धिवादी विचारधारा का क्या योगदान है? भाषा शिक्षण की विधियों तथा तकनीकों में क्या इनके आधार पर कुछ परिवर्धन संभव है? शिक्षण प्रक्रिया में क्या नवीन उपागम एवं अंतर्दृष्टि का समावेश किया जा सकता है? आदि अनेक प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करना आवश्यक हो जाता है। इन विचारधाराओं में से किसी एक का विकल्प न्यायसंगत नहीं माना जा सकता। अतः कार्यकारिता के आधार पर इनके योगदान का विवेचन अपेक्षित है।

अन्य भाषा के अधिगम एवं शिक्षण में व्यवहारवाद का योगदान द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विशेष रूप से स्वीकार किया गया। भाषा अधिगम को "आदतों के गठन की यांत्रिक प्रक्रिया" (रिवर्स 1964), "आदत एवं कौशल" तथा भाषा एवं अन्य कौशलों में सादृश्यता स्थापन की प्रक्रिया (नेल्सन 1960) आदि प्रयोगों से अभिहित करने के मूल में व्यवहारवादी मान्यताएं ही परिलक्षित होती हैं। भाषा विज्ञान में भी संरचनावादी उपागम व्यवहारवादी मान्यताओं का क्रियात्मक रूप है। अतः अन्य भाषा के शिक्षण में इस विचारधारा का योगदान निम्नलिखित दृष्टिकोणों से आंका जा सकता है।

व्यवहारवादी भाषा को व्यवहार के रूप में स्वीकार करती है। इनके अनुसार भाषा की कोई भी चर्चा असीम विविधताओं से युक्त जगत में जटिल प्राणी मानव के व्यवहार के व्यापक क्षेत्र का एक अंग है (स्किनर 1957)। भाषा अधिगम प्रक्रिया विशिष्ट प्रक्रिया न होकर अन्य अधिगम प्रक्रियाओं की भांति ही गतिशील होती है। अतः भाषा शिक्षण मुख्यतः भाषा के मौखिक व्यवहार पर आधारित होना चाहिए। भाषा के उच्चरित रूप का अभ्यास, "लेखन के पूर्व भाषण" का सिद्धांत भाषा शिक्षण की प्राथमिक अनिवार्य स्थिति है। भाषायी व्यवहार के अधिगम में अध्येता की सोद्देश्य प्रतिक्रिया एवं प्रयत्नशीलता अपेक्षित है। अध्यापक का दायित्व छात्रों को सही प्रतिक्रिया करने में सहायता प्रदान करना, सुनियोजित एवं नियंत्रित अभ्यास कराना, तथा सीखी गई प्रतिक्रियाओं को पुनर्बलित करना है। भाषा शिक्षण में साँचा अभ्यास की तकनीक व्यवहारवादी मान्यताओं पर ही आधारित है। भाषायी संरचना के शिक्षण में "सादृश्यता" का विशेष महत्व है। अन्य भाषा के शिक्षण में सीखे गये प्रयोगों के आधार पर नवीन प्रयोगों की कुशलता "सादृश्यता" के सिद्धांत पर आधारित है। अतः सादृश्यता मूलक कुशलता का विकास अपेक्षित है। व्यवहारवादी सादृश्यता की शक्ति को जन्मजात विशेषता

मानते हैं। चामस्की के अनुसार व्यवहारवाद की यह मान्यता स्वयं उनके सिद्धांतों का खंडन करती है। भाषा अधिगम वस्तुतः भाषायी नियमों का आंतरिक रूप से आत्मसात करने की प्रक्रिया है। यह कार्य "भाषा उपार्जन-युक्ति" की क्रियाशीलता द्वारा संपन्न होता है। इसके माध्यम से ही बालक वयस्क भाषायी प्रारूपों के प्रयोग की कुशलता अर्जित करता है। सादृश्यता का नियम भाषायी प्रयोगों के विस्तार में सहायक है। उद्दीपन एवं प्रतिक्रिया सिद्धांत के आधार पर अधिगम प्रक्रिया का समग्र विवेचन संभव नहीं है, वे केवल नियमों के अधिगम के द्योतक हैं।

भाषा शिक्षण में सामाजिक परिवेश महत्वपूर्ण घटक है। व्यवहारवादी यद्यपि "उद्भासन" की संकल्पना को महत्व नहीं देते, परंतु इनके अनुसार भाषा अधिगम का सामाजिक परिवेश प्रकारांतर से भाषा सीखने के लिए छात्रों को उत्प्रेरित करता है, समुचित पृष्ठभूमि निर्मित करता है। अतः इसे भी सामाजिक उद्भासन ही माना जा सकता है।

भाषायी प्रयोगों में जहाँ तक अर्थ के शिक्षण का प्रश्न है, व्यवहारवाद उद्दीपन प्रतिक्रिया संबंध को ही मान्यता देता है। अतः भाषा शिक्षण की प्रभावी तकनीक साँचा अभ्यास है। परंतु अर्थ को केवल उद्दीपन प्रक्रिया की निष्पत्ति नहीं माना जा सकता। विविध प्रकार के साँचा अभ्यास वाक्यों के गठन की कुशलता को तो विकसित कर सकते हैं परंतु इससे भाषा के स्वाभाविक संदर्भानुकूल प्रयोग की कुशलता का विकास संभव नहीं है। भाषा का सम्प्रेषणात्मक कार्य अर्थकेंद्रित है। इसकी उपेक्षा से भाषा शिक्षण का उद्देश्य ही अधूरा रहता है। बुद्धिवादी विचारधारा भाषा में अर्थ को विशेष महत्व देती है। भाषा में अंतः तथा बहिर्संरचना की संकल्पना ही अर्थ पर आधारित है। अतः बुद्धिवादी मान्यताओं का समावेश आवश्यक है।

व्यवहारवादी मान्यताओं की आलोचना करते हुए चामस्की का मत है कि स्वयं उनके (चामस्की) द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत का भाषा शिक्षण में कोई अनुप्रयोग नहीं है और होना भी नहीं चाहिए। भाषा शिक्षण में बुद्धिवादी विचारधारा के अनुप्रयोग को उन्होंने प्रारंभ में ही अस्वीकार किया है। फिर भी भाषा शिक्षण में उनके द्वारा प्रतिपादित मान्यताओं का महत्व असंदिग्ध है। भाषा शिक्षण का प्रणाली विज्ञान यद्यपि भाषावैज्ञानिक सिद्धांत से प्रत्यक्षतः संबंधित नहीं है परंतु इसके अभाव में भाषा शिक्षण का मार्गच्युत होना भी संभव है। कहा जा चुका है कि बुद्धिवादी विचारधारा भाषा अधिगम में बाह्य घटकों का महत्व नहीं स्वीकार करती। भाषा अधिगम वस्तुतः भाषायी नियमों को आंतरिक रूप में आत्मसात करने की प्रक्रिया है। अध्येता की प्रतिक्रिया का इससे कोई संबंध नहीं है। प्रतिक्रिया नियमों

के आत्मीकरण में सहायक न होकर सीखने अथवा न सीखने का द्योतक हो सकती है।

बुद्धिवादी विचारधारा भाषा उपार्जन के संदर्भ में भाषा उपार्जन युक्ति की महत्ता प्रतिपादित करती है। यदि भाषा अधिगम के संबंध में इनकी जन्मजात "भाषा उपार्जन युक्ति" की संकल्पना को मान भी लिया जाये तो प्रश्न उठता है कि अन्य भाषा अधिगम के संदर्भ में इसकी क्या उपायदेयता है? क्या मातृभाषा अधिगम की प्रक्रियाओं का ही अन्य भाषा अधिगम में अंतरण होता है अथवा अन्य भाषा अधिगम में भिन्न प्रक्रियाओं का समावेश होता है? इस संदर्भ में दो घटकों—जन्मजात विशेषताओं तथा वातावरण के योगदान की चर्चा विशेष महत्व रखती है। बुद्धिवादी जन्मजात क्षमता के महत्व को स्वीकर करता है तो व्यवहारवादी वातावरण को। इन दो अतिवादी दृष्टिकोणों का समन्वय पियाजे ने किया। इनके अनुसार भाषा अधिगम जन्मजात विशिष्टताओं तथा वातावरण का परिणाम है। बालक के विकास के साथ-साथ अनुभव का महत्व बढ़ता जाता है। जन्मजात शक्तियाँ अधिगम तथा विकास की प्रक्रिया को कुछ सीमा तक नियंत्रित करती है, परंतु इनका महत्व धीरे-धीरे कम हो जाता है। क्योंकि अधिगम प्रक्रिया अन्य वैयक्तिक घटकों से भी प्रभावित होती है।

अन्य भाषा के शिक्षण में उपर्युक्त दोनों ही घटकों का सापेक्षिक महत्व है। भाषा अधिगम को जन्मजात क्षमता तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। भाषायी पर्यावरण की, भाषायी उद्भासन की अपेक्षा होती है। वयस्कों के भाषा अधिगम में बाल अध्येताओं की तुलना में पर्यावरण का अधिक महत्व है। अतः अन्य भाषा के शिक्षण में पर्यावरणात्मक भाषायी उद्भासन को इस प्रकार सुनियोजित करना आवश्यक है जिससे अधिकतम अधिगम संभव हो। बुद्धिवादी विचारधारा के अनुसार सार्थक भाषायी प्रयोगों का जितना ही अधिक उद्भासन प्राप्त होता है, अध्येता भाषायी संरचना से संबंधित प्राक्कल्पनाओं के गठन, पुनरावलोकन एवं संशोधन में उतना ही अधिक समर्थ होता है। अतः भाषा शिक्षण में भाषा विशेष से छात्रों को उद्भाषित करना प्राथमिक आवश्यकता है। छात्र उपलब्ध भाषायी प्रदत्तों के आधार पर नियमों को गठित करता है और इनके अनुसार भाषायी प्रयोगों में समर्थ होता है।

बुद्धिवादी विचारधारा के अनुसार भाषा शिक्षण में नियमों की व्यवस्था पर विशेष बल दिया जाता है जिसके द्वारा भाषायी प्रारूपों का गठन, संशोधन एवं विस्तार होता है न कि साँचों के शिक्षण पर (चामस्की 1967)। अन्य भाषा का शिक्षण वस्तुतः भाषायी निष्पादन की प्रक्रिया से संबद्ध है। भाषायी निष्पादन के

स्तर पर, उपार्जित नियमों का व्यावहारिक रूप में प्रयोग होता है। बालक को भाषायी नियमों की इस सीमा तक पहचान होती है कि वह वाक्यों के रूपांतरण में समर्थ होता है। यद्यपि कुछ विद्वान अधिगम प्रक्रिया में रूपांतरण व्याकरण का योगदान नहीं स्वीकार करते (ऑसगुड 1968) इनके अनुसार अधिगम प्रक्रिया जिन सिद्धांतों पर आधारित है वे द्वितीय भाषा शिक्षण के पूर्व ही सीख लिये जाते हैं। परंतु अन्य विद्वान इससे सहमत नहीं हैं। इनके अनुसार रूपांतरण सिद्धांत मनोविज्ञान के संदर्भ में विशेष महत्व रखता है (ग्रीन वर्ग 1971)। स्पष्ट है कि भाषा के अध्येता में नियमों के गठन की जन्मजात क्षमता होती है, अतः अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया अभ्यनुकूलन की स्वचालित प्रक्रिया न होकर भाषा के नियमों को पहचानने एवं आत्मसात करने की सचेतन प्रक्रिया है। भाषा अधिगम में अध्येता भाषायी नियमों को आत्मसात करता है। भाषायी नियमों के गठन में भाषायी परिवेश एवं भाषायी प्रदत्तों का महत्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है। वस्तुतः अधिगम में अनुभवों तथा नियमों के गठन हेतु सुनियोजित भाषायी संदर्भों का विशेष महत्व है। इसके आधार पर बालक में भाषा प्रयोग की कुशलता विकसित की जा सकती है। जैकोबोविट्स ने भाषा उपार्जन की विकासात्मक प्रकृति को स्वीकार करते हुए इस बात पर बल दिया है कि बाह्य परिस्थितियाँ अधिगम-गति को निश्चय ही प्रभावित करती हैं, चाहे अधिगम प्रक्रिया अप्रभावित ही क्यों न रहे। स्पष्ट है कि अन्य भाषा के शिक्षण में भाषा अधिगम को प्रभावित करने वाले घटकों का विशेष महत्व है। सुनियोजित भाषायी उद्भासन "नियम उत्पादन तंत्र" की कार्यकारिता में सहायक है। नियोजित शिक्षण सामग्री नियमों के निर्धारण तथा आत्मीकरण में अधिक समर्थ सिद्ध होगी।

अन्य भाषा के अधिगम में अध्येता की सक्रियता, उसकी अभिरुचि का विशेष महत्व है। केवल नियमों को पहचानने से ही भाषा नहीं सीखी जाती, भाषा सीखने के लिए भाषा का प्रयोग करना आवश्यक है। भाषा-प्रयोग को केवल सादृश्यता मूलक वाक्यों एवं साँचों तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। भाषा के प्रयोग में सभी प्रकार के संभावित प्रयोगों के विकल्प की छूट देना आवश्यक है भाषा शिक्षण में इसकी समुचित व्यवस्था अपेक्षित है। स्पष्ट है कि अन्य भाषा के शिक्षण में भाषा अधिगम संबंधी किसी एक विचारधारा का समावेश ही पर्याप्त नहीं है, विभिन्न विचारधाराओं का संतुलित समायोजन अपेक्षित है।

भाषा अधिगम के संदर्भ में अधिगम संबंधी विचारधाराओं से अवगत होने के साथ ही यह भी आवश्यक है कि भाषा अधिगम के सिद्धांतों की भी समुचित जानकारी हो। भाषा अधिगम की प्रक्रिया प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से किन सिद्धांतों से

प्रभावित होती है, फलस्वरूप अध्येता को किन स्थितियों का सामना करना पड़ता है। आदि अनेक तथ्यों से भली-भाँति अवगत होने पर ही अधिगम-शिक्षण-परिवेश में वांछित परिवर्तन किया जा सकता है। अतः भाषा अधिगम से संबद्ध कुछ प्रमुख सिद्धांतों का उल्लेख करना आवश्यक है।

4.4. द्वितीय भाषा अधिगम के सिद्धांत

द्वितीय भाषा-अधिगम की प्रक्रिया में कुछ आधारभूत सिद्धांतों का अनिवार्यतः समावेश होता है। कहा जा चुका है कि अन्य भाषा का अध्येता सामान्यतः मातृभाषा में पर्याप्त दक्षता प्राप्त करने के बाद ही दूसरी भाषा सीखता है। अतः ये सिद्धांत प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मातृभाषा से संबंधित होते हैं। भाषा अधिगम में सन्निहित मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के आधार पर इन्हें क्रमशः सुगमता का सिद्धांत, व्याघात सिद्धांत एवं व्यतिरेकी अधिगम के सिद्धांत के नाम से अभिहित किया जाता है। द्वितीय भाषा अधिगम एवं शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए इन सिद्धांतों तथा इनकी कार्यकारिता से परिचित होना आवश्यक है।

4.4.1. सुगमता का सिद्धांत

अधिगम तथा शिक्षण के संदर्भ में अन्य भाषा के सम स्रोतीय तथा भिन्न स्रोतीय रूपों का उल्लेख किया जा चुका है। स्रोत की समानता कुछ अंशों तक भाषायी घटकों की समानता एवं तदनुरूप अधिगम प्रक्रिया की सरलता को द्योतित करती है। दूसरी ओर स्रोतीय भिन्नता भाषायी भिन्नता को अधिक सुदृढ़ करती है, अधिगम संबंधी समस्याओं की जटिलता इसकी स्वाभाविक परिणति है।

सुगमता का सिद्धांत, दो भाषाओं की संरचनागत समानता पर आधारित है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि दो भाषाओं में समानता होने पर भी वे पूर्णतया समान नहीं होतीं। वस्तुतः यह अंतर ही उनकी विशिष्टिता का परिचायक है। यद्यपि सार्वभौम व्याकरण प्रत्येक भाषा में व्याकरणिक कोटियों की सार्वभौमिकता को स्वीकार करता है परंतु इसका यह निहितार्थ कदापि नहीं है कि कोटियाँ समरूप होतो हैं। समस्रोतीय भाषाओं में अधिगम बिन्दुओं की आंशिक समानता होने के कारण सुगमता का सिद्धांत क्रियाशील रहता है।

भाषा अधिगम एवं शिक्षण के संदर्भ में दो भाषाओं की समानता का निर्धारण अत्यंत आवश्यक है। यह समानता एक ओर यदि अत्यधिक सामान्य अथवा अमूर्त हो सकती है तो दूसरी ओर यह भी संभव है यह केवल कृत्रिम और अति साधारण हो। दो भाषाओं में केवल आंशिक समानता की ही आशा की जा सकती है, यथा

दो भाषाओं के शब्दों में अर्थगत समानता संभव है परंतु यह आवश्यक नहीं है कि वाक्यीय संदर्भ में उनका समान रूप से प्रयोग होता है। अतः दो भाषाओं की तुलना करते समय मुख्यतः दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(1) दो भाषाओं की व्यवस्थाओं में समानता होते हुए भी उनमें अनियमित समानता पाई जाती है। अतः दो भाषाओं की समानता का निर्धारण अत्यंत सामान्य एवं अमूर्त धरातल पर ही संभव है।

(2) अध्येया भाषा में मातृभाषा के शब्दों के सुव्यवस्थित प्रयोग का अभाव इस तथ्य का द्योतक नहीं माना जा सकता कि भाषा विशेष में अभिव्यक्ति तथ्य दूसरी भाषा में अभिव्यंजित नहीं हो सकते।

दो भाषाओं की संरचना में समानता होने के कारण अधिगम में सुगमता का स्वतः समावेश होता है। कहा जा चुका है कि अन्य भाषा के अधिगम में अध्येता की मातृभाषायी आदतें सहज रूप से प्रक्षेपित होती हैं। अन्य भाषा में वह मातृभाषा के उपार्जित नियमों तथा प्रयोगों से मिलते-जुलते नियमों एवं प्रयोगों को आत्मसात करने के लिए प्रयत्नशील होता है। इसका यह भी निहितार्थ हो सकता है कि अन्य भाषा के बोधन एवं निष्पादन प्रक्रिया में मातृभाषा के नियमों का प्रयोग संभव है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसे अधिगम अंतरण की संज्ञा दी जा सकती है। यह अंतरण प्रतिकूल न होकर अनुकूल अथवा सकारात्मक होता है। इससे अध्येता कार्यविशेष के संदर्भ में सीखे गए नियमों तथा आदतों का अन्य मिलते-जुलते कार्यों तथा संदर्भों में प्रयोग करता है। अन्य भाषा अधिगम के संदर्भ में भी अंतरण की यह संकल्पना चरितार्थ होती है। दो भाषाओं की प्रकृतिगत आंशिक समानता सकारात्मक अंतरण का द्योतक है। सकारात्मक अंतरण की स्थिति में अन्य भाषा के समान अथवा मिलते-जुलते तत्वों को पुनः नये सिरे से सीखने की आवश्यकता नहीं होती। पहले सीखी गई भाषायी संरचना से मिलते-जुलते अंशों का अन्य भाषा के अधिगम में अंतरण होता है। स्पष्ट है कि अध्येता को इन भाषायी तत्वों के अधिगम में विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता। अधिगम में व्याघात की स्थितियाँ भी इन संदर्भों में नहीं उत्पन्न होतीं। उदाहरण के लिए समस्रोतीय भाषाओं में समान ध्वनियों के विशेष शिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। अतः इन्हें शिक्षण बिन्दु के रूप में नहीं स्वीकार किया जाता। शिक्षण की दृष्टि से अन्य भाषा की ध्वनियों के तीन वर्ग बन सकते हैं— समान, अर्धसमान तथा नवीन ध्वनियाँ। समान ध्वनियों के शिक्षण की आवश्यकता सामान्यतः नहीं होती, अर्धसमान ध्वनियाँ निश्चय ही कुछ अंशों में शिक्षण की अपेक्षा रखती हैं, नवीन ध्वनियाँ तो विशिष्ट शिक्षण बिंदु हैं ही। इसी प्रकार अन्य

भाषायी घटकों की दृष्टि से दो भाषाओं की समानता अधिगम-प्रक्रिया में सुगमता उत्पन्न करती है।

कहा जा चुका है कि सामान्यतः मातृभाषा के उपार्जन के पश्चात् ही अन्य भाषा का अध्येता अन्य भाषायी कुशलताओं के विकास में प्रयत्नशील होता है। अतः इस स्थिति में वह न केवल विविध भाषायी घटकों से परिचित होता है बल्कि सम्प्रेषणात्मक व्यवहार में उनका समुचित रूप से प्रयोग भी करता है। मातृभाषा सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम बन चुकी होती है। द्वितीय भाषा का अधिगम वस्तुतः उसके लिए विशिष्ट भाषायी व्यवहार को औपचारिक परिवेश में सीखने का क्रम है। दो भाषाओं की समानता मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिगम-भार को कम कर देती है अतः छात्र को सीखने में न केवल सुगमता होती है बल्कि परिचय के आधार पर वह नवीन घटकों को सीखने के लिए उत्प्रेरित भी होता है। कहा जा चुका है कि अन्य भाषा के बाल अध्येता की तुलना में वयस्क अध्येता का संज्ञानात्मक विकास एवं सामान्य अनुभव क्षेत्र अधिक समृद्ध होता है। अतः सैद्धांतिक रूप से वह दो भाषाओं के समान तथा भिन्न बिंदुओं को पहचानने में अधिक समर्थ होता है। परंतु यह आवश्यक नहीं कि भाषा की सैद्धांतिक जानकारी भाषायी प्रयोग की कुशलता में भी विशेष रूप से सहायक हो। अन्य भाषा के शिक्षण में छात्रों को समान भाषायी बिंदुओं से अवगत कराना प्रभावी अधिगम के लिए आवश्यक है।

सुगमता का सिद्धांत अन्य भाषा के अधिगम में विशिष्ट सफलता का द्योतक है। यद्यपि अन्य भाषा के अध्येता को नवीन भाषा की विशिष्ट व्यवस्थाओं को सीखना पड़ता है, परंतु भाषा अधिगम में अत्यधिक समस्यात्मक बिंदुओं का सामना नहीं करना पड़ता। शिक्षण बिंदु वस्तुतः संरचनात्मक वैषम्य स्थलों तक ही सीमित रहते हैं। सुगमता के सिद्धांत का एक यह भी निहितार्थ है कि दो भाषाओं में जितनी ही अधिक संरचनात्मक भिन्नता होगी, अधिगम प्रक्रिया में उतनी ही जटिलता संभव है। अन्य भाषा का अध्येता मातृभाषा और अन्य भाषा की समानता अथवा भिन्नता के आधार पर भाषा अधिगम में सुगमता दुरुहता का अनुभव करता है।

सुगमता के सिद्धांत का एक निहितार्थ यह भी है कि अन्य भाषा का अध्येता अपनी मातृभाषा की विशिष्टताओं से इस सीमा तक परिचित होता है कि वह अन्य भाषा में मातृभाषा का प्रयोग करते समय अधिक सजग एवं सतर्क रहता है। उदाहरण स्वरूप उससे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती वह मातृभाषा की व्याकरणिक कोटियों का अन्य भाषा में मिथ्या प्रयोग करता है यथा वह मातृभाषा के प्रत्ययों का प्रयोग अन्य भाषा में क्रिया पद अथवा सर्वनाम के रूप में नहीं करता। कुछ विद्वानों ने इस भाषायी सजगता को 'शून्य अंतरण' की संज्ञा दी है। इस स्थिति में सुगमता अथवा

व्याघात की संभावना नहीं होती परंतु अध्येता की भाषायी चेतनता एवं सजगता अवश्य परिलक्षित होती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मातृभाषा में सीखे गये भाषायी तत्व एवं संरचनाएँ यदि अन्य भाषा के घटकों से मिलते जुलते हैं तो भाषा-अधिगम की प्रक्रिया में सहजता एवं सुगमता का समावेश होता है। इसका यह संकेतार्थ स्पष्ट है कि अध्येता भाषा अधिगम में उस स्थिति का अनुभव करने लगता है जिसमें वह अनेक उपयोगी एवं व्यावहारिक प्राक्कल्पनाओं के गठन एवं प्रयोग में सक्षम होता है। परंतु मातृभाषा तथा अन्य भाषा के अधिगम में मातृभाषा का व्याघात अवश्यंभावी रूप से होता है। अतः भाषायी व्याघात से परिचित होना आवश्यक है।

4.4.2. व्याघात सिद्धांत

प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्टता होती है। मातृभाषा का उपार्जन करते समय भाषायी कुशलता उस भाषा की विशिष्ट प्रकृति एवं व्यवस्था से नियंत्रित होती है। यह दक्षता दूसरी भाषा के अध्येता एवं प्रयोक्ता की भाषायी दक्षता से भिन्न है। अन्य भाषा के अधिगम में मातृभाषायी दक्षता को उपार्जित करना सामान्यतः संभव नहीं हो पाता। मातृभाषा को सीखने का अनुभव, इसकी भाषायी आदतें तथा नियम अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करते हैं। अधिगम प्रक्रिया में अध्येता अपनी मातृभाषा की विविध संरचनाओं का अध्येय भाषा में अचेतन तथा सहज रूप से प्रयोग करता है। अतः अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया में मातृभाषा की भिन्न संरचनाओं के स्वचालित अंतरण के कारण व्याघात उत्पन्न होता है। कहा जा सकता है कि "व्याघात भाषा अध्येता की उन अनियंत्रित प्रवृत्तियों का द्योतक है जिससे वह प्रथम (मातृ) भाषा की आदतों का अन्य भाषा-व्यवहार में प्रयोग करता है" (डूले और बर्ट 1975)।

व्याघात की संकल्पना के मूल में यह मान्यता अंतर्भूत रहती है कि प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्टता होती है, किन्ही भी दो भाषाओं में पूर्णतया समानता नहीं पाई जाती। दूसरी भाषा तथा मातृभाषा में किसी न किसी रूप में भिन्नता अवश्य होती है। मातृभाषा तथा अन्य भाषा के प्रकृतिगत वैषम्य के कारण व्याघात की स्थिति दृष्टिगत होती है। यह भिन्नता विविध भाषायी स्तरों पर वर्तमान रहती है। मातृभाषा उपार्जन की प्रक्रिया में बालक अपनी मातृभाषा की विविध व्यवस्थाओं पर पर्याप्त अधिकार प्राप्त कर लेता है। ध्वनि, शब्द, अर्थ और संरचना मूलक सहज अभ्यास के फलस्वरूप भाषायी नियम तथा प्रयोग बालक के व्यवहार में आदत के रूप में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। अन्य भाषा के अधिगम में छात्र, मातृभाषा

के इन नियमों को स्वभावतः एवं स्वचालित रूप से अन्य भाषा पर प्रक्षेपित एवं आरोपित करता है। यह प्रक्षेपण इतने सहज एवं स्वाभाविक रूप से होता है कि अन्य भाषा की विशिष्टताओं से परिचित वयस्क अध्येता भी इनको रोकने में असमर्थ होता है। स्पष्ट है कि दो भाषाओं के इस प्रकार परस्पर संपर्क में आने के कारण अध्येय भाषा की संरचना मातृभाषा की संरचना से प्रभावित होती है। इन प्रभावित अंशों में भाषा-व्याघात की स्थिति का अवलोकन किया जा सकता है। ये मातृभाषायी प्रभाव अध्येय भाषा की संरचना को पुनर्गठित करते हैं। यही कारण है कि अन्य भाषा के अध्येता का भाषायी प्रयोग न तो मातृभाषा का प्रतिरूप होता है और न अध्येय भाषा का। वह इन दोनों का मिला-जुला रूप होता है। इसीलिए विद्वानों ने अन्य भाषा अधिगम प्रक्रिया के संदर्भ में "अंतर भाषा" तथा "संक्रांति परक" भाषा की संकल्पना को स्वीकार किया है।

व्याघात का स्वरूप क्या है? व्याघात की प्रक्रिया कहाँ और किस प्रकार घटित होती है? भाषा अधिगम एवं शिक्षण के संदर्भ में इन प्रश्नों पर भी विचार करना आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक संदर्भ में व्याघात सीखे गए अंशों के अंतरण का परिणाम है। अंतरण से अभिप्राय सीखे गए ज्ञान अनुभव तथा आदतों का नवीन अधिगम-संदर्भों में उपयोग है। परंपरागत भाषा-अधिगम-सिद्धांत सीखे हुए ज्ञान का संबंध भाषा की संरचना से जोड़ता है। अध्येता इन संरचनाओं का मौखिक तथा लिखित रूप से प्रयोग करता है। अतः मातृभाषा के साँचे अन्य भाषा की अधिगम प्रक्रिया में अंतरित होते हैं। मातृभाषा तथा अन्य भाषा के सांचों की भिन्नता अन्य भाषा अधिगम में व्याघात एवं नकारात्मक अंतरण के रूप में स्वीकृत है।

व्याघात का संबंध भाषा के सैद्धांतिक पक्ष से नहीं जोड़ा जा सकता। व्याघात की प्रक्रिया वस्तुतः अध्येता के मस्तिष्क में घटित होती है। उसके मानसिक जगत में ही मातृभाषा तथा अन्य भाषा की संरचनाएँ परस्पर संपर्क में आती हैं। मातृभाषा की अधिगमित संरचनाओं तथा भाषायी नियमों की भिन्नता अन्य भाषा को प्रभावित करती है। इस नकारात्मक अंतरण के कारण अध्येता को अन्य भाषा अधिगम में कठिनाई होती है। विशिष्ट स्थितियों में जहाँ इन दो भाषाओं का प्रयोग भिन्न-भिन्न क्षेत्रों तक सीमित रहता है वहाँ भाषा का प्रयोक्ता भाषायी व्यवस्थाओं का अलग-अलग प्रयोग करने में, उनमें पार्थक्य बनाए रखने में विशेष कठिनाई का अनुभव नहीं करता। अतः व्याघात की संभावना न्यूनतम होती है। परंतु जहाँ व्यवहार में दो भाषाओं की संरचनाएँ अति व्यापी होती हैं वहाँ उनका परस्पर टकराहट एवं फलस्वरूप भाषायी व्याघात की मात्रा अधिक होती है। कहा जा सकता है कि व्याघात भाषायी कोड का संपर्क जनित पारस्परिक परिवर्धन है।

अन्य भाषा अधिगम में व्याघात को एक अनिवार्य एवं स्वाभाविक परंतु समस्यापूर्ण स्थिति के रूप में स्वीकार किया जाता है। मैकी ने भी व्याघात को अनिवार्य स्थिति के रूप में स्वीकार किया है। मातृभाषा अन्य भाषा के अधिगम में किन स्थितियों में व्याघात पहुँचाती है इसका अध्ययन भाषा विशेष के संदर्भ में ही संभव है। चूंकि प्रत्येक भाषा की प्रकृति विशिष्ट होती है अतः व्याघात की स्थितियों में भी भिन्नता पाई जाती है। व्याघात बिंदुओं का निर्धारण भाषा विशेष की प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में ही संभव है। स्पष्ट है कि भाषा व्याघात के मूल में भाषा वैशिष्ट्य तथा भाषा वैषम्य की संकल्पनाएँ वर्तमान रहती हैं। भाषा व्याघात की मात्रा एवं गुणात्मक प्रकृति भाषा विशेष की प्रकृति से नियंत्रित होती है। व्याघात के स्थलों का निर्धारण इसी के आधार पर किया जा सकता है।

मातृभाषायी व्याघात भाषा की विविध संरचनाओं के स्तर पर संभव है यथा ध्वनि, शब्द, अर्थ और संरचना का स्तर। सभी स्तरों पर व्याघात की मात्रा समान हो, यह आवश्यक नहीं है। सामान्यतः ध्वनि के स्तर पर व्याघात की अत्यधिक संभावना पाई जाती है। व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से भी भाषा अधिगम में व्याघात जनित समस्याएँ अधिक होती हैं। भाषा की प्रकृति के अनुरूप शब्द एवं अर्थ के स्तर पर व्याघात की मात्रा अपेक्षाकृत कम हो सकती है। शिक्षण के संदर्भ में व्याघात स्थलों का निर्धारण करने के लिए संपर्क में आने वाली दो भाषाओं का व्यतिरेकी अध्ययन आवश्यक होता है। इनके आधार पर ही शिक्षण बिंदुओं का निर्धारण संभव है। व्याघात सिद्धांत के आधार पर अन्य भाषा अधिगम तथा उसके प्रयोग में पायी जाने वाली त्रुटियों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। परंतु व्याघात भाषायी त्रुटियों का एक कारण है, एक मात्र कारण नहीं।

भाषा के निष्पादक तथा ग्राहक व्यवहार दोनों में ही व्याघात परिलक्षित होता है। अध्येता अपनी मातृभाषा तथा संबद्ध संस्कृति के रूपों, अर्थों तथा विशिष्ट प्रयोगों को अन्य भाषा और संबद्ध संस्कृति में अंतरित एवं प्रक्षेपित करता है। निष्पादक भाषायी व्यवहार में व्याघात का स्वरूप भाषायी व्यवहार तथा संस्कृति की परस्पर क्रियाशीलता से संबद्ध रहता है परंतु ग्राहक व्यवहार में भाषा और संस्कृति के बोधन स्तर पर ही परिलक्षित होता है (लैडो 1957)। व्याघात मूलक समस्याओं का संबंध वस्तुतः संरचनात्मक इकाइयों से है जो मातृभाषा तथा अध्येय भाषा की संरचनात्मक भिन्नता को द्योतित करती हैं। अध्येय भाषा की संरचना यदि मातृभाषा की संरचना से नितांत भिन्न है तो अधिगम प्रक्रिया की जटिलता और भाषा व्यवहार में तज्जनित त्रुटियों का आधिक्य अवश्यंभावी है। अन्य भाषा अधिगम एवं शिक्षण का दायित्व मुख्यतः इन कठिनाइयों पर विजय पाना है। दो भाषाओं का वैषम्य गत अंतराल जितना ही अधिक होगा अधिगम संबंधी कठिनाइयाँ उतनी ही जटिलतर होंगी। स्पष्ट है कि अन्य भाषा अधिगम प्रक्रिया की

प्रकृति सामान्यतः मातृभाषा की प्रकृति से नियंत्रित होती है। चूंकि शिक्षण का उद्देश्य दो भाषाओं के विशिष्ट शिक्षण बिन्दुओं के निर्धारण से है, व्याघात स्थलों पर अधिकाधिक अधिकार कराना है अतः शिक्षण प्रक्रिया में तदनुरूप प्रयुक्त सामग्री के निर्माण की आवश्यकता स्वतः स्पष्ट है। भाषायी व्याघात की संकल्पना के फलस्वरूप व्यतिरेकी विश्लेषण एवं अधिगम के सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ है। अतः इसकी चर्चा समीचीन है।

4.4.3. द्वितीय भाषा व्यतिरेकी अधिगम

द्वितीय भाषा के व्यतिरेकी अधिगम का सिद्धांत वस्तुतः दो भाषाओं के व्यतिरेकी विश्लेषण पर आधारित है। अन्य भाषा अधिगम में व्याघात की संकल्पना की स्वीकृति के फलस्वरूप व्यतिरेकी विश्लेषण को न केवल सैद्धांतिक बल्कि प्रायोगिक धरातल पर भी विशेष महत्व प्राप्त हुआ है। अतः अन्य भाषा शिक्षण के क्षेत्र में व्यतिरेकी अध्ययन एक महत्वपूर्ण उपागम के रूप में स्वीकृत है। भाषा अधिगम एवं शिक्षण के क्षेत्र में इस नवीन उपागम की कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। भाषा विज्ञान की अनुभववादी और संरचनात्मक विचारधारा द्वारा अधिग्रहीत प्रारूप को क्रियात्मक रूप प्रदान करने में व्यतिरेकी विश्लेषण की विशेष भूमिका रही है। अन्य भाषा के शिक्षण में इसे एक प्रकार से अनिवार्य उपागम के रूप में स्वीकार किया जाता है।

व्यतिरेकी विश्लेषण का सिद्धांत दो भाषाओं की प्रकृतिगत विशिष्टता पर आधारित है। दो भाषाओं की प्रकृतिगत विशिष्टता से परिचित होने के लिए उनकी तुलना करना आवश्यक हो जाता है। तुलना के आधार पर ही दो भाषाओं की व्यवस्थाओं में समानता और असमानता का निर्धारण संभव है। यह सिद्धांत मुख्यतः दो भाषाओं का भिन्नता कोई ही अधिगम बिंदु के रूप में स्वीकार करता है। मातृभाषा तथा अन्य भाषा की भिन्नता ही वस्तुतः व्यतिरेकी बिंदु है। अधिगम तथा शिक्षण के संदर्भ में इनका विशेष महत्व है। कहा जा चुका है कि व्यतिरेकी विश्लेषण का उपागम अन्य भाषा शिक्षण के संदर्भ में व्याघात की संकल्पना से संबद्ध है। व्याघात की संकल्पना इस बात पर बल देती है कि मातृभाषा की विभिन्न व्यवस्थाएँ एवं उनकी विशिष्टताएँ भाषायी नियम तथा कुशलताएँ अध्येता के व्यवहार में इस सीमा तक सुदृढ़ हो जाती हैं कि अन्य भाषा के अधिगम में उनका प्रक्षेपण एवं प्रयोग सहज रूप से होता है। बौद्धिक स्तर पर इन नियमों के विश्लेषण की क्षमता एवं ज्ञान रखने पर भी अध्येता इस सहज प्रक्षेपण को रोकने में असमर्थ होता है। स्पष्ट है कि अन्य भाषा के अधिगम में व्याघात की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली प्रक्रिया है। अतः अन्य भाषा अधिगम में संभावित कठिनाइयों का पूर्वानुमान करने के

लिए, उनकी प्रकृति से परिचित होने के लिए तथा भाषा अधिगम एवं शिक्षण में अधिकतम सफलता को सुनिश्चित करने के लिए व्याघात की स्थितियों से अवगत होना अपेक्षित है। व्यतिरेकी विश्लेषण का उपागम इन दायित्वों के निर्वाह में सर्वाधिक समर्थ है, इस दृष्टि से इसकी विशिष्टताओं से परिचित होना आवश्यक है।

भाषा शिक्षण के संदर्भ में व्यतिरेकी विश्लेषण के द्वारा दो भाषाओं में वर्तमान संरचनागत समानता और विषमता का निर्धारण किया जाता है। व्यतिरेकी विश्लेषण हेतु यह आवश्यक है कि दो भाषाओं की प्रकृति का, उनमें निहित समानता तथा विषमता का यथा तथ्य विश्लेषण किया जाय। यह भी आवश्यक हो जाता है कि मातृभाषा तथा अध्येय भाषा की तुलना करते समय एक ही भाषा वैज्ञानिक प्रारूप अथवा माडल के आधार पर दोनों भाषाओं का विवेचन किया जाय। भाषायी तुलना करते समय दृष्टिकोण की एकरूपता अनिवार्य आवश्यकता है। इस संदर्भ में इस तथ्य का उल्लेख करना उचित होगा कि दो भाषाओं में मात्रा तथा प्रकारगत भिन्नता हो सकती है। भाषाओं की भिन्नता को निर्धारित करने का एक प्रमुख आधार उनके प्रयोक्ताओं की परस्पर बोधगम्यता है। दो भाषाओं के प्रयोक्ता परस्पर एक दूसरे के भाषायी प्रयोगों को किस सीमा तक समझ पाते हैं इसके आधार पर भिन्नता की मात्रा निश्चित की जा सकती है। परंतु बोधगम्यता का संबंध केवल भाषायी घटकों से न होकर सामाजिक मनोवैज्ञानिक घटकों से भी है। दो भाषाओं में अंतर-निर्धारण का एक दूसरा आधार अध्येय भाषा की अधिगमनीयता है। अन्य भाषा के अध्येता को भाषा सीखने में जिस प्रकार की कठिनाइयों का अनुभव होता है उसके आधार पर दो भाषाओं के अंतर की मात्रा एवं प्रकृति का अनुमान लगाया जा सकता है। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि भाषा अधिगम की कठिनाइयाँ भाषा विशेष में ही अंतर्भूत नहीं होतीं, अधिगम को प्रभावित करने वाले अन्य मनोवैज्ञानिक घटकों से भी संबद्ध होती हैं यथा उत्प्रेरण, बुद्धि, अभिवृत्ति आदि। इन घटकों में सफलता की प्रत्याशा अधिगमनीयता की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है।

दो भाषाओं की तुलना के संदर्भ में "समग्र" रूप से भाषावैज्ञानिक समानता और भिन्नता का निर्धारण संभव नहीं है, केवल भाषायी स्तर, व्यवस्था तथा कोटियों आदि की दृष्टि से ही इनका निर्धारण किया जा सकता है। प्रत्येक भाषा विविध स्तरों पर तथा विभिन्न मात्रा में सांचों की एक जटिल व्यवस्था है अतः इसकी भिन्नता के संबंध में सामान्य रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कहा जा चुका है कि व्यतिरेकी विश्लेषण का उद्देश्य दो भाषाओं में निहित साम्य तथा वैषम्य का निर्धारण करना है। इसके आधार पर ही भाषा शिक्षण की समुचित योजना संभव है। दो भाषाओं में निहित भिन्नता का कुलक ही वस्तुतः अधिगम एवं शिक्षण बिंदु है।

अन्य भाषा के अध्येता के लिए कुछ भाषायी बिंदु अधिगम की दृष्टि से सरल हो सकते हैं तो कुछ अत्यधिक जटिल। मातृभाषा से मिलते-जुलते अंश सामान्यतः सरल होते हैं और भिन्न अंश जटिल (लैडो 1957)। संकेतार्थ यह है कि भिन्नता और जटिलता परस्पर संबंधित संकल्पनाएँ हैं।

अन्य भाषा के अधिगम में भाषायी भिन्नता को सामान्यतः जटिलता का स्रोत माना जाता है परंतु अध्येय भाषा और मातृभाषा की भिन्नता अधिगम में जटिलता का अनिवार्य कारण है। यह नहीं माना जा सकता (निकिल 1971)। बहुधा यह देखा जाता है कि दो मिलती-जुलती अथवा अर्ध समान संरचनाओं की तुलना में नितांत नवीन संरचनाओं को सीखना सरल होता है। दो भाषाओं की समान परंतु वितरण की दृष्टि से भिन्न ध्वनियों को सीखने में नवीन ध्वनियों की अधिक कठिनाई होती है। कहा जा सकता है कि कठिनाई का संबंध वस्तुतः मनोभाषावैज्ञानिक घटकों से है जबकि अंतर का संबंध भाषावैज्ञानिक घटकों से। भाषायी भिन्नता और जटिलता के पारस्परिक संबंधों के निर्धारण के लिए इन दोनों तत्वों की अलग-अलग व्याख्या अपेक्षित है। परंतु भाषा अधिगम के संदर्भ में ये दोनों घटक परस्पर संबद्ध हैं अतः इनकी विशिष्टताओं का मापन संभव नहीं है। अन्य भाषा का अध्येता भी भाषा अधिगम की प्रक्रिया में यह सुनिश्चित नहीं कर पाता कि अध्येय भाषा के किन अंशों की ओर किस सीमा तक उसे जानकारी है। दो भाषाओं में समानताओं और असमानताओं का निर्धारण एक जटिल कार्य है। अध्येता मिथ्या समानताओं अथवा भिन्नताओं की परिकल्पना कर लेता है। मनोभाषावैज्ञानिक तत्वों से परिचित अध्यापक ही इस दिशा में समुचित मार्गदर्शन देने में समर्थ होता है।

व्यतिरेकी विश्लेषण की प्रक्रिया के मुख्यतः दो सोपान हैं (1) तुलना के आधार का निर्धारण तथा (2) तुलना प्रक्रिया।

दो भाषाओं की तुलना के सामान्यतः तीन आधार माने जा सकते हैं—नाम, रूप और अर्थ। दो भाषाओं में विविध कोटियों की तुलना करते समय विशेष सतर्कता अपेक्षित है। कोटियों की नामगत समानता को दो भाषाओं की संरचनात्मक समानता, प्रयोग वैशिष्ट्य का द्योतक नहीं माना जा सकता। नामगत समानता संकल्पनागत सामान्य समानता का परिचायक मात्र है। इसको प्रकार्यात्मक समानता का प्रतिरूप नहीं कहा जा सकता। भाषा विशेष के संदर्भ में प्रयुक्त कोटियों का प्रकार्यात्मक वैशिष्ट्य है।

तुलना का दूसरा आधार रूपात्मक समतुल्यता अथवा समानता है। भाषा की वाक्यीय संरचना के वर्णन के लिए कोटियों का निर्धारण प्रकार्य के आधार पर किया जाता है। वे इकाइयाँ जो वाक्यीय संदर्भ में समान रूप से कार्य करती हैं एक कोटि

अथवा श्रेणी में रखी जा सकती हैं। दो भाषाओं में प्रयुक्त कोटियाँ ध्वनि, शब्द तथा वाक्य के स्तर पर भिन्न हो सकती हैं। यह उल्लेखनीय है कि दो भाषाओं की तुलना का अर्थ दो भाषाओं की संरचनाओं की तुलना है विविध भाषायी स्तरों पर ये संरचनाएँ भी तुलना की दृष्टि से विभिन्न इकाइयाँ हैं। व्यतिरेकी विश्लेषण का मुख्य कार्य संरचनात्मक इकाइयों की तुलना करना है। मातृभाषा तथा अध्येय भाषा की समग्रता की तुलना का कोई महत्व नहीं है। दो भाषाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण करते समय विभिन्न स्तरों पर वर्तमान व्यवस्था से संदर्भ में ही तुलना की जा सकती है।

दो भाषाओं की तुलना का एक आधार अर्थ परक है। एक भाषा के शब्द वर्गों से संबद्ध स्थापित करने का आधार वाक्यीय संरचना ही न होकर अर्थ परक होता है। इस दिशा में रूपांतरण व्याकरण ने व्यतिरेकी विश्लेषण को नवीन संदर्भ प्रदान किया है। भाषा के रूपांतरण प्रारूप के अनुसार भाषा के व्याकरण में दो प्रकार की संरचनाएँ होती हैं आभ्यांतर संरचना तथा बाह्य संरचना। भाषा की आभ्यांतर संरचना के नियम सार्वभौम हैं उन्हें भाषा विशेष के व्याकरण का अंग नहीं माना जा सकता अभ्यांतर संरचना आधारभूत नियमों से संबद्ध होती हैं। आभ्यांतर बाह्य संरचना को रूपांतरण नियमों के आधार पर जोड़ा जाता है। दो भाषाओं में आभ्यांतर संरचना की समानता भाषाओं की समरूपता को द्योतित करती है। बाह्य संरचना की भिन्नता केवल ऊपरी भिन्नता है।

व्यतिरेकी विश्लेषण का सिद्धांत भाषा शिक्षण में महत्वपूर्ण सिद्धांत के रूप में स्वीकृत है। यह न केवल भाषा व्याघात की संकल्पना को स्पष्ट करता है बल्कि उससे उत्पन्न विविध व्याघात स्थलों का भी निर्धारण करता है। फलस्वरूप शिक्षण बिंदुओं का निर्धारण संभव होता है।

अंत में भाषा अधिगम के सिद्धांतों की चर्चा के साथ ही द्वितीय भाषा अधिगम के संदर्भ में द्विभाषिकता पर सम्यक विचार करना अत्यंत आवश्यक है। इससे न केवल भाषा अधिगम बल्कि द्विभाषिकता की विविध स्थितियों पर भी प्रकाश पड़ता है।

4.5. द्वितीय भाषा अधिगम तथा द्विभाषिकता

द्वितीय भाषा अधिगम को एक जटिल प्रक्रिया मानने के साथ ही साथ विशिष्ट उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया गया है। अन्य भाषा अधिगम और शिक्षण के संकेतार्थ अत्यंत व्यापक हैं। इसका संबंध न केवल शैक्षिक एवं प्रशासन तंत्र से है बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक एवं व्यावसायिक क्षेत्रों से भी है। वस्तुतः वर्तमान युग

में मातृभाषा के साथ-साथ किसी अन्य भाषा अथवा भाषाओं को सीखने का महत्व इस सीमा तक बढ़ गया है कि राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों में इसे शिक्षित व्यक्ति का एक अनिवार्य अभिलक्षण माना जा सकता है। औपचारिक शिक्षा के संदर्भ में अन्य भाषा का शिक्षण पाठ्यक्रम का एक महत्वपूर्ण दायित्व है। अनौपचारिक संदर्भों में भी जीवन की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मातृभाषा से इतर किसी दूसरी भाषा अथवा भाषाओं का सीखना आवश्यक हो जाता है। अन्य भाषा अधिगम एवं शिक्षण की प्रक्रिया के फलस्वरूप अध्येता अनिवार्यतः द्विभाषिक बन जाता है। अन्य भाषा अधिगम की इस प्रवृत्ति को अधुनातन नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक युग में ज्ञानार्जन, धर्मप्रचार, व्यवसाय तथा शिक्षा के क्षेत्र में अन्य भाषा अथवा भाषाओं को सीखने की परंपरा सर्वत्र विद्यमान रही है। यही कारण है कि राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों में द्विभाषिकता को एक सामान्य विशिष्टता के रूप में स्वीकार किया गया है। कहा जा चुका है कि मातृभाषा सीखने की क्षमता बालक में जन्म से ही वर्तमान होती है। भाषायी परिवेश में सहज एवं स्वाभाविक उद्भासन के फलस्वरूप बालक मातृभाषा को उपार्जित कर लेता है परंतु अन्य भाषा का अधिगम वैयक्तिक अथवा सामाजिक आवश्यकताओं से उत्प्रेरित होता है। अतः अन्य भाषा अधिगम एवं शिक्षण के संदर्भ में इन आवश्यकताओं की प्रकृति, अध्येता की अधिगम योग्यताएँ, तदनुकूल शिक्षण सामग्री के निर्माण एवं शिक्षण युक्तियों के चयन आदि पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

4.5.1. द्विभाषिकता एवं उसकी प्रकृति

दो भाषाओं के वैकल्पिक प्रयोग की स्थिति को द्विभाषिकता और उसका प्रयोग करने वाला द्विभाषिक माना जाता है (वाईन राईक 1953) कुछ विद्वान द्विभाषिकता के लिए भाषा प्रयोग की स्थिति को आवश्यक नहीं समझते। वे दो भाषाओं के ज्ञान को ही द्विभाषिकता मानते हैं (हागेन 1972)। भाषा प्रयोग के सिद्धांत की संगति चामस्की द्वारा प्रतिपादित भाषा निष्पादन से है और भाषा ज्ञान का सिद्धांत "क्षमता" विषयक संकल्पना से संबद्ध है। "क्षमता" के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए यह कहा जाता है कि द्विभाषिक में "दोहरी भाषिक" क्षमता होती है। अतः आदर्श द्विभाषी वह है जिसके लिए "एक शरीर में दो मातृभाषियों का सह अस्तित्व" की बात कही जा सके (हागेन 1972)। यह भी कहा जा रहा है कि द्विभाषिक व्यक्ति वह है जो दो भाषाओं में उतनी ही दक्षता और सहजता से अपने को अभिव्यक्त कर सकता है जितनी दक्षता से मातृभाषी अपने को अभिव्यक्त करता है (हारमैन 1971)। परंतु आज इन मंतव्यों को संदिग्ध दृष्टि से देखा जाने लगा है। इसी प्रकार द्विभाषिकता को भी "स्थिति विशेष" तथा बाल्यकाल में दो भाषाओं को समान रूप से सीखने और एक

ही कथन को दो भिन्न भाषाओं में समान एवं सहज भाव से अभिव्यक्त करने की कुशलता नहीं माना जा सकता। दो भाषाओं में मातृभाषावत पूर्ण दक्षता संभव नहीं है। यह माना जाता है कि द्विभाषिकता के अनेक प्रकार हैं और द्विभाषिक की भाषायी क्षमता में विभिन्न संदर्भों के अनुकूल विविधता दृष्टिगत होती है। सामान्यत: कोई भी व्यक्ति दो भाषाओं पर आदर्श रूप से अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। द्विभाषी व्यक्ति में "केवल एक तथा आधी क्षमता हो सकती है" और चूंकि यह एक से अधिक है अत: उसे द्विभाषी मानना ही उचित है। क्षमता एवं निष्पादन की सामान्य चर्चा की भाँति द्विभाषिक क्षमता के संबंध में भी एक बात उल्लेखनीय है कि यहाँ भी क्षमता तथा निष्पादन के बीच पर्याप्त अंतराल वर्तमान रहता है। द्विभाषिकता के संबंध में विभिन्न दार्शनिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणों से चर्चा की जा सकती है भारतीय आचार्यों ने यद्यपि द्विभाषिकता के संदर्भ में तो विशेष कुछ नहीं कहा है परंतु उनके दार्शनक विचारों का हम इस संदर्भ में भी लाभ उठा सकते हैं। भारत में संस्कृत के साथ अन्य भाषाओं का भी व्यवहार होता था, पतंजलि, भरत मुनि आदि आचार्यों ने इसे प्रमाणित किया है। पतंजलि ने स्वीकार किया कि अपभ्रंश के शब्दों से भी उसी प्रकार अर्थ का बोध होता है जिस प्रकार संस्कृत के शब्दों से। उनका सिद्धांत है कि अपभ्रंश के शब्द भी स्वतंत्र रूप से वाचक हैं। न्याय दर्शन के आचार्यों ने भी इस सिद्धांत की पुष्टि की। पतंजलि की मान्यता है कि औपचारिक कार्यों में परिमार्जित संस्कृत का प्रयोग करना चाहिए अन्यत्र चाहे जिस भाषा का प्रयोग करें उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। कहा जा सकता है कि मानव स्वभाव है कि विशिष्ट प्रयोजनों के संदर्भ में एकाधिक भाषाओं का प्रयोग करता रहा है।

समाज शास्त्री यह मानता है कि द्विभाषिकता के मूल में सामाजिक आवश्यकता निहित है। सम्प्रेषण की आधारभूत आवश्कता के फलस्वरूप व्यक्ति द्विभाषी एवं बहुभाषी बनता है। यह आवश्यकता अल्पकालीन अथवा दीर्घकालीन हो सकती है और उसके व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक या राजनैतिक कारण हो सकते हैं। वस्तुत: किसी भाषा समाज में भाषायी समरूपता अथवा एक भाषा की स्थिति की संकल्पना को केवल आदर्श कल्पना ही माना जा सकता है। आज का भाषायी समाज न केवल द्विभाषी है बल्कि बहुभाषी भी है। अत: द्विभाषा का संबंध भाषाओं की द्वि अथवा बहु भाषिकता से हो सकता है अथवा भाषा विशेष की उपबोलियों से। परंतु शिक्षा के संदर्भ में भाषा के मानक रूपों की द्विभाषिकता ही विशेष महत्व रखती है। समाज भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्येक उक्ति का सामाजिक और संदर्भगत अर्थ होता है (गंपर्ज 1971)। इतना ही नहीं द्विभाषिकता को केवल एक स्थिति मात्र ही न मान कर सामाजिक उपकरण भी माना जाता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भाषा की भाँति द्विभाषिकता का केंद्र स्थल भी मानव मस्तिष्क है। भाषायी क्षमता और भाषायी निष्पादन में प्रयोक्ता की मानसिक शक्तियाँ गतिशील होती हैं। द्विभाषी की दोनों भाषाओं की क्षमता में भिन्नता होती है अत: प्रथम भाषा का प्रभाव दूसरी भाषा पर अनिवार्यत पड़ता है। यह प्रभाव सहयोग अथवा व्याघात के रूप मे परिलक्षित होता है। ये विशेषताएँ जब लंबे समय तक व्यापक एवं सामुदायिक रूप से वर्तमान रहती हैं तब भाषा का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। द्विभाषी के मस्तिष्क में कोई शब्द किस प्रकार वस्तु विशेष का बोध कराता है इसके संबंध में मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रणालियों का उल्लेख किया है। वस्तुत: ये द्विभाषिकता के प्रकार से संबंधित हैं। अत: इनकी संक्षेप में चर्चा करना उचित है।

वाइन राईक ने द्विभाषिकता के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है—संयुक्त, समानाधिकृत और आश्रित। अधिकांश मनोभाषा वैज्ञानिकों ने प्रथम दो प्रकारों को ही मान्यता प्रदान की है। यद्यपि आज अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर इस वर्गीकरण को संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा है परंतु द्विभाषिकों की अधिगम-प्रक्रिया की प्रकृति से अवगत होने तथा भाषा शिक्षण को अधिक प्रभावी बनाने में इस वर्गीकरण की विशेष उपयोगिता है।

संयुक्त द्विभाषिकता की स्थिति में द्विभाषी के मस्तिष्क में वस्तु विशेष के लिए दो भाषाओं के प्रतीक वर्तमान होते हैं। भाषा का प्रयोक्ता एक ही संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए दो भाषाओं का विकल्प रूप में प्रयोग करता है। यह स्थिति सामान्यत: उस समय उत्पन्न होती है जब वक्ता विभिन्न व्यवहार क्षेत्रों में दोनों भाषाओं का मुक्त रूप से प्रयोग करता है। भाषा अधिगम के संदर्भ में इस प्रकार के द्विभाषिक सामान्यत: मातृभाषा से अनुवाद के उपागम की सहायता लेते हैं। परस्पर संपर्क में आने के कारण दोनों भाषाओं का प्रभावित और परिवर्धित होना स्वाभाविक है।

समानाधिकृत द्विभाषिक दो भाषाओं का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करते हैं। ये दोनों भाषाएँ दो भिन्न प्रकार की संस्कृतियों एवं दृष्टिकोणों को अभिव्यक्त करने का साधन बनती हैं। इनका व्यवहार क्षेत्र भी पृथक होता है। दोनों भाषाएँ एक दूसरे के व्यवहार क्षेत्र में नहीं आतीं। दो भाषाओं की पृथक सत्ता को स्वीकार करने के फलस्वरूप भाषा अधिगम में अनुवाद प्रक्रिया की सहायता नहीं ली जाती। इस प्रकार की द्विभाषिकता का उद्देश्य न केवल दो भाषाओं की संस्कृति से संबंधित अंतर्दृष्ट का विकास करना होता है बल्कि उनकी रक्षा एवं निर्वाह का भी प्रयत्न करना रहता है।

द्विभाषिकता को दो भाषाओं के वैकल्पिक प्रयोग की स्थिति के रूप में स्वीकार करते समय वस्तुतः दो भाषाओं के प्रयोग की कुशलता पर विशेष बल दिया जाता है। द्विभाषिक की भाषायी कुशलता में गुणात्मक तथा मात्रात्मक दृष्टि से भिन्नता पाई जाती है। इसके अनुसार अन्य भाषा के कई उपवर्ग गठित किये जा सकते हैं। अन्य भाषा का अधिगम जब केवल ज्ञानार्जन के लिए किया जाता है अथवा ज्ञानार्जन का माध्यम माना जाता है तब भाषा का सहायक रूप दृष्टिगत होता है। इस स्थिति में वह व्यापक सामाजिक सम्प्रेषण का माध्यम नहीं बनती। विशिष्ट परंतु अस्थायी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सीखी गई अन्य भाषाएँ संपूरक दायित्व का निर्वाह करती हैं। परंतु जब अन्य भाषा अधिगम एवं शिक्षण का उद्देश्य भाषा पर इस सीमा तक अधिकार प्राप्त करना होता है कि उसका प्रयोग मातृभाषा की परिपूरक स्थितियों में किया जा सके तो वह परिपूरक भाषा के रूप में स्वीकार की जाती है। इस संदर्भ में भाषा का शिक्षण अन्य भाषा शिक्षण के रूप में किया जाता है। अध्येता जब अन्य भाषा का प्रयोग मातृभाषा के समकक्ष करने लगता है तब अन्य भाषा तथा मातृभाषा को भाषा शिक्षण में समकक्षता का गौरव प्राप्त होता है। अतः शिक्षण प्रक्रिया में द्विभाषिक शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। इसका उद्देश्य समतुल्य द्विभाषिकों का निर्माण करना होता है। परंतु इसे सामान्य स्थिति नहीं माना जा सकता, अपवाद रूप में कुछेक उदाहरण मिलते हैं। कहा जा चुका है कि अन्य भाषा अधिगम विशिष्ट उद्देश्यों से प्रेरित होता है अतः भाषा अधिगम सोद्देश्य प्रक्रिया है। बालक की भाषायी कुशलता के संदर्भ में द्विभाषिकता से संबंधित कुछ धारणाएँ पोषित होती रही हैं। अन्य भाषा अधिगम एवं शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए इनसे संबंधित वास्तविक तथ्यों का आकलन आवश्यक है।

4.5.2. द्विभाषिकता से संबंधित भ्रम

कुछ विद्वानों की यह मान्यता रही है कि द्विभाषिकता बालक के व्यक्तित्व के विकास एवं उसकी शिक्षा में बाधक सिद्ध होती है। एक भाषी बालकों की तुलना में द्विभाषी बालक शैक्षिक प्रगति की दृष्टि से पिछड़े होते हैं। यह भी कहा जाता है कि द्विभाषिकता की स्थिति में व्यक्ति की सामाजिक अस्मिता धूमिल हो जाती है और सांस्कृतिक एकीकरण की भावना क्रमशः विच्छिन्न होने लगती है। परंतु विविध अध्ययनों के आधार पर यह प्रमाणित किया जा चुका है कि द्विभाषिकता बालक के व्यक्तित्व के विकास एवं शैक्षिक प्रगति में बाधक न होकर साधक है। यही कारण है कि आज द्विभाषी शिक्षा को असंगत और व्यक्ति विरोधी मानने की प्रवृत्ति कम होती जा रही है (मैके 1972)।

द्विभाषिकता के संबंध में यह भी कहा जाता रहा है कि यह स्वाभाविक एवं सहज सम्प्रेषण व्यवस्था में बाधक सिद्ध होती है परंतु द्विभाषिकता को स्वभावगत कुशलता के रूप में स्वीकार किया गया है। विद्वानों की यह मान्यता है कि द्विभाषिकता प्रत्येक भाषायी समाज में प्रत्येक स्तर पर वर्तमान रहती है (हागेन 1972, फिशमैन 1972)। जीवन की बहुमुखी आवश्यकताओं, विविध सामाजिक संदर्भों तथा सांस्कृतिक परिवेशगत भिन्नता के कारण भाषायी व्यवस्था में समरूपता के स्थान पर विषम रूपता के दर्शन होते हैं। अतः द्विभाषिकता सम्प्रेषण व्यवस्था में बाधक न होकर वस्तुतः सामाजिक आवश्यकताओं तथा सामाजिक अर्थों की अभिव्यक्ति का प्रभावी साधन है।

द्विभाषिकता के संबंध में यह भ्रम भी प्रसारित किया जाता रहा है कि द्विभाषिकता मानव मन की सर्जनात्मक शक्ति का ह्रास करती है। कुछ विद्वानों के अनुसार दो भाषाओं के अध्ययन में बालक की मानसिक शक्तियों का क्षय होता है अतः यदि एक ही भाषा का अध्ययन किया जाये तो मानसिक शक्तियों एवं सर्जनात्मक प्रतिभा का विकास अपेक्षाकृत अधिक होगा। परंतु गंभीरता से विचार करने पर सर्जनात्मक शक्ति और द्विभाषिकता का परस्पर अंतर्विरोध प्रमाणित नहीं होता। कहा जा चुका है कि द्विभाषिकता की प्रकृति मूलतः सामाजिक प्रयोजन शीलता से नियंत्रित रहती है अतः सर्जनात्मकता के ह्रास का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। भारत तथा विश्व के व्यापक संदर्भ में द्विभाषिकता अथवा बहुभाषिकता विश्व के चिंतनशील महान् व्यक्ति का प्रमुख अभिलक्षण रहा है।

स्पष्ट है कि द्विभाषिकता मानव मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसके द्वारा न तो सहज मानसिक क्रियाओं में उलझाव उत्पन्न होता है और न ही किसी प्रकार की संवेगात्मक ग्रंथियाँ विकसित होती हैं। व्यक्तित्व के विकास में सम्प्रेषणात्मक कुशलता तथा सर्जनात्मक प्रतिभा के संपोषण में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। शैक्षिक प्रक्रिया में द्विभाषिकता की स्वीकृति वस्तुतः इसके महत्व का परिचायक है।

4.5.3. द्विभाषिकता का भारतीय संदर्भ

भारत बहुभाषाभाषी देश है। यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति द्विभाषी अथवा बहुभाषी है। सांस्कृतिक समन्वय में आस्था रखने वाला यहाँ का विशाल-जन समुदाय द्विभाषिकता को विशिष्ट कुशलता के रूप में स्वीकार करता है। द्विभाषी अथवा बहुभाषी के प्रति यहाँ सदैव सम्मान की दृष्टि ही पोषित होती रही है। भारतीय संतों तथा महापुरुषों की परंपरा इसका ज्वलंत प्रमाण है जिन्होंने अपनी वाणी को जनता की वाणी में सम्मिलित कर ज्ञान एवं साधना की अलौकिक ज्योति प्रकाशित की। इनका उद्देश्य न केवल ज्ञान का प्रचार एवं प्रसार था बल्कि ये सच्चे अर्थों में

सांस्कृतिक समन्वय के पोषक थे। इस परिपेक्ष्य में विकसित भारतीय द्विभाषिकता को समन्वित संस्कृति पर आधारित द्विभाषिकता कहा जा सकता है।

राजनैतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप यद्यपि भारत में विदेशी भाषा का प्रभुत्व जनता पर भी व्याप्त हो गया था और द्विभाषिकता का वह रूप भी प्रमुख रहा है जहाँ भारतीय भाषा के साथ विदेशी भाषा का भी सीखना अनिवार्य समझा जाता था। परंतु स्वतंत्रता की भावना से प्रेरित होकर भारतीय जनता ने भारतीय भाषा के प्रसार एवं प्रचार का प्रयत्न किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय में भाषा जनजीवन को जोड़ने की एक महत्वपूर्ण संयोजक कड़ी के रूप में अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने में समर्थ हुई। यद्यपि भारत की प्रत्येक भाषा संपर्क भाषा की शक्ति से संपन्न है परंतु अनेक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय कारणों से हिंदी को राष्ट्रभाषा का प्रतिष्ठापूर्ण पद प्राप्त हुआ है। संपूर्ण देश में इसे विस्तृत धरातल पर सम्प्रेषण माध्यम के रूप में स्वीकृति प्राप्त है। भारतीय संविधान ने इसे राजभाषा का गौरव प्रदान किया है। यह आशा की जाती है कि निकट भविष्य में वह अपने वास्तविक महत्व को प्रतिष्ठित कर सकेगी। राष्ट्रभाषा के रूप में यह राष्ट्रवादिता को पोषित करती है तो राजाभाषा के रूप में राष्ट्रीयता से संबद्ध है। स्वाभाविक है कि द्विभाषा एवं बहुभाषिकता के विकास में यह स्थिति ज्ञात अथवा अज्ञात रूप में सहायक है। इतना ही नहीं इससे राष्ट्र के स्तर पर समाज और सांस्कृतिक तादाम्य स्थापित होता है और भाषायी समाज अपनी सामाजिक अस्मिता निर्धारित करने में सक्षम होता है।

भारतीय संदर्भ में द्विभाषिकता सामाजिक सम्प्रेषण व्यवस्था की सहज निष्पत्ति है। जीवन के विविध प्रसंगों में विविध प्रकार के प्रयोजनों से जन समुदाय मातृ-भाषा से इतर दूसरी भाषा को, विशेष कर हिंदी को, अपनाता रहा है। अतः द्विभाषा से संबंधित भ्रमों के प्रसार के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। द्विभाषिकता विभिन्न क्षेत्रों में विकास एवं समृद्धि का साधन रही है। यद्यपि व्यक्ति की सामाजिक अस्मिता के निर्धारण में मातृभाषा का योगदान विशेष रूप से स्वीकृत है परंतु द्विभाषिकता भी व्यक्तित्व की संपुष्टता का सामाजिक प्रतिष्ठा का द्योतक मानी जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि द्विभाषिकता को विविध सामाजिक व्यवस्थाओं से समुचित समर्थन प्राप्त रहा है।

भारतीय द्विभाषिकता की एक प्रमुख विशेषता उसकी भाषायी सामासिकता है। विभिन्न भाषा परिवार की भाषाएँ परस्पर एक दूसरे से संबद्ध हैं। भारत की विभिन्न भाषाओं में एक दूसरे के भाषायी लक्षण समन्वित हैं। यह समग्रता एवं सामासिकता भाषा की संपन्नता तथा उसके समुचित विकास में सहायक है। विभिन्न

अध्ययनों के द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका है कि भारत के विभिन्न भाषायी परिवारों के बीच वर्तमान भाषायी समानता भाषायी संपर्क का ही परिणाम है इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। अतः भाषा अवमिश्रण विविध स्तरों पर तथा विविध रूपों में दृष्टिगत होता है। भाषा अवमिश्रण की इस प्रक्रिया में आधार भाषा एक ओर यदि विविध भाषायी स्तरों पर द्वितीय भाषा को प्रभावित करती है तो दूसरी ओर वह शब्द स्तर पर उसकी विशिष्टताओं को आत्मसात भी करती है। यह परस्पर आदान प्रदान भाषायी विकास का द्योतक है।

स्पष्ट है कि भारतीय संदर्भ में द्विभाषिकता भाषायी समाज की एक विशिष्ट उपलब्धि है। इससे न केवल भाषायी कुशलता का संवर्धन होता है बल्कि यह व्यक्तित्व के विकास में, सांस्कृतिक चेतना के संक्रमण में, तथा राष्ट्रीय बोध के उन्नयन में भी सहायक है। वस्तुतः यह भाषा के संयोजक दायित्व का निर्वाह करने में सक्षम है। इन सबका मूल कारण यह है कि द्विभाषिकता जन जीवन के आधार भूत सम्प्रेषणात्मक प्रयोजनों से संबद्ध भारतीय जनता की विशिष्टता है।

5
अन्य भाषा अधिगम को प्रभावित करने वाले तत्व

5.0. अन्य भाषा का अधिगम एक विशिष्ट प्रक्रिया है। यद्यपि मातृभाषा अधिगम तथा अन्य भाषा अधिगम में कुछ प्रमुख दृष्टिकोणों से अधिगम प्रक्रिया की समानता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है परंतु समरूपता का नहीं। भाषा अधिगम की प्रक्रिया में द्वितीय भाषा का अध्येता जिन युक्तियों का प्रयोग करता है, उनमें से कुछ युक्तियाँ ऐसी होती हैं जिनका उपयोग बालक मातृभाषा के उपार्जन में कर चुका होता है अथवा करता है। परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि अधिगम-अनुक्रम भी समान है। अन्य भाषा अधिगम को एक विशिष्ट उपलब्धि के रूप में इसलिए भी स्वीकार किया जाता है कि मातृभाषा अधिगम में तो (सामान्य) छात्र दक्षता के सामान्य स्तर तक पहुँचने में सफल हो जाते हैं परंतु अन्य भाषा के संदर्भ में यह संकल्पना अति महत्वाकांक्षा मात्र ही रह जाती है।

भाषा अधिगम में यद्यपि जन्मजात भाषायी दक्षता, समुचित भाषायी उद्भासन, भाषा उपार्जन, अधिगम से संबंधित मानसिक शक्तियों एवं भाषा संप्राप्ति युक्ति की पर्याप्त चर्चा की जाती है परंतु अन्य भाषा अधिगम में अधिगम की सफलता के विविध रूप संभव हैं। वोन हम्बोल्ड के इस कथन का भी पुनः स्मरण किया जाता रहा है कि हम वस्तुतः किसी भाषा को सिखा नहीं सकते, हम केवल ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकते हैं जिससे यह अध्येता के मस्तिष्क में स्वतः अपने ढंग से विकसित होती हो।

भाषा अधिगम एवं शिक्षण का संबंध स्पष्टतया दो विधाओं से है। एक ओर यह भाषा विषयक सिद्धांतों से तथा दूसरी ओर भाषावैज्ञानिक मान्यताओं से विशेष रूप से प्रभावित हैं। अतः भाषा अध्ययन संबंधी विचारधाराओं एवं प्रणालियों का इस पर अनिवार्यतः प्रभाव पड़ता है। दो भाषाओं की प्रकृति, उनका वैषम्य एवं तदनुरूप सहयोग एवं व्याघात सिद्धांतों का भाषा अधिगम प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ना

अवश्यंभावी है। दूसरी ओर अधिगम प्रक्रिया से संबंधित सिद्धांत एवं मानसिक शक्तियाँ, प्रवृत्तियाँ तथा अन्य मनोवैज्ञानिक तत्व भाषा अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। भाषा अधिगम का मनोवैज्ञानिक पक्ष मनोभाषाविज्ञान के रूप में विद्वानों का समर्थन प्राप्त कर चुका है। इन दो पक्षों के अतिरिक्त भाषा अधिगम का समाज शास्त्रीय संदर्भ भी विशेष महत्व रखता है। भाषा संदर्भ सापेक्ष सामाजिक व्यवहार है। अतः भाषा अधिगम की प्रक्रिया सामाजिक संदर्भों से नियंत्रित होती है। अन्य भाषा अधिगम तथा शिक्षण प्रक्रिया की चर्चा उपर्युक्त संदर्भों में करना ही समीचीन होगा।

मातृभाषा-अधिगम की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट किया जा चुका है कि मातृभाषा निकटवर्ती परिवेश एवं बाह्य जगत से परिचित होने, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा इच्छाओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति का सहज साधन है। बालक इसे अनिवार्य आवश्यकता के रूप में उपार्जित करता है। परंतु अन्य भाषा अधिगम में स्थिति परिवर्तित हो जाती है। भाषा अधिगम का लक्ष्य एवं भाषा प्रयोग के संदर्भों की भिन्नता तथा मातृभाषा की अभ्यास जनित कुशलता के फलस्वरूप अधिगम-प्रक्रिया में भिन्नता होना स्वाभाविक है। अन्य भाषा अधिगम एवं शिक्षण का प्रारंभ सामान्यतः मातृभाषा उपार्जन एवं अधिगम के बाद होता है। अतः इसमें वह सहज अनिवार्यता अंतर्भूत नहीं होती जो मातृभाषा अधिगम का मूल उत्प्रेरक तत्व है। यही कारण है कि मातृभाषा अधिगम में भाषायी दक्षता पर अध्येता का स्वाभाविक रूप से अधिकार हो जाता है, परंतु अन्य भाषा में यह दक्षता कुछ ही लोगों में विकसित हो पाती है।

अन्य भाषा का अध्येता चूँकि मातृभाषा पर अधिकार रखता है, अतः उसकी अनुभूतियाँ, विचार तथा भाषायी आदतें मातृभाषा के माध्यम से सुगठित एवं विकसित होती हैं। उसके समस्त कार्य व्यापार एवं अनुभूतियों का माध्यम मातृभाषा ही होती है। परंतु अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया में उसे परिचित व्यापारों एवं अनुभूतियों के लिए नवीन भाषायी व्यवहार अपनाना पड़ता है। मातृभाषा की आदतें विविध भाषायी स्तरों पर बाधक सिद्ध होती हैं अतः अन्य भाषा अधिगम में कठिनाई का होना स्वाभाविक है।

अन्य भाषा का अध्येता मातृभाषा की व्यवस्था से परिचित होता है, उसकी भाषायी आदतें सुगठित होती हैं, वह अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व एवं प्रौढ़ होता है; भाषा सीखने के प्रति उसका दृष्टिकोण, अभिवृत्ति आदि मातृभाषा की तुलना में परिवर्तित एवं परिवर्धित होते हैं; भाषा प्रयोग का क्षेत्र भी अपेक्षाकृत सीमित एवं नियंत्रित होता है। अतः अन्य भाषा अधिगम प्रक्रिया पर इनका प्रभाव पड़ना

स्वाभाविक है। इनको विवेचन-सुविधा की दृष्टि से सामान्यतः तीन वर्गों में रखा जा सकता है—

1—मनोवैज्ञानिक तत्व

2—भाषावैज्ञानिक तत्व

3—समाज वैज्ञानिक तत्व

भाषा अधिगम एवं शिक्षण प्रक्रिया के संदर्भ में इनका संक्षिप्त विवरण आवश्यक है।

5.1. मनोवैज्ञानिक तत्व

अन्य भाषा अधिगम तथा शिक्षण की प्रक्रिया अध्येता की मनोवैज्ञानिक स्थिति एवं प्रक्रियाओं से मूलतः नियंत्रित होती है। यद्यपि अन्य भाषा अधिगम से संबंधित अध्ययनों (रावेम 1970, मिलन 1972, इरविन ट्रिप 1973, डूले और वर्ट 1973-1974 आदि) के द्वारा मातृभाषा तथा अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया में समानता की ओर संकेत किया गया है परंतु इसका अभिप्राय मनोवैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि की तदनुरूपता से कदापि नहीं है। मातृभाषा अधिगम तथा अन्य भाषा अधिगम का मनोवैज्ञानिक संदर्भ निश्चित रूप से भिन्न होता है।

भाषा अधिगम को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक तत्व का क्षेत्र अति व्यापक है। इसका संबंध एक ओर यदि अध्येता की शारीरिक तथा मानसिक आयु, तत्परता, अभिक्षमता एवं विविध मानसिक शक्तियों से है तो दूसरी ओर उसके संवेगात्मक पक्ष, अभिवृत्ति, उत्प्रेरण, तदनुभूति से है। अधिगम एवं शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए अध्यापक का इनसे परिचित होना आवश्यक है।

5.1.1. मानसिक अथवा बौद्धिक पक्ष

कहा जा चुका है कि अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया मातृभाषा अधिगम के पश्चात् अथवा क्रम में प्रारंभ होती है। विविध कारणों से मातृभाषा अधिगम तथा अन्य भाषा अधिगम में तात्विक अंतर पाया जाता है। अन्य भाषा सीखने की योग्यता सभी व्यक्तियों में समान रूप से नहीं पाई जाती। कुछ लोग अन्य भाषा में वांछित कुशलता शीघ्र ही विकसित कर लेते हैं, जबकि दूसरों को भाषा पर अधिकार प्राप्त करने में पर्याप्त समय लगता है और कुछ लोग तो अन्य भाषा सीखने में नितांत असफल ही रहते हैं। अधिगम संबंधी इस विविधता के अनेक कारणों में से निम्नलिखित प्रमुख हैं—

5.1.1.1. आयु

सामान्यतः यह धारणा प्रचलित है कि अन्य भाषा अधिगम जितनी छोटी आयु में प्रारंभ होता है, अधिगम में उतनी ही अधिक सफलता मिलती है। द्विभाषिकता से संबंधित अध्ययनों के द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका है कि प्रारंभ से ही दो भाषाओं का प्रयोग करने वाले बालक दोनों ही भाषाओं पर लगभग समान अधिकार रखते हैं। प्रयोगों द्वारा यह भी प्रमाणित किया गया है कि बाल्यावस्था में यदि बालक को मातृभाषा के परिवेश से हटाकर अन्य भाषा के ही परिवेश में रखा जाये तो वह मातृभाषा को न केवल भूल जाता है बल्कि अन्य भाषा पर मातृभाषा-भाषीवत अधिकार प्राप्त कर लेता है।

वाक् तंत्र का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने, जिनमें पेनफील्ड और राबर्ट का नाम उल्लेखनीय है, तांत्रिकीय प्रमाण के आधार पर इस बात का समर्थन किया है कि अन्य भाषा की शिक्षा बाल्यावस्था में ही देनी चाहिए। मांस पेशियों को नियंत्रित करने की क्षमता मस्तिष्क के बांये भाग में केंद्रित होती है, किसी कारण से यदि यह भाग क्षतिग्रस्त हो जाता है तो केवल बालक ही, युवावस्था के पूर्व, मांस पेशियों के इस नियंत्रण को दायीं ओर स्थानांतरित कर सकता है। भाषा अधिगम में भी मांसपेशियों की सक्रियता अपेक्षित होती है अतः नवीन भाषा की उच्चारणगत विशेषताओं पर बाल्यावस्था में भली-भाँति अधिकार हो सकता है। इनके अनुसार नौ वर्ष की आयु तक बालक का मस्तिष्क भाषा अधिगम के लिए विशेष रूप से उपयुक्त होता है अतः बाल्यावस्था में अन्य भाषा को सीखना अपेक्षाकृत सरल होता है।

भाषा सीखने में बाल्यावस्था को भाषा के रूप का काल और प्रौढ़ावस्था को विषय वस्तु का काल माना गया है (मैकी)। कारण स्पष्ट है बाल्यावस्था में कथ्य को, अभिव्यक्त किये जाने वाले विचारों की मात्रा कम होती है परंतु भाषायी रूपों, विशेषकर ध्वनि व्यवस्था पर अधिकार पाने की क्षमता अधिक होती है अतः भाषा की संरचना पर, उसके प्रयोग पर बालक सहज ही अधिकार पा लेता है। इसके विपरीत वयस्क अध्येता में अभिव्यक्त की जाने वाली सामग्री तथा विचारों का आधिक्य होता है, परंतु भाषा की संरचना पर उसका सहज अधिकार नहीं हो पाता। बाल्यावस्था में अन्य भाषा अधिगम-प्रक्रिया की सहजता एवं स्वाभाविकता के अनेक कारण हो सकते हैं यथा अनुकरण तथा दोहराने की स्वाभाविक प्रवृत्ति, वाक् अवयवों का लचीलापन, मातृभाषा का न्यूनतम व्याघात, संकोच का अभाव तथा भाषायी अहम् (Language ego) का विकसित न होना आदि। भाषा अधिगम में अवरोध विशेष रूप से बाधक है। छोटे बालकों में भाषा सीखते समय उस चेतना का अभाव होता

हैं जो सामान्यतः बड़ों से विकसित होकर संकोच को जन्म देती है। इन सभी कारणों से अन्य भाषा को बाल्यावस्था में सिखाना अधिक उपयोगी समझा जाता है। परंतु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वयस्क अध्येता सभी दृष्टियों से भाषा अधिगम में पिछड़ा होता है। कैरोल ने अपने अध्ययन में अभिवृत्ति को आयु से अधिक प्रभावशाली घटक माना है। वयस्क अध्येता उद्देश्यों की स्पष्टता, समुचित उत्प्रेरण, पर्याप्त भाषायी समझ तथा अनुभव क्षेत्र की विविधता से युक्त होता है अतः कई दृष्टियों से वह बालक की तुलना में सफल अध्येता प्रमाणित होता है। फिर भी बाल्यावस्था से अन्य भाषा के शिक्षण पर पर्याप्त ध्यान देना अधिक समीचीन माना जाता है।

5.1.1.2. उद्देश्यों की चेतना

भाषा अधिगम में उद्देश्यों की स्पष्ट चेतना अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करती है। छात्र जिस लक्ष्य की पूर्ति के लिए भाषा सीख रहा है, उसका सतत प्रत्यक्षीकरण आवश्यक है। लक्ष्य विशेष के संदर्भ में ही भाषायी कुशलता का स्तर निश्चित किया जाता है। कुशलता के निर्धारित स्तर के अनुरूप ही अध्येता की तत्परता वांछनीय है। उद्देश्यों की चेतना अध्येता को वांछित प्रयत्न के लिए प्रेरित करती है। प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से यह चेतना अधिगम से संबंधित सभी प्रक्रियाओं को प्रभावित करती है।

मातृभाषा के अधिगम में ये उद्देश्य अनिवार्यता से संबद्ध होते हैं। भाषा के माध्यम से बालक निकटवर्ती परिवेश को नियंत्रित करता है और भाषायी समुदाय के सदस्य के रूप में अपने आपको प्रतिष्ठित करता है। परंतु अन्य भाषा के अधिगम में यह स्थिति नहीं होती। अभिव्यक्ति-माध्यम के रूप में मातृभाषा पर समुचित अधिकार होने के कारण वह अन्य भाषा अधिगम की अनिवार्यता का अनुभव नहीं कर पाता। इतना ही नहीं मातृभाषा को वह आवश्यकताओं की पूर्ति के सहज साधन के रूप में स्वाभाविक रूप से सीखता है परंतु अन्य भाषा को उसे साध्य के रूप में सीखना पड़ता है। अतः अन्य भाषा अधिगम का लक्ष्य प्रारंभ में उसके लिए शैक्षिक एवं ज्ञान प्रधान ही होता है न कि सामाजिक।

अन्य भाषा का वयस्क अध्येता भाषा के साधन और साध्य दोनों ही रूपों से परिचित होता है। साधन और साध्य का अंतराल जितना ही कम होगा अधिगम में उतनी ही अधिक सफलता निश्चित है। इससे अध्येता लक्ष्य और उपलब्धियों का सतत साक्षात्कार करने में समर्थ होता है। भाषा शिक्षण में उद्देश्यों का स्पष्टीकरण नितांत आवश्यक है।

उद्देश्यों की स्पष्ट चेतना अध्येता में तद् विषयक रुचि को जागृत करती है। वयस्क अध्येता अन्य भाषा के अधिगम द्वारा व्यावहारिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होता है। अतः वह भाषा को अधिक मनोयोग से सीखता है। अधिकांश अध्येताओं को यह रुचि आरोपित होती है जो निरंतर अभ्यास के कारण व्यवहार का अंग बन जाती है।

उद्देश्यों की चेतना एवं भाषा अधिगम की सार्थकता अध्येता में सीखने की तत्परता को जन्म देती है। अध्येता सीखने के लिए मानसिक रूप से जितना ही अधिक तत्पर होगा, अधिगम की सफलता उतनी ही निश्चित होगी। तत्परता को रुचि का कारण और परिणाम दोनों ही माना जा सकता है। भाषा अधिगम में रुचि जागृत होने पर तत्परता आती है और तत्परता होने पर क्रमशः रुचि का भी विकास होता है। अतः अध्येता को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सीखने के लिए तत्पर करना शैक्षिक प्रक्रिया का दायित्व हो जाता है।

5.1.1.3. बुद्धि तथा व्यक्तित्व

अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया में बुद्धि तथा व्यक्तित्व का विशेष योगदान है। सम्प्रेषण के आधारभूत साधन के रूप में मातृभाषा को बालक अनिवार्यतः सीखता है। मातृभाषा अधिगम में भी व्यक्तिगत भिन्नता पाई जाती है। दो बालकों के भाषायी विकास की गति तथा मात्रा में भिन्नता होती है। अन्य भाषा में सहज अनिवार्यता का अभाव होने के कारण भाषा अधिगम विशेष प्रयत्न साध्य मनोशारीरिक प्रक्रिया है अतः बुद्धि तथा व्यक्तित्व के साथ इसका प्रगाढ़ संबंध है। सामान्यतः तीव्र बुद्धि के प्रतिभाशाली अध्येता अन्य भाषा पर पर्याप्त अधिकार करने में समर्थ होते हैं यद्यपि इसके अपवाद भी हैं। परंतु मानसिक रूप से पिछड़े हुए बालक सामान्यतः अन्य भाषा के अधिगम में पर्याप्त कुशलता उपार्जित करने में असमर्थ रहते हैं।

मातृभाषा को बालक की बुद्धि एवं व्यक्तित्व के विकास का आधार माना जाता है। उसकी समस्त मानसिक शक्तियाँ मातृभाषा के माध्यम से विकसित होती हैं। अन्य भाषा सामान्यतः उस समय सीखी जाती है जब उसका मस्तिष्क अधिक परिपक्व हो जाता है। अन्य भाषा के वयस्क अध्येता का मातृ-भाषायी ज्ञान एवं क्षेत्र अधिक व्यापक होता है। वह जितना अधिक प्रतिभाशाली होगा, भाषायी क्षेत्र उतना ही विस्तृत एवं संपुष्ट होगा।

भाषा अधिगम में बुद्धि के योगदान से संबंधित कुछ अध्ययन हुए हैं। इनके अनुसार अनुकरण का, जो अधिगम का मुख्य साधन है, बुद्धि के साथ कोई संबंध नहीं

है। परंतु भाषा अधिगम अनुकरण मात्र नहीं है। भाषायी बोधन एवं अभिव्यक्ति का बुद्धि के साथ घनिष्ठ संबंध है। भाषण, वाचन तथा लेखन की प्रक्रिया में सामान्य ज्ञान तथा तर्क एवं चिंतन का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः अन्य भाषा के अधिगम में बुद्धि का विशेष योगदान स्वतः स्पष्ट है।

जहाँ तक व्यक्तित्व का प्रश्न है बहिर्मुखी व्यक्ति अंतर्मुखी की अपेक्षा भाषा-अधिगम में अधिक समर्थ माना जाता है। कौशल प्रधान विषय होने के नाते भाषायी आदतों का गठन अभ्यास एवं व्यवहार सापेक्ष है। अतः बहिर्मुखी व्यक्ति सामाजिक संपर्कों में अन्य भाषा का स्वभावतः अधिक प्रयोग करता है।

अध्येता के व्यक्तित्व के विकास में अन्य भाषा का क्या योगदान है? इस संबंध में अंतिम रूप से तो कुछ नहीं कहा जा सकता, परंतु यह निश्चित है कि दोहरी भाषायी कुशलता आत्म विश्वास एवं ज्ञान क्षेत्र के विकास का समुचित आधार है। व्यक्तित्व की संपुष्टता इसका सहज परिणाम है। द्विभाषिकता के समर्थन में दिए गए तर्क वस्तुतः इस तथ्य की ही पुष्टि करते हैं।

5.1.1.4. मानसिक शक्तियाँ

अन्य भाषा के अधिगम में कुछ मानसिक शक्तियों का विशेष योगदान है। अन्य भाषा की व्यवस्था पर समुचित अधिकार प्राप्त करने के लिए उन पर ध्यान केंद्रित करना, उन विशिष्टताओं को स्मृति कोष में सुरक्षित रखना, उनके माध्यम से विचारों की अभिव्यक्ति एवं चिंतन प्रक्रिया में विविध मानसिक शक्तियाँ क्रियाशील रहती हैं। इनकी सक्रियता एवं कार्यकारिता के आधार पर ही अन्य भाषा अधिगम प्रक्रिया की प्रभाविकता का अनुमान लगाया जा सकता है। अतः इनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना उचित होगा।

(1) स्मृति

अध्येता की स्मरण शक्ति का अन्य भाषा के अधिगम में विशेष महत्व है। भाषा की ध्वनियों को सुन कर पहचानने और याद रखने की क्षमता तथा उनका पुनः स्मरण स्मृति के विशेष घटक हैं। अन्य प्रकार की प्रतिभाओं (imeges) की तुलना में श्रव्य प्रतिभा सीखने में विशेष रूप से सहायक हैं। अन्य भाषा की ध्वनियों उनके संयोगों, शब्दों तथा भाषायी साँचों को स्मरण करने की शक्ति अध्येता में जितनी ही अधिक होगी, भाषा सीखने में उसे सरलता होगी। छोटे बालकों में रटने की शक्ति अधिक होती है परंतु कुछ कारणों से विस्मृति की मात्रा कभी-कभी अधिक

होती है। सजग वयस्क अध्येता का स्मृति क्षेत्र व्यापक और विस्मृति की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। इस आधार पर बालक और वयस्क अध्येता की वरीयता विवादास्पद है। फिर भी यह तो निश्चित है कि यदि स्मृति सूझ तथा भाषायी समझ पर आधारित है तो भाषा अधिगम में सफलता की अधिक संभावना है। स्मरण किये गए भाषायी रूपों एवं साँचों का प्रयोग किन संदर्भों में करना उचित है, इसकी समझ अन्य भाषा अधिगम में विशेष रूप से सहायक है। शब्दों के अर्थ का प्रत्यक्षीकरण करते समय वयस्क अध्येता का शब्द भंडार, बाल अध्येता की अपेक्षा अधिक समृद्ध होता है। इसके फलस्वरूप सामान्यतः वह बोधन तथा निष्पादक भाषायी व्यवहार में अधिक समर्थ होता है।

(2) अवधान

भाषा अधिगम में अवधान सहित अधिगम का प्रभाव स्थायी और व्यापक होता है। ध्यान पूर्वक किये गए कार्यों का अधिगम की गति और मात्रा से आंतरिक संबंध है। वयस्क अध्येता में उद्देश्यों की स्पष्ट संकल्पना न केवल सीखने में रुचि उत्पन्न करती है बल्कि अवधान को भी केंद्रित करती है। छोटे बालकों का ध्यान अधिक चंचल होता है। किसी विषय वस्तु पर उनका ध्यान केवल कुछ समय तक ही ठहर सकता है। वयस्क अध्येता इस दृष्टि से अधिगम में अधिक समर्थ एवं सफल होता है। दो भाषाओं के तुलनात्मक विवेचन में वयस्कों के अधिक समर्थ होने के कारण मानसिक परिपक्वन तथा भाषायी घटकों पर पर्याप्त अधिकार तो है ही, परंतु अवधान का भी कम महत्व नहीं है।

(3) चिंतन शक्ति

भाषा और विचार का संबंध इस सीमा तक जटिल है कि वह दार्शनिकों तथा विचारकों के लिए एक चुनौती है। चिंतन में संकल्पनाओं का निर्माण एवं विकास जितना ही सुगठित होगा भाषायी संकल्पनाओं का गठन उतना ही सरल एवं बहुमुखी होगा। यद्यपि मातृभाषा बालक के चिंतन के विकास में सहायक है और अन्य भाषा में चिंतन शक्ति के विकास की उतनी अपेक्षा सामान्यतः की जा सकती फिर भी चिंतन और तर्क शक्ति का अन्य भाषायी अधिगम में विशेष योगदान है। इसके आधार पर भाषायी सूझ विकसित होती है। फलस्वरूप भाषायी घटकों तथा उनके नियमों को वह आत्मसात करता है। अध्येता अन्य भाषा में अपने अनुभव जगत को पुनर्गठित करने में अपेक्षाकृत अधिक समर्थ होता है।

(4) अन्य मानसिक शक्तियाँ

अन्य भाषा अधिगम एक जटिल एवं समन्वित प्रक्रिया है। यह अध्येता की विशिष्ट उपलब्धि के रूप में स्वीकृति है। अन्य भाषा का छात्र विविध भाषायी कौशलों पर समुचित अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। भाषायी संकल्पनाओं के गठन, एवं विभिन्न भाषायी घटकों की जानकारी तथा उन पर समुचित अधिकार प्राप्त करने के क्रम में बालक की विविध मानसिक शक्तियाँ गतिशील रहती हैं। अतः भाषा अधिगम में स्मृति, अवधान एवं चिंतन के साथ-साथ अन्य मानसिक शक्तियों का भी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से योगदान स्वीकृत है।

5.1.2. संवेगात्मक पक्ष

अन्य भाषा अधिगम का अध्येता के संवेगात्मक पक्ष से घनिष्ठ संबंध है। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि मातृभाषा अधिगम में संवेगों का कोई महत्व नहीं है। चूंकि अन्य भाषा सामान्यतः अतिरिक्त आवश्यकता के कारण सीखी तथा सिखायी जाती है अतः संवेदनशीलता का तत्व स्वतः अंतर्भूत हो जाता है फलस्वरूप अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया अध्येता के संवेगात्मक जगत से अधिक प्रभावित होती है। संवेगों को मूल प्रवृत्तियों का क्रियात्मक एवं गत्यात्मक पक्ष माना जाता है। मनोवैज्ञानिक घटकों में संवेगों का विशेष महत्व है। अन्य भाषा के अधिगम में इनका सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव विभिन्न रूपों में परिलक्षित होता है। अभिवृत्ति तथा उत्प्रेरण का संवेगात्मक पक्ष से घनिष्ठ संबंध है। अस्तु अधिगम प्रक्रिया पर इनका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

5.1.2.1. भाषायी अभिवृत्ति

भाषा अधिगम की प्रक्रिया को नियंत्रित करने वाला प्रमुख मनोवैज्ञानिक एवं संवेगात्मक तत्व भाषायी अभिवृत्ति है। भाषायी अभिवृत्ति की प्रकृति पर विचार करते समय यह तथ्य स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि यद्यपि अन्य भाषा अधिगम की योग्यता सभी लोगों में समान नहीं होती परंतु अध्येता में भाषा अधिगम की योग्यता स्थायी एवं सुदृढ़ रूप से वर्तमान होती है, इसे ही भाषायी अभिवृत्ति की संज्ञा दी जा सकती है।

बालक की भाषायी अभिवृत्ति के परीक्षण के लिए कुछ परीक्षणों का निर्माण किया गया है। इनमें "केराल और सापन" का "माडर्न लैंग्वेज एप्टीट्यूड टेस्ट" और पिम्सलीयर का "लैंग्वेज एप्टीट्यूड कैटरी" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इन परीक्षणों के द्वारा विविध भाषायी तत्वों के परीक्षण का प्रयास किया

गया परंतु इनके द्वारा भाषायी अभिवृत्ति का सही-सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। जो भी हो यह तो निर्विवाद है कि अन्य भाषा अधिगम में विविध प्रकार की कुशलताओं का संबंध भाषायी अभिवृत्ति से है जो स्वतः अन्य तत्वों से नियंत्रित होती है। इस अभिवृत्ति के फलस्वरूप ही कुछ लोग अन्य भाषा अधिगम में स्वाभाविक दक्षता प्राप्त कर लेते हैं। यद्यपि इसमें अधिगम परिवेश, भाषायी संपर्क एवं भाषायी प्रयोग आदि अनेक घटकों का प्रर्याप्त योगदान है फिर भी भाषायी अभिवृत्ति का महत्व निर्विवाद है।

5.1.2.2. उत्प्रेरण

अभिवृत्ति की भाँति "उत्प्रेरण" शब्द का प्रयोग भी अन्य भाषा अधिगम के संदर्भ में ही समीचीन माना जाता है। प्रत्येक सामान्य बालक मातृभाषा अधिगम में सफलता प्राप्त करता है। यद्यपि उनके सीखने की गति और भाषायी उपलब्धियों की मात्रा में भिन्नता होती है परंतु यह भिन्नता इस सीमा तक नहीं होती कि उनका संबंध अभिवृत्ति एवं उत्प्रेरणगत भिन्नता से जोड़ा जा सके। मातृभाषा के अधिगम में बालक का प्रत्यक्षीकरण, उसका व्यवहार तथा उसकी मानसिक क्रियायें मातृभाषा से नियंत्रित होती हैं। विविध आवश्यकताओं की पूर्ति में भाषा ही सहायक बनती है। आगे चल कर मातृभाषा न केवल उसके चिंतन का माध्यम बनती है बल्कि वह इसके द्वारा बाह्य परिवेश को भी नियंत्रित करने में समर्थ होता है। इसके विपरीत अन्य भाषा के अधिगम में व्यवहार को नियंत्रित करने, मानसिक शक्तियों को विकसित करने का प्रयत्न ज्ञान को सुव्यवस्थित करने के लिए भाषा की अनिवार्यता को नहीं स्वीकार किया जाता। अन्य भाषा के अधिगम में अध्येता का व्यवहार मातृभाषा की संस्कृति के अनुरूप गठित हो चुका रहता है। अन्य भाषा की संस्कृति के अनुरूप वह अपने व्यवहार साँचों को परिवर्तित करने की आवश्यकता नहीं समझता, यद्यपि परिवर्तन की इस प्रवृत्ति का उत्प्रेरण में विशेष महत्व स्वीकार किया गया है। मातृभाषा के अधिगम में भाषा सीखने की प्रेरणा अनिवार्य आवश्यकताओं से उद्भूत होती है। अन्य भाषा के अधिगम में सामान्यतः यह अनिवार्यता नहीं होती, परंतु यदि किन्हीं कारणों से अध्येता इस अनिवार्यता का अनुभव करने लगता है तो भाषा-अधिगम की प्रक्रिया अपेक्षाकृत सरल तथा सफलता की मात्रा अधिक हो जाती है। कहा जा सकता है कि यद्यपि अन्य भाषा अधिगम पर आयु, उद्भासन की मात्रा व्यक्ति तथा समूह के दृष्टिकोण का प्रभाव पड़ता है, परंतु इनमें से अनेक घटकों के समान होने पर भी अधिगम में व्यक्तिगत भिन्नता होती है। स्पष्ट है कि अध्येता की विविध आवश्यकताएँ जिन्हें वह सम्प्रेषित करना चाहता है अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार के उत्प्रेरण का प्रत्यक्ष संबंध भाषा अधिगम की प्रक्रिया से है, भाषा शिक्षण से नहीं। परंतु शिक्षण में इस प्रकार की परिस्थितियाँ

उत्पन्न की जा सकती हैं कि अध्येता भाषा प्रयोग की आवश्यकता का अनुभव करे।

अन्य भाषा के अधिगम में उत्प्रेरण के विविध रूप मिलते हैं। कुछ लोग सीखने के लिए अधिक उत्प्रेरित होते हैं और कुछ अपेक्षाकृत कम। कुछ लोग सीखना चाहते हैं और कुछ को सीखना पड़ता है। सीखना "चाहने वाला" समुदाय भाषा सीखने में अपेक्षाकृत अधिक समर्थ होता है। उत्प्रेरण का संबंध सीखने के उद्देश्यों तथा अध्येता के दृष्टिकोण से है। यह दृष्टिकोण न केवल अध्येय भाषा से संबद्ध है, बल्कि उस भाषा के मातृभाषा भाषी प्रयोक्ताओं से भी संबद्ध है। द्विभाषिकता की स्थिति भी इस परिधि में आती है।

भाषा अधिगम की दृष्टि से उत्प्रेरण के दो रूपों पर विचार किया जा सकता है उपकरणात्मक तथा समन्वयात्मक।

(1) उपकरणात्मक उत्प्रेरण

उपकरणात्मक उत्प्रेरण, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है किसी लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है। अन्य भाषा का अधिगम किन्हीं विशिष्ट लक्ष्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है जैसे परीक्षा में सफलता, व्यवसाय तथा सेवा में प्रयोग, पर्यटन, शैक्षिक अनिवार्यता आदि। इन संदर्भों में भाषा का उपकरणात्मक प्रयोग होता है। भाषा अधिगम एवं शिक्षण में सामान्यतः उत्प्रेरण का यह रूप ही दृष्टिगत होता है। छात्र किन्हीं प्रयोजनमूलक एवं सामान्य उद्देश्यों से प्रेरित हो कर ही अन्य भाषा को सीखता है।

(2) समन्वयात्मक उत्प्रेरण

समन्वयात्मक उत्प्रेरण में अध्येता का मुख्य उद्देश्य भाषा तथा उससे संबंधित संस्कृति से प्रगाढ़ रूप से संबद्ध होना ही होता है। वह भाषायी समुदाय तथा उसकी संस्कृति की पर्याप्त जानकारी प्राप्त करना चाहता है जिससे उस भाषा भाषी समुदाय के साथ गहन संबंध स्थापित किए जा सकें अथवा उनके बीच रहने की योजना को क्रियान्वित किया जा सके। उत्प्रेरण के ये विविध रूप अध्येता के भाषायी दृष्टिकोण को भी प्रभावित करते हैं। समन्वयात्मक उत्प्रेरण अनुकूल दृष्टिकोण को विकसित करता है एवं अन्य भाषा की संस्कृति तथा उनके प्रयोक्ताओं के प्रति उदार दृष्टि विकसित होती है। अन्य भाषा की संस्कृति तथा उनकी मान्यताओं के प्रति अध्येता का सकारात्मक दृष्टिकोण होता है। वह सांस्कृतिक मूल्यों को अपनाना चाहता है, उस समुदाय का सदस्य बनना चाहता है। इसके विपरीत प्रतिकूल दृष्टिकोण रखने

वाले अध्येता न केवल उस भाषायी समुदाय बल्कि उसकी संस्कृति के प्रति भी अनुदार दृष्टि रखता है।

स्पष्ट है कि भाषा अधिगम में उत्प्रेरण का संबंध एक ओर भाषा अधिगम के उद्देश्यों से है तो दूसरी ओर अध्येता के दृष्टिकोण से है। भाषा अधिगम में उद्देश्यों तथा दृष्टिकोण से संबंधित अनेक अध्ययन हुए हैं (गार्डनर और लैम्बर्ट 1959, स्पोलस्की 1960; लैम्बर्ट, गार्डनर, बारिक आदि 1963)। इनके अनुसार समन्वयात्मक उत्प्रेरण ही अधिक प्रभावशाली है। बालक अध्येता का भाषायी दृष्टिकोण माता पिता के दृष्टिकोण से प्रभावित होता है। अधिगम में सफलता की मात्रा का निर्धारक भी वस्तुतः माता-पिता का भाषायी दृष्टिकोण ही होता है। परंतु वयस्क अध्येता का दृष्टिकोण भाषा अधिगम के उद्देश्यों तथा उत्प्रेरण के प्रकार से नियंत्रित होता है। भाषा-शिक्षण में उत्प्रेरण के समुचित नियोजन द्वारा अधिगम को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

5.2. भाषावैज्ञानिक तत्व

भाषा के अध्येता की अधिगम प्रक्रिया भाषा की प्रकृति से नियंत्रित होती है। अन्य भाषा का अध्येता मातृभाषा पर अधिकार रखता है और नवीन भाषा की विविध व्यवस्थाओं पर अधिकार पाना चाहता है। उसका उद्देश्य शुद्ध भाषा वैज्ञानिक विवरण तथा सिद्धांतों से परिचित होना नहीं है, बल्कि अध्येय भाषा से संबंधित व्यवस्था को यथा संभव आत्मसात करना है। भाषा के अध्येता में इस प्रकार की भाषायी दृष्टि एवं चेतना स्वतः विकसित नहीं होती। भाषा शास्त्रीय तत्वों के संदर्भ में शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया को सुनियोजित करने का दायित्व मुख्यतः भाषा के अध्यापक का है। यही कारण है कि भाषा के अध्यापक के लिए भाषा के भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों की जानकारी उसके अनुप्रयोग की कुशलता अनिवार्य अर्हताएँ हैं।

भाषावैज्ञानिक संदर्भ में भाषा अधिगम की प्रक्रिया मुख्यतः दो तथ्यों से नियंत्रित होती है—

1. मातृभाषा तथा अन्य भाषा की समानता एवं भिन्नता।
2. व्याघात की मात्रा एवं स्तर।

इन तथ्यों पर सम्यक विचार करना उचित है।

5.2.1. मातृभाषा तथा अन्य भाषा—समानता एवं भिन्नता

भाषा अधिगम के संदर्भ में मातृभाषा एवं अन्य भाषा की समानता एवं भिन्नता का उल्लेख किया जा चुका है। मातृभाषा तथा अध्येय भाषा में अधिगम

प्रक्रिया की दृष्टि से कुछ भाषायी बिन्दुओं की समानता हो सकती है। पूर्णरूपेण समरूपता भाषायी प्रकृति के वैशिष्ट्य के विपरीत है। एक ही स्रोत से उद्भूत अथवा एक ही परिवार की दो भाषाओं में समानता संभव है। इस बात की संभावना हो सकती है कि अन्य भाषा मातृभाषा का परिवर्धित रूप हो। ऐसी स्थिति में मातृ-भाषा से समानता रखने वाली अन्य भाषा के शिक्षण और अधिगम की समस्याओं की प्रकृति भिन्न होती है।

भाषा अधिगम में एक दूसरी स्थिति वह है जहाँ अन्य भाषा मातृभाषा से नितांत भिन्न होती है। इस स्थिति में भाषा-अधिगम एवं शिक्षण की समस्याएँ जटि-लतर हो जाती हैं। यह भिन्नता विविध भाषायी स्तरों पर किशोर तथा वयस्क अध्येता के लिए कठिनाई का कारण बनती है। अन्य भाषा के अध्यापक के लिए यह नितांत आवश्यक है कि वह इन दुरुह स्थलों से परिचित हो।

अन्य भाषा की ध्वनि व्यवस्था पर अधिकार पाना, उसके सही उच्चारण तथा अन्य रागात्मक तत्वों के समुचित प्रयोग की कुशलता अर्जित करना अध्येता की विशिष्ट उपलब्धि है। बाल-अध्येता की तुलना में अन्य भाषा के किशोर एवं वयस्क अध्येता को इस स्तर पर विशेष कठिनाई का अनुभव होता है। वह मातृभाषा भाषी की भाँति भाषा की ध्वनि व्यवस्था का प्रयोग करने में सामान्यतः असमर्थ होता है। विदेशी भाषाओं के अध्ययन में तो यह समस्या अधिक जटिल हो जाती है।

भाषायी संरचना का स्तर अधिगम समस्याओं का प्रमुख क्षेत्र है। भाषा की व्याकरणिक संरचना एवं व्याकरिणक नियमों की भिन्नता अन्य भाषा के अधिगम में समस्याओं का प्रमुख स्रोत है। मातृभाषा में बालक भाषा के सैद्धांतिक व्याकरण से परिचित न होने पर भी भाषा का व्याकरण सम्मत प्रयोग करता है। उसका प्रयोग व्याकरण सम्मतता का निर्धारक माना जाता है। परंतु अन्य भाषा का वयस्क अध्येता भाषा विशेष के व्याकरण की पर्याप्त सैद्धांतिक जानकारी रखने पर भी भाषा-प्रयोग के धरातल पर अनेक प्रकार की त्रुटियाँ करता है। भाषा-शिक्षण में इन त्रुटियों पर विशेष ध्यान देना, अधिगम प्रक्रिया को तदनुकूल मार्गदर्शन प्रदान करना अपेक्षित है।

शब्दावली तथा अर्थ क्षेत्र में भी अन्य भाषा के अध्येता की कुछ विशेष कठिनाइयाँ हो सकती हैं। यद्यपि समस्रोतीय समानार्थी शब्दों के अधिगम में विशेष कठिनाई नहीं होती, परंतु विभिन्न स्रोतों के भिन्नार्थी शब्दों को सीखने में निश्चय ही कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भाषा अधिगम की दृष्टि से इस स्तर की समस्यायें अपेक्षाकृत कम जटिल होती हैं फिर भी शिक्षण में इन पर ध्यान देना आवश्यक है।

मातृभाषा तथा अन्य भाषा की सांस्कृतिक भिन्नता अन्य भाषा अधिगम तथा शिक्षण की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। भिन्न सांस्कृतिक संदर्भों की वास्तविक अनुभूति एवं तदनुकूल समुचित भाषायी अभिव्यक्ति का गठन एवं प्रयोग अन्य भाषा के अध्येता के लिए एक श्रम साध्य कार्य है। हिंदी में आदरार्थक प्रयोग एवं तदनुकूल वाक्य संरचना की त्रुटियाँ अन्य भाषा के रूप में हिंदी के अध्येता की इस प्रकार की ही समस्याएँ हैं। दो भाषाओं की सांस्कृतिक भिन्नता, विशेषकर विजातीय भाषाओं की भिन्नता, शब्दों, उनके अर्थ तथा संरचना के स्तर पर प्रतिबिंबित होती है। अतः संस्कृति-शिक्षण के परोक्ष एवं प्रत्यक्ष उपागम की सार्थकता स्वतः स्पष्ट है।

अन्य भाषा की लिपि व्यवस्थापरक भिन्नता भी भाषा अधिगम में कठिनाई उत्पन्न करती है। जिन भाषाओं की लिपियाँ देवनागरी से मिलती जुलती हैं उनको भाषा के रूप में हिंदी लेखन (लिपि रचना) में विशेष कठिनाई नहीं होती। परंतु भिन्न परिवार की भाषाओं के प्रयोक्ता के लिए देवनागरी लिपि सामान्यतः कठिन सिद्ध होती है।

स्पष्ट है कि मातृभाषा तथा अन्य भाषा की भिन्नता भाषा अधिगम को विविध रूपों में प्रभावित करती है। व्यतिरेकी विश्लेषण का सिद्धांत भाषा शिक्षण में भाषा वैषम्य को इंगित करने वाला विशिष्ट उपागम है। यद्यपि यह समानता और भिन्नता दोनों की ओर ही संकेत करता है परंतु शिक्षण के संदर्भ में व्यतिरेकी बिंदु ही महत्वपूर्ण है।

5.2.2. मातृभाषा का व्याघात

अन्य भाषा का अध्येता छात्र अपनी मातृभाषा की संरचना को सहजरूप से अन्य भाषा पर आरोपित करता है। यह आरोपण इतने स्वाभाविक एवं अचेतन रूप से होता है कि छात्र इससे स्वयं अवगत नहीं होता। वस्तुतः भाषा व्याघात दो भाषाओं की अपनी-अपनी विशिष्टताओं तथा विविधताओं के परस्पर टकराव से उत्पन्न स्थिति है। अतः विविध भाषायी स्तरों पर व्याघात की संभावना को सहज रूप से स्वीकार किया जाता है। अन्य भाषा अधिगम में मातृभाषा के व्याघात के फलस्वरूप अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। इन कठिनाइयों से परिचित होने के लिए तथा भाषा शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उन स्थितियों का विवेचन किया जाये जिनके आधार पर मातृभाषा तथा अध्येय भाषा के बीच व्याघात की अधिक संभावना हो सकती है। इसके साथ ही यह देखना भी जरूरी हो जाता है कि भाषा-अधिगम की प्रक्रिया में इन भाषायी व्याघातों की वास्त-विक प्रकृति क्या है। व्याघात की प्रकृति को समझने के लिए यह नितांत आवश्यक हो जाता है कि शिक्षण के समय संपर्क में आने वाली दो भाषाओं—मातृभाषा तथा

अध्येय भाषा की तुलना विविध भाषायी धरातलों पर की जाये । भाषावैज्ञानिकों ने इसके लिए व्यतिरेकी विश्लेषण के उपागम को विशेष महत्व दिया है ।

अन्य भाषा अधिगम में मातृभाषा के व्याघात की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि व्याघात का स्थल कहाँ है ? वस्तुतः व्याघात का स्थल भाषा के अध्येता का मानसिक धरातल है जहाँ दो भाषाएँ अपनी संरचनात्मक विशिष्टताओं के साथ परस्पर संपर्क में आती हैं । संपर्क के फलस्वरूप अध्येय भाषा की संरचना में होने वाले परिवर्तन को भाषा व्याघात की संज्ञा दी जाती है । व्याघात के कारण अध्येय भाषा की प्रयुक्त संरचना परिवर्तित एवं पुनर्गठित होती है जो न तो मातृभाषा की संरचना से पूर्णतया मेल खाती है और न अन्य भाषा के मातृभाषाभाषी प्रयोक्ताओं के व्यवहार में स्वीकृत भाषा की संरचना से । स्पष्ट है कि अध्येय भाषा की मान्य संरचनात्मक प्रकृति से विचलन की इस प्रक्रिया को ही भाषा व्याघात कहा जाता है । भाषा अधिगम में यह व्याघात विविध भाषायी स्तरों पर दृष्टिगत होता है यथा ध्वनि, शब्द व्याकरण आदि । अधिगम प्रक्रिया को सुगम तथा शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि दो भाषाओं के व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा व्याघात के बिंदुओं का गुणात्मक एवं मात्रात्मक दृष्टि से निर्धारण कर लिया जाये ।

अन्य भाषा के शिक्षण और अधिगम में सबसे अधिक कठिनाई मातृभाषा की सुदृढ़ आदतों के द्वारा उत्पन्न होती है । संभवतः यही कारण है कि भाषा शिक्षण में व्याघात को अपरिहार्य समस्या माना गया है । अन्य भाषा में व्याघात की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि छात्र भाषा का प्रयोग केवल भाव ग्रहण के लिए कर रहा है अथवा भाव प्रकाशन के लिए । अन्य भाषा के माध्यम से मौखिक अभिव्यक्ति करते समय मातृभाषा की विविध व्यवस्थायें अन्य भाषा की वाक्यीय संरचना के गठन तथा उसकी अभिव्यक्ति में बाधा पहुँचाती हैं । छात्र में मातृभाषा की अभ्यास जनित आदत इस सीमा तक सुदृढ़ होती है कि वह अनायास ही अन्य भाषा में प्रक्षेपित होती है । यह प्रक्षेपण एवं व्याघात भाव प्रकाशन के स्तर पर विशेष रूप से दृष्टिगत होता है । इसके विपरीत यदि भाषा का प्रयोग केवल भाव ग्रहण के लिए ही किया जा रहा है, तो मातृभाषा के वाक्य साँचों की समानता भाषा सीखने में सहायक हो सकती है । इस स्थिति में व्याघात की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है । शिक्षण के संदर्भ में भाव ग्रहण एवं भाव प्रकाशन दोनों का ही समन्वित विकास अपेक्षित है, अतः व्याघात की मात्रा को यथासंभव कम करने का प्रयत्न आवश्यक है ।

अन्य भाषा में मातृभाषा के व्याघात का एक रूप यह भी हो सकता है कि छात्र अन्य भाषा में मातृभाषा के ही रूपों का प्रयोग करता हो अथवा मातृभाषा की

आदतें आंशिक रूप से अन्य भाषा अधिगम को प्रभावित करती हैं । अन्यभाषा में मातृभाषा के रूपों का ही प्रयोग हो रहा है तो अन्यभाषा अधिगम की समस्या जटिलतर हो जाती है । व्याघात जितना ही आंशिक होगा, भाषा अधिगम में सफलता की उतनी ही अधिक संभावना होगी । स्पष्ट है कि अन्य भाषा अधिगम में कठिनाइयों का एक मुख्य कारण मातृभाषा का व्याघात है । परंतु अन्य भाषा अधिगम की सभी त्रुटियाँ मातृभाषा के व्याघात के कारण ही होती हैं यह भी नहीं कहा जा सकता । त्रुटियों के अनेक कारण हो सकते हैं यथा सादृश्यता, अधूरा सीखना तथा भ्रम आदि ।

5.3. समाज वैज्ञानिक तत्व

समाज शास्त्री भाषा को एक सामाजिक यथार्थ के रूप में स्वीकार करता है जो सामाजिक उपकरण और सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़ कर व्यवहार जन्य प्रक्रिया के रूप में सिद्ध है । भाषा समाज के बीच सीखी जाती है । यह सामाजिक सम्प्रेषण का एक महत्वपूर्ण साधन है । सामाजिक प्रक्रिया के रूप में भाषा सम्प्रेषण के साथ ही साथ व्यक्तित्व के प्रकाशन का साधन और सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक परंपरा की संवाहक भी है । इन विशिष्ट दायित्वों के साथ ही भाषा सामाजिक नियंत्रण का भी एक महत्वपूर्ण साधन है । अतः भाषा अधिगम की प्रक्रिया पर विविध सामाजिक घटकों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है । विभिन्न प्रकार के सामाजिक तत्व भाषा अधिगम की प्रक्रिया को नियंत्रित करते हैं । अन्य भाषा का अध्येता विभिन्न समुदायों, साधनों तथा सामाजिक संस्थाओं के संसर्ग में आता है । ये सभी प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से भाषा-अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं । ये विविध प्रकार के सामाजिक संपर्क कुछ विशिष्ट तत्वों से नियंत्रित होते हैं । चूंकि अन्य भाषा अधिगम मातृभाषा की सहज अनिवार्यता से उत्प्रेरित न हो कर औपचारिक आवश्यकताओं से नियंत्रित होती है अतः इन सामाजिक घटकों का विशेष महत्व है । भाषा अपेक्षित सामाजिक संपर्क जितना ही अधिक प्राप्त होगा भाषा अधिगम में उतनी ही अधिक सुगमता एवं सफलता होगी ।

5.3.1. विविध सामाजिक संपर्क

भाषा का अध्येता निकटवर्ती सामाजिक परिवेश में भाषा का व्यवहार करता है । यह सामाजिक परिवेश भाषा अधिगम में पुनर्निवेशन का कार्य करता है । अतः वह समुदाय जिसके साथ वह अध्येय भाषा का प्रयोग करता है उसकी भाषायी कुशलता को प्रभावित करता है । इसके साथ ही साथ वे सामाजिक परिस्थितियाँ जिनके बीच वह भाषा सीखता है, उसकी भाषायी दक्षता को नियंत्रित करती हैं । भाषा के अध्येता को यह सामाजिक संपर्क विविध सक्रिय तथा निष्क्रिय अभिकरणों

के माध्यम से प्राप्त होता है। सक्रिय अभिकरणों में परिवार, निकटवर्ती समुदाय, विद्यालय, व्यवसाय, सांस्कृतिक एवं धार्मिक संगठन तथा क्रीड़ा समुदाय का उल्लेख किया जा सकता है; निष्क्रिय अभिकरणों में रेडियो, टेलीविजन, टेपरिकार्डर एवं चलचित्र तथा विविध प्रकार की वाचन सामग्री को समाहित किया जा सकता है। इनमें से प्रत्येक घटक की प्रकृति तथा उपलब्ध भाषायी संपर्क की चर्चा अपेक्षित है।

5.3.1.1. परिवार

परिवार न केवल मातृभाषा-अधिगम का मुख्य स्थल है, बल्कि अन्य भाषा अधिगम एवं उसके सतत प्रयोग तथा अभ्यास का भी महत्वपूर्ण आधार माना जाता है। यदि परिवार में अन्य भाषा को सीखने की सुविधा है, भाषा व्यवहार के अवसर उपलब्ध हैं तो अन्य भाषा अधिगम में सरलता और सहजता दोनों का ही समावेश हो जाता है। द्विभाषी परिवारों में विकसित द्विभाषी बालकों की भाषायी दक्षता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। राष्ट्र भाषा के रूप में हिंदी प्रचार के कार्य में संलग्न परिवारों के बच्चों में भी भाषा अधिगम का समृद्ध स्तर द्रष्टव्य है। परिवार न केवल भाषा व्यवहार का सामाजिक परिवेश प्रस्तुत करता है बल्कि भाषा अधिगम की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का भी निर्माण करता है। अतः अधिगम के सहज उत्प्रेरण के साथ ही साथ भाषा प्रयोग का स्वाभाविक एवं बहुल संदर्भ भी उपलब्ध होता है।

5.3.1.2. निकटवर्ती समुदाय

अन्य भाषा के अध्येता की भाषायी कुशलता के विकास में निकटवर्ती समुदाय का भाषा-संपर्क-विशेष महत्व रखता है। बालक तथा वयस्क अध्येता अध्येय भाषायी समुदायों के संपर्क में लक्ष्य भाषा का ही प्रयोग करते हैं। इन परिस्थितियों में भाषा विशेष ही सम्प्रेरण का माध्यम बनती है। अतः विविध सामाजिक संदर्भों में भाषा-व्यवहार के औपचारिक एवं अनौपचारिक अवसरों की स्वतः योजना भाषायी कुशलता के विकास में सहायक सिद्ध होती है। मातृभाषा के उपार्जन में भाषायी उद्भासन का महत्व स्पष्ट है इसी प्रकार अन्य भाषा के शिक्षण में भाषायी परिवेश के गठन तथा उसकी सहज उपलब्धि का विशेष महत्व है। हिंदीतर प्रदेशों के छात्रों को हिंदी भाषी प्रदेशों में प्रशिक्षित करना, अन्य भाषा के मातृभाषा भाषी प्रयोक्ताओं के बीच रहने का, भाषा संपर्क का, अवसर प्रदान करना आदि इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य हैं। इस व्यावहारिक योजना को क्रियान्वित करने की दिशा में केंद्रीय हिंदी संस्थान की महत्वपूर्ण भूमिका है। संस्थान हिंदीतर प्रदेशों में भी यह भाषायी संपर्क उपलब्ध कराने में सक्रिय है। स्पष्ट है कि निकटवर्ती समुदाय में अध्येय भाषा के व्यवहार के जितने ही अधिक अवसर उपलब्ध होंगे, भाषायी कुशलता तदनुरूप विकसित होगी।

5.3.1.3. विद्यालय

अन्य भाषा के शिक्षण में विद्यालय की प्रमुख भूमिका है। भारत जैसे बहुभाषी देश में भी जहाँ हिंदी का प्रचलन कई शताब्दियों से है अन्य भाषा के रूप में हिंदी के औपचारिक शिक्षण की अपेक्षा की जाती है। राजभाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के संवैधानिक दायित्व के निर्वाह में विद्यालयों की महत्वपूर्ण भूमिका असंदिग्ध है। अन्य भाषा का शिक्षण सामान्यतः दो रूपों में संभव है—अन्य विषयों के माध्यम के रूप में तथा विषय विशेष के रूप में भाषा का शिक्षण। जिन विद्यालयों में अन्य भाषा को कुछ विषयों के माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाता है अथवा प्रयोग का अवसर दिया जाता है वहाँ छात्रों की भाषायी योग्यता न केवल समृद्ध होती है बल्कि भाषा प्रयोग के व्यावहारिक संदर्भों का ज्ञान भी समुन्नत होता है। जहाँ पाठ्यक्रम में अन्य भाषा का शिक्षण एक विषय के रूप में किया जाता है वहाँ भी भाषा शिक्षण के विविध रूप संभव हैं। विद्यालय में यदि अन्य भाषा को केवल अंतर विशेष तक ही सीमित किया जाता है तो भाषा प्रयोग के अवसर की अपर्याप्तता के कारण भाषायी कुशलता की संकीर्णता स्वाभाविक है। इसके विपरीत यदि विद्यालय में अन्य भाषा के परिवेश को अधिक जीवंतता प्रदान की जाती है, भाषा व्यवहार का अवसर दिया जाता है तो छात्रों की भाषायी कुशलता में सहज ही वृद्धि संभव है। भाषा प्रयोग के द्वारा सीखी जाती है, अतः विद्यालयों में भाषा शिक्षण के साथ ही साथ भाषा प्रयोग का जितना अवसर मिलता है अधिगम उतना ही प्रभावी बनता है।

5.3.1.4. व्यवसाय

अन्य भाषा का अधिगम स्वान्तः सुखाय भी हो सकता है, परंतु उपयोगितावादी दृष्टिकोण की प्रमुखता के कारण मानव सामान्यतः प्रयोजनमूलक उद्देश्य से ही मातृभाषा से इतर भाषा को सीखता है। व्यवसाय तथा कार्यक्षेत्र से संबद्ध भाषा का अधिगम उस क्षेत्र विशेष में सफलता का द्योतक है। जिन व्यवसायों में हिंदी का द्वितीय भाषा के रूप में प्रयोग आवश्यक हो जाता है उन व्यापारियों, अधिकारियों, कर्मचारियों तथा कार्यकर्ताओं का भाषा व्यवहार अधिक संपुष्ट होता है। विविध कार्यक्षेत्रों में, विभिन्न प्रकार की सेवाओं में भाषा प्रयोग के विविध संदर्भ सहज ही उपलब्ध होते हैं। इन वास्तविक संदर्भों में भाषा व्यवहार की उपयुक्तता एवं प्रचुरता भाषा अधिगम को प्रभावी बनाने में सहायक होती है। अतः इन क्षेत्रों से संबंधित प्रयुक्ति का भाषा शिक्षण में औचित्य स्पष्ट है।

5.3.1.5. सांस्कृतिक एवं धार्मिक संगठन

भाषा और संस्कृति का गहन संबंध है। अतः सांस्कृतिक तथा धार्मिक संगठनों में अन्य भाषा का प्रयोग भाषा व्यवहार की संवेगात्मक पृष्ठभूमि

निर्मित करता है। इन संगठनों द्वारा आयोजित क्रिया कलापों में अन्य भाषा का माध्यम के रूप में प्रयोग इतना सहज एवं स्वाभाविक होता है कि सदस्यों के साथ रागात्मक संबंध स्थापित करने में कठिनाई नहीं होती। जिन प्रदेशों में भाषा के औपचारिक शिक्षण के साथ-साथ ऐसे सांस्कृतिक-धार्मिक संगठनों का बाहुल्य है वहाँ अध्येताओं को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से भाषा-अधिगम का अवसर मिलता है। अंग्रेजी के प्रचार और प्रसार से धार्मिक संगठनों की भूमिका सुस्पष्ट है। खड़ी बोली हिंदी के विकास एवं प्रसार में आर्य समाज का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना को अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने के लिए राष्ट्र भाषा हिंदी का प्रयोग न केवल सामाजिक संस्कृति के विकास में सहायक है बल्कि शैक्षिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

5.3.1.6. क्रीड़ा समुदाय

विविध प्रकार के क्रीड़ा समुदायों में भी अन्य भाषा का व्यवहार भाषा-अधिगम में सहायक होता है। खेल कूद के उल्लसित वातावरण में भाषा प्रयोग की संदर्भानुकूलता एवं विविधता का आत्मीकरण अनायास हो जाता है। इन समुदायों के सदस्यों का भाषायी व्यवहार सीमित क्षेत्र से संबद्ध होने पर भी वास्तविक परिस्थितियों से जुड़ा होता है। यदि इनमें से कुछ सदस्यों की मातृभाषा भी वही भाषा है तो भाषा अधिगम में विशेष सहायता मिलती है। भाषा सीखने का यह अनौपचारिक संदर्भ, भाषायी कुशलताओं के विकास में सहायक है। विद्यालयों में क्रीड़ा परिषदों की स्थापना तथा इनमें अन्य भाषा हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहन देना अपेक्षित है।

5.3.1.7. श्रव्य दृश्य उपकरण

अन्य भाषा के अधिगम में श्रव्य दृश्य उपकरणों का भी विशेष महत्व है। रेडियो, टेपरिकार्डर, टेलीविजन तथा सिनेमा शिक्षा के एकपक्षीय अभिकरण हैं। अधेष्ता उनके प्रति तत्क्षण अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं कर सकता है, इनमें वांछित परिवर्तन नहीं ला सकता। श्रव्य उपकरणों के माध्यम से विविध भाषायी संदर्भों में भाषा को सुनने का, आत्मसात करने का अवसर प्राप्त होता है। परंतु दृश्य एवं श्रव्य उपकरणों में भाषा व्यवहार से जुड़े संदर्भों को भी देखने, एवं समझने का अवसर मिलता है। अन्य भाषा का अध्येता वक्ता के हाव-भाव, मुख मुद्रा आदि को प्रत्यक्ष रूप से देखने के साथ-साथ भाषा प्रयोग का प्रत्यक्षीकरण करने में समर्थ होता है। इनमें से वार्तालाप के कुछ अंशों के साथ उसका इस सीमा तक साधारणीकरण हो जाता है कि वे उन्हें कंठस्थ कर लेते हैं। अन्य भाषा के अधिगम में इसे एक विशिष्ट

उपलब्धि माना जा सकता है। समर्थ छात्र सिनेमा के प्रिय संवादों का टेप भी सुरक्षित रखते हैं। इससे श्रवण एवं भाषण दोनों ही प्रकार की कुशलताओं का विकास होता है। अन्य भाषा के रूप में हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में इन दृश्य श्रव्य अभिकरणों का महत्व सर्वमान्य है।

5.3.1.8. वाचन सामग्री

भाषा को अभ्यास जनित आदत माना जाता है। अन्य भाषा को सीखने तथा उसका अभ्यास बनाये रखने के लिए समुचित वाचन सामग्री का होना आवश्यक है। पुस्तकालयों में विविध प्रकार की रुचिकर वाचन सामग्री का संकलन एक ओर छात्रों में पढ़ने की आदत विकसित करता है तो दूसरी ओर उनके भाषायी ज्ञान को संपुष्ट करता है। वाचन सामग्री कई प्रकार की हो सकती है यथा—गहन वाचन की सामग्री, द्रुत वाचन की सामग्री तथा विविध प्रकार की सूचनाओं से संबद्ध सामग्री आदि। अन्य भाषा में विविध रुचिकर विषयों से संबद्ध व्यवहार में प्रचलित भाषा के द्वारा सरल सुबोध वाचन सामग्री का निर्माण भाषा अधिगम एवं शिक्षण में सहायक हो सकता है। हिंदी में इस प्रकार की प्रचुर वाचन सामग्री उपलब्ध है तथा इस दिशा में निरंतर प्रयास किया जा रहा है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भाषा अधिगम में इन सामाजिक घटकों का विशेष महत्व है। इन संपर्कों के फलस्वरूप भाषायी व्यवहार सुगठित एवं विकसित होता है परंतु ये सभी संपर्क कुछ विशिष्ट तत्वों से नियंत्रित होते हैं। इनसे परिचित होना भी आवश्यक है।

5.3.2. सामाजिक संपर्कों को नियंत्रित करने वाले तत्व

अन्य भाषा के अधिगम में विभिन्न सामाजिक संगठनों के संपर्क का सकारात्मक प्रभाव अधिगम की मात्रा और गति को तीव्र करने में सहायक है। परंतु इन सामाजिक संगठनों का संपर्क कुछ विशिष्ट तत्वों से नियंत्रित होता है। भाषा अधिगम का सामाजिक संदर्भ देश, काल तथा विविध प्रकार की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। ये तत्व सामाजिक संपर्क जनित प्रभाव की वृद्धि अथवा न्यूनता के कारण होते हैं अतः प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अधिगम को प्रभावित करते हैं। विविध संपर्कों को प्रभावित करने वाले तत्व निम्नलिखित हो सकते हैं—

5.3.2.1. समय

अन्य भाषा सीखने में विविध सामाजिक संगठनों का संपर्क जितने अधिक समय तक प्राप्त होता है, अधिगम उतना ही अधिक प्रभावी एवं सुदृढ़ होता है।

विद्यालय, निकटवर्ती समुदाय तथा अन्य स्थलों पर भाषायी संपर्क के जितने ही अधिक अवसर प्राप्त होते हैं, भाषायी उद्भासन, भाषा प्रयोग के उतने ही अधिक संदर्भ उपलब्ध होते हैं। वयस्क अध्येता चूंकि भाषा अधिगम के उद्देश्यों से स्पष्टत: अवगत होता है, अत: उपलब्ध समय एवं अवसर का सदुपयोग कर सकता है। बाल अध्येता विद्यालय तथा निकटवर्ती समुदायों में भाषा अधिगम के औपचारिक तथा अनौपचारिक संदर्भों में भाषा का नि:संकोच प्रयोग करता है। मातृभाषा पर बालक के सहज अधिकार का एक कारण भाषा-प्रयोग के अवसर की निरंतरता एवं पर्याप्तता भी है। जितने अधिक समय तक अन्य भाषा का परिवार में, विद्यालय में तथा विविध संगठनों में प्रयोग होता है, भाषायी कुशलता उतनी ही अधिक विकसित हो सकती है।

5.3.2.2. जनसंख्या

भाषा अधिगम में भाषा के प्रयोक्ताओं की संख्या तथा भाषा विशेष के प्रति उनका दृष्टिकोण विशेष महत्व रखता है। जितने अधिक लोगों के साथ भाषा का व्यवहार किया जाता है, भाषा के प्रति जितना ही अधिक सकारी दृष्टिकोण विकसित होता है छात्र का भाषायी अभ्यास उतना ही अधिक संपुष्ट होता है। यही कारण है कि अन्य भाषा भाषी विस्तृत जनसमुदाय के बीच भाषा अधिगम एवं शिक्षण की सफलता लगभग निश्चित सी होती है।

5.3.2.3. भाषा प्रयोग

भाषा सीखने में भाषा-प्रयोग के अवसर की उपयुक्तता एवं विविधता का भी विशेष योगदान है। अन्य भाषा का व्यवहार जिन कार्यों तथा संदर्भों में किया जाता है, भाषायी कुशलता तदनुरूप ही नियंत्रित होती है। मातृभाषा के व्यवहार क्षेत्र की विशेषता एवं विविधता से भिन्न अन्य भाषा सीमित कार्यों एवं संदर्भों के लिए ही प्रयुक्त होती है। इतना ही नहीं अन्य भाषा का प्रयोक्ता भाषा के प्रयोग के लिए इस सीमा तक दक्ष हो जाता है कि भाषा के समुचित अभ्यास के बिना ही वह भाषा का व्यवहार करने लगता है। यद्यपि इसका समर्थन इस शैक्षिक आधार पर किया जा सकता है कि भाषा व्यवहार, अभ्यास तथा अधिगम को सुदृढ़ करता है, परंतु यह तभी संभव है कि जब भाषा प्रयोग नियमित एवं सतत रूप से किया जाये।

5.3.2.4. भाषायी स्तर

भाषा अधिगम एवं शिक्षण में यद्यपि चारों कौशलों पर ही छात्र का समुचित अधिकार कराया जाता है, फिर भी छात्र जिन कौशलों का अधिक व्यवहार एवं

अभ्यास करता है अथवा करने का अवसर मिलता है भाषायी दक्षता उसके अनुरूप ही विकसित होती है। संभव है कि अन्य भाषा अधिगम के विशिष्ट प्रयोजन की पूर्ति के लिए छात्र को कुछ कौशलों का ही प्रयोग करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में संबद्ध कौशल का समुचित विकास तथा अन्य की उपेक्षा स्वाभाविक है। कौशल विशेष में भी कुशलता का स्तर प्रयोक्ता के भाषायी स्तर से नियंत्रित होता है।

5.3.2.5. सांस्कृतिक स्तर

अन्य भाषा अधिगम और शिक्षण की प्रक्रिया पर उस सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर और क्षेत्रीय संदर्भ का भी विशेष प्रभाव पड़ता है जिनके बीच भाषा का प्रयोग होता है। छात्र जिन सामाजिक और सांस्कृतिक समुदायों के साथ सम्प्रेषण स्थापित करने में भाषा का व्यवहार करता है उनके स्तर के अनुरूप ही उसकी भाषायी कुशलता का स्तर नियंत्रित होता है। उच्च सामाजिक सांस्कृतिक स्तर तथा सभी दृष्टियों से विकसित क्षेत्रों में अन्य भाषा का परिष्कृत रूप ही व्यवहृत होता है। फलस्वरूप छात्र में श्रवण, अनुकरण तथा परिमार्जित एवं परिष्कृत भाषायी प्रयोग की कुशलता सामान्यत: विकसित होती है। भाषायी परिवेश की उत्कृष्टता जागरूक छात्र में उत्कृष्ट भाषायी व्यवहार की आदत विकसित करने में समर्थ होती है।

5.3.2.6. अभिवृत्ति

अन्य भाषा के अध्येता की भाषायी अभिवृत्ति विविध सामाजिक संपर्कों को प्रभावित करती है। भाषा अधिगम में सहायक अभिवृत्ति का विकास होने पर विविध संपर्कों के द्वारा छात्र में समुचित भाषायी कुशलता विकसित होती है। इसके अभाव में अन्य भाषा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण का विकास हो सकता है। ऐसी स्थिति में भाषा अधिगम का उत्कृष्ट परिवेश भी छात्र में वांछित भाषायी कुशलता विकसित करने की दृष्टि से अपर्याप्त सिद्ध होता है।

5.3.2.7. सामाजिक बाध्यता

अन्य भाषा के अधिगम तथा शिक्षण में विभिन्न प्रकार के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, राजनैतिक तथा धार्मिक बाध्यताओं का भी प्रभाव पड़ता है। वयस्क अध्येता सामान्यत: इस प्रकार की बाध्यताओं के फलस्वरूप ही अन्य भाषा सीखता है। इनमें से अधिकांश जीविकोपार्जन के उद्देश्यों से संबद्ध हैं; कुछ शुद्ध ज्ञानार्जन तथा साहित्यिक रसास्वादन एवं सामाजिक उद्देश्य से उत्प्रेरित हैं। राजनैतिक कारणों तथा सैनिक आवश्यकताओं के फलस्वरूप संबद्ध अन्य भाषा

सामाजिक संपर्क / सामाजिक संपर्कों को प्रभावित करने वाले तत्व	परिवार	समुदाय	विद्यालय	व्यवसाय	सांस्कृतिक एवं धार्मिक संगठन	क्रीड़ा समुदाय	श्रव्य दृश्य उपकरण	वाचन सामग्री
समय								
जनसंख्या								
भाषा प्रयोग								
भाषायी स्तर								
सांस्कृतिक स्तर								
अभिवृत्ति								
सामाजिक बाध्यता								
आर्थिक								
प्रशासनिक								
सांस्कृतिक								
सामाजिक								
राजनैतिक								
धार्मिक								
ऐतिहासिक								

का अधिगम संबंधित व्यक्तियों के लिए अनिवार्य हो जाता है। धार्मिक तथा ऐतिहासिक कारणों से भी अन्य भाषा को सीखना आवश्यक समझा जाता है।

इस प्रकार विविध सामाजिक दबाव भाषा अधिगम के सामाजिक संपर्कों को प्रभावित करते हैं।

अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले सामाजिक संपर्कों तथा इन संपर्कों को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों को दी गई पृष्ठ 138 पर तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

स्पष्ट है कि अन्य भाषा के अधिगम में समाज शास्त्रीय घटकों का महत्वपूर्ण स्थान है। भाषा के शिक्षण में इन सामाजिक संपर्कों तथा इनको नियंत्रित करने वाले तत्वों पर समुचित ध्यान देना अपेक्षित है जिससे अधिगम को प्रभावी बनाया जा सके।

Reference Books

1. Allen; J. P. B. and S. Pit Corder (Eds.) The Edinburgh Course in Applied Linguistics, Vol. 1 (1973), Vol. 2 (1975), Vol. 3 (1974), Oxford University Press, London.
2. Bloom, L. M. One Word at a time. The use of single word utterances before Syntax, 1973, the Hague, Mouton.
3. Bower, T. G. R. Development in Infancy 1974. W. H. Freeman, San Francisco.
4. Bowerman M. Structural Relationships Children's utterences : Syntactic semantic in T. E. Moore (ed) Cognitive Development and the Acquisition of language 1973, Academic Press, London.
5. Brown, R. Psycholinguistics 1965. Free Press, New York.
6. Burt Marinakand Heidi C. Dulay (Eds.) New Directions in Second Language Learning, Teaching and Bilingual Education, 1975, Washington.
7. Campbell, R. and Wales R. 1970. The study of language acquisition. In J. Lyons (ed) New Horizons in linguistics, Harmonds warthing Penguin.
8. Carrol J. B. Language & thought 1969 Englewood Cliffs, New Jersey : Prentice Hall.
9. Chomsky N. 1957. Syntactic Structures The Hague :
   — 1959 A Review of B. F. Skinner's Verbal behaviour, language 35·
   — Language and mind, New York Harcourt, Brace 1968.
10. Clark; H. H. and Clark, E. V. Psychology and Language :

an Introduction to Psycholinguistics. 1979. Harcourt Brace Jovanovich New York.

11. Corder, S. Pit Introducing Applied Linguistic 1973. Penguin Education England.
12. Crystal, David, 1976 Child Language, learning and linguistics. An overview for the teaching and therapeutic professions. Edward Arnold Ltd. London.
13. De Villiers, Jill G. & De Villiers Peter A. Language Acquisition, 1978, Harward University Press, London.
14. Ervin—Tripp. S., The comprehension and Production of Requests by Children, Papers and Reports on Child Language Development. 1974. Stanford University.
15. Fergussan C. A. and Snow, C. E. (Eds), Talking to Children : Language Input and Acquisition. 1977. Cambridge University Press, London.
16. Fishman, J. A. The Sociology of Language 1972, Rowley, New Bury House.
    — Readings in Sociology of language— 1968. The Hague—Mouton.
17. Foss, Donald, J & David T. Hakls. Psycholinguistics, Prentice Hall, 1978. Englewood Cliffs.
18. Fry Dennis Homo Loquens, 1977. Cambridge University Press, London.
19. Garnica, O. K. The development of Phonemic Speech Perception. 1973. In Cognition and the Acquistion of Language. (Ed.) T. E. Moore, Academic Press—New York.
20. Green berg, J. H., 'Language, Culture and Communication', Essasays selected and introduced by Anwar S. Dil Stanford University Press. 1971.
21. Gumperz, J. J., Language in Social Groups, Essasays selected

and Introduced by Anwer S. Dil., Stanford Cal. Stanford University Press, 1971.

22. Halliday, M. A. K. Mc Antosh, A. and Strevens, P., The Linguistics Sciences and Language Teaching, London, Longmans 1964.

23. Jacobovits, Lion A, Foreign Language Learning : A Psycholinguistic Analysis of the Issues 1970. Newbury House Publishers Rowley/Massachusetts.

— Second Language Learning and Transfer theory : A theoretical Assessment, 'Language Learning, XIX, 1969.

24. Jakobovits, L. A. 'Implications of recent Psycholinguistic development, for the teaching of second language (Language learning, 1968)

25. Jakovson, R., Child Language, Aphasia and Phonological Universals 1969, The Hague, Mouton.

26. Kess, Joseph F., Psycholinguistics, 1976 Academic Press, New York.

27. Krashen, S. Lateralization, Language learning and the critical period Some new evidence : lang. learning 23.

28. Lado, R., Linguistics Across culture, Ann Arbar, University of Michigan Press 1957.

— Language Teaching A scientific Approach, New York, Mcgraw Hill, 1964.

29. Lannbert, 'Psychological approaches to the study of language (Modern Language Journal 1963) Reproduced in H. B. Allen (Ed) Teaching English as a second language Mcgraw Hill New York, 1965.

30. Lee, Victor, (Ed) Language development 1979, The Open University Press, London.

31. Lennebog, Eric. H., Biological Foundation of Language. 1967. John Wley & Sons, New York.

32. Mackey, William Francis, Language teaching Analysis 1965. Longmans, Grlln and Co. London.

— Bilingual Education in a Binotional School, Rowley New Bury House, 1972.

33. MC Neil, The Acquisition of Language, The study of Developmental Psycholinguistics, 1970 : Harper & Row, New York.

34. Moulton W. G., A Linguistic Guide to language learning Modern language Association, 1970.

35. Pimsleur, Paul & Terence Quinan (Ed) The Psychology of Second Language Learning, 1971, Cambridge University Press, London.

36. Politzer, R. L. Foreign Language Learning Englewood Cliffs. Prentice—Hall, 1965.

37. Rivers, W. M. The Psychologist and Foreign Language Teacher, Chicago University of Chicago Press, 1964.

— Teaching Foreign Language Skills, Chicago. The University of Chicago Press 1968.

38. Soporta Sol. Psycholinguistics, A Book of Readings 1961. Holt, Rinehart and Winston, New York.

39. Schumann, Joh, H. & Nancy Stenson (Eds) New Frontiers in Second Language Learning 1975, Newbury House Publishers, Rowley Massachusetts.

40. Skinner, B. F., 1957, Verbal behaviour. New York, Appleton—Century—Crofts.

41. Weinreich U., Language in contact 1953 The Hague Mouton 1953.

42. Whorf, B. L., Language Thought & Reality, New York : Wiley & Cambridge, : M. I. T. Press 1956.

43. Wilkins, D. A. Linguistics in Language Teaching 1972. Edward Arnold. London.

44. Wilkins, D. A. Second Language Learning and Teaching, 1974, Edward Arnold. London.
45. Ullmann, Stephen. The Principles of Semantics 1959, Jackson, Son & Co. Glasgow.

परिभाषिकशब्दावली

अकृत्रिम—Natural
अचेतन धरातल—Unconcious level
अंतर्दृष्टि—Insight
अंतर्मुखी—Introvert
अंतरण—Transfer
अंतराल—Gap
अंतरभाषा—Interlanguage
अंतर्जात ज्ञान—Innate Knowledge
अंतर्भावितता—Involvement
अति सामान्यीकरण—Over generalization
अधिगम—Learning
अधिगम स्थिति—Learning situation
अधिगम परिवेश—Learning environment
अधिगमनीयता—Learnability
अधिगम संयुक्तियाँ—Learning strategies
अध्येता—Learner
अधिकतम अधिगम—Optimum learning
अन्य भाषा—Other language
अनुतान—Intonation
अन्योन्य क्रियावादी—Inter actionist
अनियमित—Irreguler
अनियमितताएँ—Irregularities
अनिवार्यता—Compulsion
अनियंत्रित—Uncontrolled/free
अनुकरण—Imitation
अनुक्रम—Sequence
अनुप्रयुक्त—Applied
अनुभववादी—Empericist
अनुमान—Inference
अनुसंधान—Research
अनुरक्षण—Maintenance
अनुरोध—Request
अनुस्तरण—Gradation
अनुस्तरित—Graded
अनौपचारिक—Informal
अभ्यास मूलक विचार—Habitual thought
अभ्यास—Exercise/Practice
अपक्षय—Degeneration
अपवाद—Exemption
अभिप्रेत—Intentions
अभिकरण—Agency
अभिव्यंजनात्मक—Expressive
अभिक्षमता—Capability
अभिवृत्ति—Aptitude
अभिलक्षण—Feature
अभिव्यक्ति—Expression
अभिभावक—Guardian
अभ्यनुकूलन—Conditioning

अभ्यनुकूलित प्रतिवर्त—Conditioned reflex
अमूर्त—Abstract
अमूर्तीकरण—Abstraction
अवसर—Opportunity
अवधारण—Retention
अवधारण-कालावधि—Retention Period
अवधान—Attention
अवमिश्रण—Merger
अवरोही—Falling
अस्मिता—Identity
अस्थिर—Unstable
आदर्श रूप—Model
आर्थिक—Economic
आर्थी—Semantic
आरोही—Rising
आश्रित द्विभाषिकता—Subordinate bilingualism
आकांक्षा—Desire
आदत निर्माण—Habit formation
आगमनात्मक—Inductive
आगमनात्मक अधिगम योग्यता—Inductive learning ability
आनंद—Pleasure
आधारभूत-आवश्यकताएँ—Basic needs
आवृत्ति—Repetition
आत्मीकरण—Assimilation
आत्माभिव्यक्ति—Self expression
आभ्यांतर संरचना—Deep structure
इकाई—Unit
उच्चारित—Articulated
उच्चारण—Articulation
उच्चार—Utterance
उच्चारण यंत्र—Speech mechanism
उत्पादक—Productive
उत्पादक व्यवहार—Productive behaviour
उत्प्रेरण—Motivation
उत्प्रेरित—Motivated
उद्दीपन—Stimulus
उद्दीपन प्रतिक्रिया—Stimulus response
उद्भासन—Exposure
उपकरण—Instrument
उपकरणात्मक (उत्प्रेरण)—Instrumental (motivation)
उपागम—Approach
उपार्जन/सम्प्राप्ति—Acquisition
उपार्जित—Acquired
उपलब्धि—achievement
उत्तराधर क्रम—Heirarchy
एकालाप—Monologue
एक पदीय वाक्य—One word Sentence
एक रूपता—Uniformity
एक रूपात्मक—Uniform
औपचारिक—Formal
औपचारिक अधिगम—Formal learning
औसत—Average
कथ्य—Content
कारक संबंध—Case relations
कालक्रमीय/कालिक—Chronological
क्रियान्वयन—Execution
क्रियात्मक—Conative
किलकारी—Cooing
कुलक—Set

केंद्रीय तंतु—Central fibre
कोटि—Category
कोड—Code
कोड निर्धारण—Code selection
कोड विभेदीकरण—Code differentiation
कोड विस्तार—Code expansion
कोड स्थैर्य—Code stability
कोडीकरण—Encoding
कोश—Lexicon
कोशीय शब्द—Lexical words
कौशल—Skill
क्षमता—Competence
क्षतिग्रस्त—Damaged
गत्यात्मक—Dynamic
गतिवाही स्नायु तंतु—Motor nerve
गहन शिक्षण—Intensive teaching
गामक क्रियाएँ—Motor activities
ग्राहक व्यवहार—Receptive behaviour
ग्राह्यता—Acceptibility
गुण—Quality
गुणात्मक—Qualitative
गौण (कौशल)—Secondary skill
घटक—Component/Constituent
घनिष्ट—Intimate
चयन—Selection
चयनात्मक—Selective
चरमतम—Maximum
जनसंख्या—Population
जन्मजात—Innate/inborn
जन्मजात प्रवृत्ति—Innate tendency
जटिलतम काल—Critical period
जीवंत भाषा—Living language
जैविकीय—Biological
तकनीक—Technique
तदात्मीकरण—Identification
तत्परता—Readiness
तदनुभूति—Empathy
त्वरित—Immediate
तुलना—Comparison
तुलनीय—Coparative
तार्किक—Logical
त्रुटियाँ—Errors
त्रुटि विश्लेषण—Error analysis
थीम सूचना—Thematic information
दक्षता—Proficiency
दृश्य—Visual
दिशा—Direction
दिशा निर्देशन—Guidance
द्विपदीय वाक्य—Two word sentence
द्वितीय भाषा—Second language
द्विभाषी—Bilingual
द्विभाषिकता—Bilingualism
द्विभाषिक शिक्षा—Bilingual education
दृष्टिकोण—Attitude
ध्वनि प्रतीक—Sound symbol
ध्वनि अनुरणन—Lallation
ध्वनि विज्ञान—Phonetics
ध्वन्यात्मक कोडीकरण—Phonetic coding (ability)
नकारी—Negative
निकटवर्ती—Immediate
निगमनात्मक—Deductive
निदानात्मक—Diagnostic
नियम आधारित—Rule based
नियामक—Regulative
नियंत्रण—Control
नियमितता—Regularity

निष्पत्ति—Outcome
निष्क्रिय—Passive
प्रकार्य—Function
प्रतिमा—Image
प्रकार्यात्मक दक्षता—Functional Competence
प्रतीक—Symbol
प्रतीकात्मक—Symbolic
प्रतीकात्मक खेल—Symbolic Play
प्रतिक्रिया—Reaction
प्रत्याशा—Anticipation
प्रत्ययन—Ideational
प्रत्ययात्मक—Conceptual
प्रत्यक्ष—Direct
प्रत्यक्षात्मक योग्यता-Perceptual ability
प्रत्यक्षात्मक प्रमुखता—Perceeptual prominance
प्रत्यक्षीकरण—Perception
प्रत्यभिज्ञान—Identification
प्रार्थक्य—Difference
पदबंध—Phrase
पदार्थ स्थायित्व—Object permanence
पिछड़ापन—Backwardness
पुनर्निवेशन—Feed back
पुनर्बलन—Reinforcement
प्रभावी—Effective
प्रभाविता— Effectiveness
पर्यावरण—Environment
पर्यावरणात्मक—Environmental
परीक्षण युक्ति—Testing device
परोक्ष—Indirect
परिवर्तन—Change
परिवर्धन—Modification
परिपक्व—Mature
परिपक्वन—Maturation
परवर्ती स्तर—Later stages
परस्पर व्यापी—Overlapping
प्रस्तुतीकरण—Presentation
पूरक—Complementary
पूर्वानुमान—Guess
प्राक्कल्पना—Assumption
बबलाना—Babbling
बलाघात—Stress
बहिर्मुखी—Extrovert
बहुआयामी—Multi dimensional
बहुभाषी—Multi lingual
बहुभाषिकता—Multi lingualism
बाल क्रीड़ा—Child play
बाल भाषा—Child language
बारंबारता—Frequency
बारंबारता का नियम—Law of frequency
बाल द्विभाषिकता—Child Bilingualism
बुद्धिवादी विचारधारा—Mentalism
बोलना—Speaking/talking
बोधन—Comprehension
भावात्मक—Affective
भाषा अधिगम—Language learning
भाषा अधिगम सिद्धांत—Language learning theory
भाषा उपार्जन-युक्ति—Language Acquistion Device
भाषा प्रयोग—Language use
भाषायी कौशल—Language skill
भाषायी क्षमता—Linguistic competence
भाषायी नियंत्रण—Linguistic control

भाषायी निष्पादन—Linguistic Performance
भाषायी प्रारूप—Linguistic Model
भाषायी विकास—Language development
भाषायी समुदाय—Speech Community
भाषायी संपर्क—Language Contact
भाषा वर्णन—Langauge description
भाषा-शिक्षण—Language teaching
भाषा सिद्धांत—Language theory
भाषिक—Linguistic
भाषिकेतर—Non-linguistic
भूमिका—Role
मनोभाषाविज्ञान—Psycholinguistic
मनोविज्ञान—Psychology
मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया—Psychological process
मनोसामाजिक—Psycho-Social
मार्गान्तरीकरण—Channelization
मातृभाषा—Mother tongue
माध्यम—Medium
मात्रा—Quantity
मात्रात्मक—Quantitative
मापन—Measurement
मानक—Standard
मानसिक आयु—Mental Age
मानसिक संरचना—Mental Structure
मानसिक प्रक्रिया—Mental process
मानीटरिंग—Monitoring
मूल पदार्थ—Raw material
मूल प्रवृत्यात्मक—Instictive
मूल उद्दीपन—Primary stimulus
युक्तियाँ—Devices
योजना—Planning
यांत्रिकता—Mechanical
यौवनारंभ—Puberty
रूप—Form
रूपात्मक—Formal
रूपात्मक जटिलता—Formal Complexity
रागात्मक लगाव—Emotional attachment
रोना—Crying
रूपान्तरण—Transformation
लक्ष्य—Goal
लचीलापन—Elasticity
लघु व्याकरण—Minigrammar
वंचित—Deprived
वंश परंपरा—Heredity
वंश परंपरात्मक—Heridatory
व्यवस्था—Organization
वयस्क प्रारूप—Adult Model
व्यक्ति परक—Individual
व्यक्तित्व—Personality
व्यतिरेक—Contrast
व्यतिरेकी विश्लेषण—Contrastive analysis
व्यतिरेकी अध्ययन-Contrastive study
व्यवस्थित—Systematic
वरणीयता—Preference
व्याघात—Interference
व्यवहारवादी विचारधारा—Behaviourism
व्याकरणिक संवेदनशीलता—Grammatical sensitivity
व्याकरणिक कोटियाँ—Grammatical categories

व्याकरणिक नियम—Grammatical rules
व्याकरणिक रूपिम—Grammatical morphemes
व्यावसायिक—Vocational
वाक् क्रिया—Speech act
वाक् अवयव—Speech organs
वाक्यीय नियम—Syntactic rules
वाचन सामग्री—Reanding material
विकल्प—Choice
विकासात्मक—Developmental
विकसित—Developed
विकासशील प्रवृत्ति—Developing tendency
विकोडीकरण—Decoding
विचलन—Deviation
विजातीय भाषा—Non native language
विदेशी भाषा—Foreign language
विधि—Method
विश्लेषणात्मक—Analytical
विस्तृतीकरण—Expansion
विविधता—Variability
विषयगत—Topical
विभेदक वाक् सम्प्रेषण—Differentiated speech Communication
विलक्षण—Unique
वैयक्तिक बोली—Idiosyncratic dilect
शब्दांत—Word ending
शब्द संयोजन—Word inclusion
शरीर विज्ञानिक—Physiological
शारीरिक दोष—Physical defect
शिक्षण—Teaching
शिक्षण प्रक्रिया—Teaching process
शिक्षण तकनीक—Teaching technique
शिक्षण विधि—Teaching method
शिक्षण विज्ञान—Pedagogy
शिक्षण सामग्री—Teaching material
शैक्षिक प्रक्रिया—Educational Process
सक्रिय—Active
संकल्पना—Concept
सकारी—Positive
संकेतार्थ—Implication
संक्रियात्मकता—Functioning
सृजनात्मक—Creative
सृजनात्मकता—Creativity
संतोष—Satisfaction
स्थिरीकृत रूप—Fossils
संदर्भ—Context
संदर्भगत अर्थ—Contextual meaning
संदर्भगत अधिगम—Learning in Context
संदेश—Message
संपर्क—Contact
समाज भाषा विज्ञान—Sociolingustics
समानाधिकृत—Co-ordinate
समस्रोत्रीय-/सजातीय (भाषा)—Cognate (language)
समन्वित—Integrated
समन्वयात्मक—Integrative
समतुल्य भाषा—Equative language
समतुल्य द्विभाषिक—Ambilingual
सम्प्राप्ति—Acquisition
सम्प्रेषण—Communication
सम्प्रेषणात्मक आवश्यकता—Communicative need

सम्प्रेषणात्मक क्षमता—Communicative competence
संभाषण—Dilogue
समरूपी—Identical
समृद्धता—Enrichment
समानता—Similarity
समानुपातिक—Proportionate
संरचना—Structure
संरचनात्मक—Structural
सरलीकृत—Simplified
स्वचालित—Automatic
स्वभाषा भाषी—Native speeker
संवेग—Emotions
संवेगात्मक सुरक्षा—Emotional Security
संवेदना गति परक स्तर—Sensory motor stage
सहजात—Innate
सहसंबंध—Correlation
संक्षिप्तता—Brevity
संक्षिप्तता का नियम—Law of brevity
संस्कृति—Culture
संस्कृति सापेक्षता—Culture oriented
संस्कृति परक भिन्नता—Cultural difference
संशोधित—Corrected
संज्ञानात्मक मनोविज्ञान—Cognitive psychology
संज्ञानात्मक जटिलता—Cognitive Complexity
संज्ञानात्मक कार्य—Cognitive function
संज्ञानात्मक बाध्यताएँ—Cognitive pressure
संज्ञानात्मक संरचना—Cognitive structure
साँचा—Frame/pattern
सादृश्यता—Analogy
सार्थक—Meaningful
सामान्य—General
सामान्यीकृत—Generelized
सामान्यीकरण—Generalization
सामासिक—Compound
सामान्य अधिगम योग्यता—General learning ability
सामाजिक स्तर—Social standard
सामाजीकरण—Socialization
सामाजिक बाध्यता— Social pressure
सामाजिक भूमिका—Social role
सामाजिक संपर्क—Social contact
सामाजिक सुरक्षा—Social security
सामाजिक स्वीकृति—Social acceptance
सामाजिक वास्तविकता—Social reality
सार्वभौम—Universal
सार्वभौम व्याकरण—Universal grammar
सांस्कृतिक समुदाय—Cultural group
सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—Cultural background
साहचर्य—Association
साहचर्यात्मक स्मृति—Associative memory
स्थितियाँ—Situations
सीमित—Restricted
सुगमता का सिद्धांत—Facilitation theory
सुधारात्मक शिक्षा—Remedial education
सुनिश्चित—Definite
सूचनात्मक—Informative
श्रव्य दृश्य सहायक—Audio-visual aids
हिमशिला खंड—Glacier

INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 95210
Date 21/3/2000